## Hindi / English / Gujarati

## जीवनचर्या विज्ञान

स्वामी शंकरानंद सरस्वती





### <u>(श्रीहरिः)</u> 'जीवनचर्याङ्क'की विषय–सूची

`जावनचया <sub>?</sub>	蒙 7	का विषय-सूचा	
विषय पृष्ठ-स	ांख्या	विषय पृष्ठ-सं	ख्या
१- गृहस्थोचित शिष्टाचार <b>मङ्गलाचरण</b> —	१६	२५- जीवनचर्याका उपदेश-वचनामृत (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी	
२- मङ्गलाशंसा	१७	, ,	१२३
३- जीवनचर्याश्रुतिकल्पलता	१८	२६- संकल्पबल और जीवनचर्या (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी	, , ,
४– प्रात:स्मरणीय श्लोक	٠ <u>٠</u>	,	१२६
५- सफलताके सोपान [आदर्श जीवनचर्याका स्वरूप]	ζ-	२७- चरित्र—भगवत्प्राप्तिका प्रधान साधन (ब्रह्मलीन पुरी-	117
(राधेश्याम खेमका)	२३	पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी	
प्रसाद—	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	,	१२८
६- भगवान् श्रीउमामहेश्वरका जीवन-दर्शन	५५	२८- भारतीय हिन्दूधर्म सनातन-संस्कृतिमें मानव-जीवनचर्याका	, , -
७- पितामह ब्रह्माजीका जीवनचर्या-सम्बन्धी उपदेश	६१	महत्त्व	
८- जीवनचर्याके आदर्श प्रतिमान—भगवान् विष्णु	६५	[ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजीके अमृतोपदेश]	
९- भगवान् श्रीराम और उनकी दिनचर्या		, , , , , , ,	१२९
[ श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी शास्त्री]	६८		१३२
१०- भगवान् श्रीरामको दैनिक चर्याका स्वरूप	·	३०- मानवजीवनका उद्देश्य	, , ,
[ श्रीकमलाप्रसादजी श्रीवास्तव]	७०	[श्रीमाँ, अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी]	
- ११- श्रीकृष्णकी नित्य प्रात:क्रिया	७२	->	१३३
१२- भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी दिनचर्या		- ३१- जीवनमें संस्कारोंसे लाभ (ब्रह्मलीन स्वामी	, , ,
[ श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी]	εe		१३४
- १३- सप्तर्षियोंकी जीवनोपयोगी सदाचार-शिक्षा	૭५	३२- फैशनसे बचो	
१४- महर्षि अगस्त्य और महादेवी लोपामुद्राकी		(परमहंस स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती)	१३६
उदात्त जीवनचर्या	८५	३३- अच्छा बननेका उपाय (ब्रह्मलीन महात्मा श्रीसीतारामदास	
१५- महर्षि वेदव्यास और जीवनचर्या-मीमांसा	९३	ॐकारनाथजी महाराज)	१४०
१६- राजर्षि मनु और उनका जीवनचर्या-विधायक अनुशासन	९६	३४- सार्ववर्णिक धर्म (गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद	
१७- माता मदालसाद्वारा निर्दिष्ट जीवनचर्या	१०१	श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)	
१८- भगवान् आदि शंकराचार्य और आध्यात्मिक जीवनचर्याका		[ प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]	१४२
तत्त्व-रहस्य	१०७	३५- श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीकी दृष्टिमें मानवजीवनका उद्देश्य	
१९- रामानुज सम्प्रदायमें जीवनचर्याके सिद्धान्त	१११	[ब्रह्मचारिणी सुश्री गुणीता]	१४४
२०- श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें जीवनचर्याके सूत्र		३६- दिनचर्याका सुधार	
[ श्रीशास्त्री जयन्तीलालजी त्रि॰ जोषी]	११२	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१४५
२१- श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें जीवनचर्या		३७- जीवनका चरम लक्ष्य	
[ श्रीशास्त्री कोसलेन्द्रदासजी ' विशिष्टाद्वैतवेदान्ताचार्य ']	११५	(महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज)	१४९
२२- श्रीचैतन्य महाप्रभुद्वारा उपदेशित वैष्णवोंकी जीवनचर्या		३८- संयम-सदाचारसे युक्त जीवन ही कल्याणका साधन	
[डॉ० श्रीगिरिराजकृष्णजी नांगिया]	११७	(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१५०
२३- समर्थ गुरु स्वामी श्रीरामदासजीकी दृष्टिमें आदर्श दिनचर्या		३९- जीवनचर्याके दो आवश्यक कृत्य—यज्ञ और तप	

११९

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

४०- गीतोक्त सदाचार

[प्रेषक—श्रीरजनीकान्तजी शर्मा].....

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)...

१५४

१५६

[डॉ० श्रीकेशवरघुनाथजी कान्हेरे, एम०ए०, पी-एच०डी०] .....

[गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी] .....

२४- गृहस्थजनों, विरक्तों तथा साधुओंकी जीवनचर्या कैसी हो ?

[संत श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सदुपदेश]

	[ 84 ]					
	विषय पृष	ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या		
४१-	धर्मशास्त्रानुसार जीवनचर्यासे ही कल्याण होता है		जीवनचर्या-मीमांसा—			
	[ब्रह्मलीन संत स्वामी श्रीचैतन्यप्रकाशानन्दतीर्थजी महारा	जके	६१- परमार्थ-पथगामिनी जीवनच	र्गका वैशिष्ट्य		
	सदुपदेश] [श्रीत्रिलोकचन्द्रजी सेठ]	१६०	(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीब	जरंगबलीजी ब्रह्मचारी)    १९७		
४२-	सुगमतम साधन (गोलोकवासी पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र	ा) . १६२	६२- जीवनचर्याका अर्थ एवं उसक	ा उद्देश्य		
-ξ <i>&amp;</i>	गृहस्थमें साधुतामय जीवनचर्या [व्रजभाषामें]		(डॉ० श्रीजितेन्द्रकुमारजी)	१९९		
	(गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)	१६४	६३- सद्गृहस्थकी जीवनचर्या			
आः	शीर्वाद—		(शास्त्रार्थपंचानन पं० श्रीप्रेमा	चार्यजी शास्त्री) २०३		
88-	जीवनचर्यासे आत्मोद्धार (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नाय	स्थ	६४- गृहस्थोचित शिष्टाचार (आचार्य १	भीरामदत्तजी शास्त्री) २०७		
	शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्व	ामी	६५- जीवनका आनन्द है जीवनच	र्या		
	श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)	१६७	(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)	२१०		
४५-	जीनेकी रीति [श्रीओमप्रकाशजी बजाज]	१६८	६६- जीवन-कलाके ग्राह्य सूत्र (ड	ॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी,		
४६-	यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः (अनन्तश्रीविभू	षेत	अवकाशप्राप्त आचार्य एवं वि	भागाध्यक्ष) २१२		
	श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्व	ामी	६७- जीवनचर्याके करणीय और उ	करणीय कर्म		
	श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१६९	(डॉ० श्रीचन्द्रपालजी शर्मा, एम०ए	०, पी-एच०डी०) २१४		
-08	सदाचारका पालन	१७२	६८- संयमित जीवनशैली और स्वा	स्थ्य		
<b>٧</b> ٧-	मानवोचित शीलसम्पन्न आदर्श जीवनपद्धति		(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	२१९		
	( अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश	खर	६९- जीवनमें सदाचार, शौचाचार	और शिष्टाचारकी महिमा		
	स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१७३	(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)	२२२		
४९-	शुभाशंसा ( अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ		७०- आजीवनचर्या ( श्रीजगदीशप्रर	प्रादजी तिवारी) २२३		
	कांचीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु		७१- जीवनचर्या और मानवता ( श्रीगुला	बरायजी, एम०ए०) २२५		
	श्रीशंकराचार्यजी महाराज)	१७७	७२– सदाचार और संयमसे लोक–	परलोकमें कल्याण		
40-	'जीवनके हंस मुस्काते हैं'[कविता]		(गोलोकवासी भक्त श्रीरामश	(णदासजी)		
	(पं॰ श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल' रामायणी) .		[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गो	यल] २२८		
५१-	श्रीभगवन्निम्बार्काचार्योपदिष्ट जीवनचर्यामें मनोनि	ग्रह	७३- ब्रह्मचर्य-आश्रमका स्वरूप औ	र उसकी सदाचार-मीमांसा		
	परमावश्यक ( अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचा	र्य-	(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रन	ब्रूड़ामणि) २३१		
	पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य		७४- हमारे जीवनका लक्ष्य क्या हो	?		
	श्री 'श्रीजी' महाराज)	१७८	( श्रीशिवरतनजी मोरोलिया ' श	गास्त्री') २३३		
५२-	ब्रह्मनिष्ठ पूज्य श्रीलक्ष्येश्वराश्रमजी महाराजका		७५- जीवननिर्वाहकी श्रेष्ठतम शैल	गे [एक दृष्टान्त]		
	उपदेशामृत [चिन्तामणि]	१८०	(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)	२३५		
५३-	दैनिक चर्या-प्रार्थना [कविता] (श्रीरायबिहारीजी टण्ड	न)	७६- जीवनचर्यामें मर्यादा-पालन-	-एक आवश्यकता		

		,		
40-	'जीवनके हंस मुस्काते हैं'[कविता]		(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)	
	(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल' रामायणी)	१७७	[ प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	220
५१-	श्रीभगवन्निम्बार्काचार्योपदिष्ट जीवनचर्यामें मनोनिग्रह		७३- ब्रह्मचर्य-आश्रमका स्वरूप और उसकी सदाचार-मीमांसा	
	परमावश्यक ( अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-		(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूड़ामणि)	२३१
	पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य		७४- हमारे जीवनका लक्ष्य क्या हो ?	
	श्री 'श्रीजी' महाराज)	১৩১	( श्रीशिवरतनजी मोरोलिया 'शास्त्री')	२३
47-	ब्रह्मनिष्ठ पूज्य श्रीलक्ष्येश्वराश्रमजी महाराजका		७५- जीवननिर्वाहकी श्रेष्ठतम शैली [एक दृष्टान्त]	

१८१

१८२

१८६

[प्रे०—सुश्री सुधा टण्डन] .....

आचार्य स्वामी श्रीधर्मेन्द्रजी महाराज) .....

५४- भारतीय जीवनचर्याके अमृत-सूत्र (पंचखण्डपीठाधीश्वर

५५- गृहस्थोंके लिये साधारण नियम.....

५६- वर्तमानकालमें आश्रम-व्यवस्थाकी प्रासंगिकता

( श्रीनरेन्द्रकुमारजी शर्मा, एम०ए०, बो०एड०)
७७- उत्तम स्वास्थ्य कैसे पायें? ( डॉ॰ मधुजी पोद्दार, एम॰डी॰)
७८- हमारी जीवनचर्या कैसी हो ? ( श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी )
७९- जीना—एक कला (डॉ० श्रीदेवशर्माजी शास्त्री, एम०ए०,
•

२३६

२३७

७८- हमारी जीवनचर्या कैसी हो ? ( श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी )	२३९
७९- जीना—एक कला ( डॉ० श्रीदेवशर्माजी शास्त्री, एम०ए०,	
एम०बी०एस०एच०, एम०आई०एम०एस०)	२४०
८०- सुखद जीवन-सन्ध्या (प्रो० डॉ० श्रीजमनालालजी बायती,	
	27.42

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती) ..... १८७ ५७- ठहरो, थोड़ा सोचो [कविता] एम०ए०, एम०कॉम०, पी-एच०डी०, डी०लिट०) ..... २४२ (श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०). ....... ८१- टेंशनफ्री (तनावरहित) जीवन (डॉ० श्रीसत्यपालजी १८९

८- आश्रम-चतुष्टयपर एक विहंगम दृष्टि		गोयल, एम०ए०, पी-एच०डी०, आयुर्वेदरत्न)	58
(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)	१९०	८२- हम सौ वर्ष बिना दवा लिये स्वस्थ जीवन कैसे जियें ?	
९- श्रेष्ठजनोंके अनुकरणीय व्यवहारकी उपयोगिता (म०मं०		( श्रीमदनलालजी अग्रवाल)	२४१

गीतामनीषी स्वामी श्रीज्ञानानन्दजी महाराज) ...... १९३ ८३- स्वस्थ जीवन कैसे जीयें ? ..... ६०- जीवनमें दैवी-सम्पत्तिका महत्त्व (श्रीनिजानन्दजी सरस्वती) .... [प्रेषक—डॉ० एस० एन० स्वर्णकार]..... १९५ २४८

<b>ह</b> १]	]
या	विषय

पृष्ठ-संख्या

३४६

३४८

340

पृष्ठ-संख्या

विषय

#### ८४- लोकवार्ता और जीवनमूल्य १०६- प्रात:जागरण-प्रभुस्मरण [कविता] (डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी०लिट०) ........ (स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')...... २५१ ३०९ ८५- भारतीय जीवनचर्या—मूर्तिमती मानवता १०७- परिवारमें बालकों एवं वृद्धजनोंके प्रति कर्तव्य (वैद्य श्रीराकेशसिंहजी बक्शी) ..... (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच०डी०) ....... २५६ ३१० ८६- संतकी आदर्श क्षमाशीलता..... १०८- गांधीजीकी प्रार्थना और हमारी दिनचर्या २५९ (श्रीबालकविजी बैरागी) ..... ८७- दिव्य जीवनकी जीवनचर्या (श्रीराजेन्द्रजी 'जिज्ञासु') .. २६० 382 ८८- जीवनको पतनोन्मुखी बनानेवाले स्थान ..... १०९- अनुपालनीय धर्म (आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा) ..... २६२ ३१४ आदर्श जीवनचर्या और दैनिक चर्याके उदात्त चरित— ८९- सफल जीवनचर्याके दो आवश्यक कृत्य (श्रीदामोदरप्रसादजी पुजारी)..... ११०- 'यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' २६४ ९०- आदर्श जीवनका मूल मन्त्र—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (श्रीविवेककुमारजी पाठक) ..... ३१५ (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी) ..... १११- पूर्वजोंका स्मरणकर उनके पथपर चलें २६५ (आचार्य स्वामी श्रीखुशालनाथजी धीर)..... ९१- जीवनमें आचारकी सर्वश्रेष्ठता (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी ३१६ झा 'श्याम', एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०) .... ११२- रामराज्यमें नागरिकोंकी आदर्श जीवनचर्या २६७ ९२- 'मनुर्भव'—मनुष्य बनो (श्रीरामाश्रयप्रसादसिंहजी) .... (श्रीरामपदारथसिंहजी)..... २७० ३१७ ९३- पृथ्वीको धारण करनेवाले सात तत्त्व और जीवनचर्यामें ११३- पवित्रता और जीवनकी सच्चाई [एक दृष्टान्त] (श्रीहरिशंकर बी० जोशीजी)..... उनका महत्त्व ..... २७२ ३१९ दैनिक चर्याका स्वरूप और दैनन्दिन कृत्य— ११४- भक्तिमयी जीवनचर्या..... ३२० ९४- जीवनचर्याकी सफलताका प्रथम सोपान—दिनचर्या [ क ] महापुरुषोंके पावन चरित (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, ११५- अवधूतश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय एवं उनकी दिनचर्या (स्वामी श्रीदत्तपादाचार्य भिषगाचार्य, ए०बी०एम०एस०) ....... ३२१ डी०लिट०, डी०एस-सी०) ..... २७४ ११६- पूज्य श्रीउड़ियाबाबाकी अनूठी जीवनचर्या एवं उपदेश ९५- जीवनचर्याके नित्य एवं नैमित्तिक कर्म ३२३ (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, विद्याभूषण) .... ११७- पूज्य श्रीहरिबाबाजीकी अनूठी जीवनचर्या ..... २७९ ३२७ ९६- ब्राह्ममुहूर्तमें जागरणसे लाभ (डॉ० श्रीविद्यानन्दजी ११८- स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजकी जीवनचर्या..... ३२९ 'ब्रह्मचारी', एम०ए०(द्वय), बी०एड०, पी-एच०डी०, ११९- वाणीका सदाचार ...... ३३१ डी॰लिट॰, विद्यावाचस्पति) ..... १२०- स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजकी प्रेरक दिनचर्या २८२ ९७- नित्य आवश्यकीय सन्ध्योपासना और उसकी महिमा एवं जीवनचर्या..... 337 (पं० श्रीशंकरलालजी तिवारी शास्त्री, एम०ए०, संस्कृत, १२१- महामना मालवीयजीकी अनुकरणीय दिनचर्या....... ३३५ हिन्दी, बी॰एड॰, व्याकरण-साहित्यशास्त्री) ........ १२२- महात्मा गांधीकी अनुकरणीय जीवनचर्या—पंचशील २८४ और द्वादशव्रत (श्रीमनोहरलालजी गोस्वामी, एम०ए०, ९८- दैनिक चर्या और गायत्री-साधना (दण्डीस्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) ... एम॰एड॰, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न) ..... २८६ ३३९ ९९- पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान—नित्यचर्याका अभिन्न अंग १२३- 'रामहरि' का जप करनेवाले श्रीविनोबाजीकी चर्या (आचार्य श्रीशरदकुमारजी साधक) ..... (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक', साहित्यरत्न, एम०ए०, ३४० पी-एच०डी०, डी०लिट) ..... १२४- आदर्श जीवनचर्या २८८ १००- अभिवादनका स्वरूप-रहस्य और फल (विद्यावाचस्पति (महाकवि डॉ० श्रीयोगेश्वरप्रसादसिंहजी 'योगेश') .... ३४१ डॉ० आर०वी० त्रिवेदी 'ऋषि', वैद्याचार्य, आयुर्वेदशास्त्री) ..... १२५- म०म० पं० शिवकुमारजी शास्त्रीकी आदर्श दिनचर्या . २९१ 385 १०१- आहार-विज्ञान (डॉ० कु० शैलजाजी वाजपेयी, १२६- म०म० पं० गोपीनाथजी कविराजकी आहारविशेषज्ञ) ..... प्रेरणाप्रद दिनचर्या ..... २९५ *\$*83 १२७- पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराजकी कृष्णप्रेममयी चर्या १०२- दैनिक चर्याको पतनकी ओर ले जानेवाली आसुरी प्रवृत्तियाँ ... ३०३ (श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल) ..... १०३- सबमें स्थित भगवान्का तिरस्कार न करो.....

३०५

३०६

३०८

१०४- मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव,

१०५- 'ऊर्जाचक्रानुसार दिनचर्याकी आवश्यकता'

अतिथिदेवो भव (डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत) ......

(श्रीमती ज्योतिजी दुबे) .....

१२८- कलक्टर जॉनमार्शकी आदर्श जीवन-शैली

(डॉ० श्रीउदयनाथजी) झा 'अशोक', साहित्यरत्न,

१२९ - आदर्श शिक्षककी जीवनचर्या (डॉ० श्रीकन्हैयालालजी शर्मा)..

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०) .....

		[ १४	]		
विषय	पृष्ठ-संख	प्रा	विषय	τ	गृष्ठ-
१३०- दानशीलता १३१- विद्यार्थियोंकी आदर्श जीवनचर्या [३		<b>५</b> १		देक संस्कृतिमें विवाहकी अवधारणा ाणेशदत्तजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०	डी०,
(डॉ० श्रीविश्वामित्रजी)				र्यं, पूर्व प्राचार्य)	
१३२- आदर्श राजनेताओंके पवित्र जीवनर				विनमें कुटुम्बकी अवधारणा (श्रीगदा	
( श्रीशिवकुमारजी गोयल)		<b>१६</b>	J. 4	नेदेशक राजस्थान संस्कृत अकादमी)	
१३३– कुछ न्यायाधीशोंके अनूठे अनुकरर्ण			१५९- दाम्पत्य-ज	गिवनपर पाश्चात्य जीवन-शैलीका दुष्	प्रभाव
( श्रीनरेन्द्रजी गोयल)	३६	<del>.</del> २	( श्रीओमप्र	काशजी सोनी)	
१३४- आदर्श राजाओंके कुछ प्रेरक प्रसंग ( श्रीध	र्मेन्द्रजी गोयल) ३६	44	१६०- दाम्पत्य-ज	गिवन कैसे सफल रहे?	

# ३६६

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) .....

[वैलेण्टाइन-डे मनाना उचित नहीं] (श्रीरमेशचन्द्रजी

बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद) .....

(आचार्य पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, धर्मशास्त्राचार्य,

एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम०कॉम०, एम०एड०,

ज्योतिर्भूषण, कर्मकाण्डकोविद) .....

(श्रीअशोकजी चितलांगिया) .....

साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम०ए०) .....

शोभाजी मिश्रा, एम०एच०एस-सी० (गृहविज्ञान)) ...

(पं० श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए०)......

१६४- जीवनचर्या और सद्वृत्त (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री,

१६५- आदर्श नारी ही गृहस्थाश्रमकी आधारशिला (श्रीमती

१६७– चरित्र–शिक्षाकी दिशा.....

१६६- नित्य स्नान—शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दृष्टिमें

सत्साहित्य तथा विविध धर्म-सम्प्रदायोंमें

१६८- वेदोंमें प्रतिपादित पारिवारिक जीवनचर्या

१६१- पाश्चात्य संस्कृतिका अनुकरण सर्वथा अनुचित

१६२- जन्मदिन कब और कैसे मनायें?

१६३- वर्ष-वृद्धि संस्कार (वर्धापन-प्रसंग)

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम०डी०) ..... [ख] आदर्श जीवनचर्याके विविध प्रेरक प्रसंग

१३६- श्रेष्ठ जीवनचर्यामें माता-पिताकी सेवाके कुछ आदर्श ३६८

१३७- आदर्श आतिथ्य ..... ३६९ ३७१ ३७२ शर्थ इ

१३८- जीवनचर्यामें धर्मनिष्ठाके विशिष्ट प्रसंग ..... १३९- संतोंकी जीवनचर्याके पावन प्रसंग..... ७७८

१४०- जीवनचर्यामें कर्मयोग और कर्म-संन्यासके कुछ प्रतिमान ..... ३८० ३८१

१४१- सन्त-स्वभावके आदर्श ..... १४२– धर्म–रक्षक ..... १४३- दया, अहिंसा, त्याग और क्षमाके आदर्श ..... १४४- मनुष्य-शरीर धारणकर क्या किया ?..... जीवनचर्याके विविध रूप—

१३५- एक उच्चकोटिके साधककी दिनचर्या

(डॉ॰ श्रीराजीवजी प्रचिण्डया, एम॰ए॰ (संस्कृत),

१४५- संस्कारपरक जीवनचर्यासे मानव-संस्कृतिकी सुरक्षा बी॰एस-सी॰,एल-एल॰बी॰,पी-एच॰डी॰) ....... ३८५ ३८६

१४६- नर-जन्म बार-बार नहीं मिलता ..... १४७- जीवनचर्यामें संस्कारोंकी आवश्यकता, महत्त्व और उनकी यथाविधि कर्तव्यता १८७

(डॉ॰ आचार्य श्रीरामिकशोरजी मिश्र) .....

(डॉ० श्रीशिवओमजी अम्बर) ..... ३९०

१४८- आदर्श जीवनचर्याका अभिन्न अंग—स्वाध्याय

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापित).....

१४९- जीवनचर्याका एक प्रमुख अंग—सेवा

१५०- दान एवं दानका रहस्य (आचार्य पं० श्रीरामदत्तजी शास्त्री) ....

१५२- भीख, भिक्षा और दान (प्रो० श्रीइन्द्रवदन बी० रावल)

१५३- जीवनचर्या, प्रकृति और पर्यावरण (डॉ० श्रीश्यामसनेही-

१५४- 'शिखा' की आवश्यकता (वैदिक सार्वभौम महायाज्ञिक

१५६ - अकिंचनता.....

१५५- यज्ञोपवीत-संस्कार और उसकी आवश्यकता

लालजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०) .

पं० श्रीभगवत् प्रसादजी मिश्र, वेदाचार्य) .....

(डॉ॰ श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक') .....

१५१- जीवनचर्यामें पूर्तकर्मका अवदान

(श्रीमती निर्मलाजी उपाध्याय) .....

३९१

393

४०१

804

४०६

४८६

३९६

३९८

१७२- योगवासिष्ठमें निर्दिष्ट साधककी जीवनचर्या

पी-एच०डी०) ..... १७१- आनन्दरामायणमें भगवान् श्रीरामकी आदर्श दिनचर्या (आचार्य श्रीसुदर्शनजी मिश्र, एम०ए०) .....

१७३- पुराणोंमें गृहस्थाश्रमके दिग्दर्शक सूत्र

१७४- महाभारतमें प्रतिपादित आदर्श जीवनचर्या

जीवनचर्याका निदर्शन—

जीवनचर्या (डॉ० श्रीमती प्रभासिंहजी, एम०ए०,

१७०- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें निरूपित भगवान श्रीरामकी

(श्रीरघुराजसिंहजी बुन्देला 'ब्रजभान') .....

(डॉ॰ श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय') .......

संस्कृत) प्रभाकर (संगीत), पी-एच०डी०)......

(डॉ० श्रीविनोदकुमारजी शर्मा, एम०ए० (हिन्दी-

१६९- वैदिक वाङ्मयमें समाज, राष्ट्र एवं विश्वके प्रति नागरिकोंके कर्तव्य ( आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी०).

(डॉ० श्रीवागीशजी 'दिनकर') .....

833

४३५

पृष्ठ-संख्या

४११

४१३

४१५

४१७

४१९

४२१

४२३

४२४

४२६

४३१

४३२

४३८

४४१

	[१५]				
	विषय पृष्ठ-सं	ख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या	
	- श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित जीवनचर्या [प्रेषक—श्रीधनसिंहराव] - जीवनचर्याका पावन अधिष्ठान—श्रीरामचरितमानस (डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह, एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०, बी०एड०)	४५३	१८५- यायावर रोमाओंकी जीवनचर्यामें भारतीय संस्कृ झलक (पद्मश्री डॉ० श्रीश्यामसिंहजी 'शशि', पी-एच०डी०, डी०लिट्०) १८६- विदेशोंमें बसे भारतीयोंकी जीवनचर्या (श्रीलल्लनप्रसादजी 'व्यास')	X90	
१७७	- पर्यावरणको समर्पित बिश्नोई सम्प्रदायकी जीवनचर्या (श्रीविनोदजम्भदासजी कड्वासरा)	४५९	जीवनदर्शन और अध्यात्म— १८७- आध्यात्मिक जीवनचर्या (शास्त्रोपासक आचार		
१७८	– मराठी संतोंद्वारा जीवनचर्याका उपदेश	, ,	डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)		
	(डॉ० श्रीभीमाशंकरजी देशपाण्डे)	४६२	१८८- जीवनचर्या-दर्शन (श्रीरमेशभाईजी ओझा)		
१७९	– सिखधर्ममें आदर्श जीवनचर्याका रूप		१८९- अपने विचारको शुद्ध कीजिये (स्वामी श्रीकृष्णानन्दर्जी	महाराज). ४८४	
	(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)	४६५	१९०- वाक्-संयम एवं मौन-व्रत (श्रीप्रदीपकुमारजी	शर्मा) ४८५	
१८०	– राजस्थानके भक्ति–साहित्यमें आदर्श जीवनचर्या		१९१- मानवत्व और मानव ( श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी	<i>وا</i> كلا (۲	
१८१	(डॉ० श्रीओंकारनारायणसिंहजी) – वनवासी, आदिवासी तथा यायावर (घुमन्तू) जनसमूहोंक	४६७ त्री	१९२- ईर्घ्या और द्वेष—मानवकी विकृत मानसिकतावे प्रतीक (कुँवर श्रीभुवनेन्द्रसिंहजी, एम०ए०,	ก็	
	व्यावहारिक जीवनचर्या (डॉ० श्रीलल्लनजी ठाकुर)	४७१	बी॰एड॰, संगीत प्रभाकर)	४९०	
१८२	– ईसाई धर्ममें जीवनचर्याका स्वरूप		१९३- यज्ञीय जीवनचर्या		
	• •	४७३	(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण')	) ४९२	
१८३	- इस्लाम धर्ममें जीवनचर्या		१९४- जीवनमें जरूरी है अध्यात्म		
	(श्रीसैयद कासिम अली, साहित्यालंकार)४	૭५	(डॉ॰ श्रीश्यामशर्माजी वाशिष्ठ,		
१८४	- वंशसंरक्षणके लिये वर्जित सम्बन्ध (श्रीविमलकुमारजी लाभ, एम०एस-सी०)	\4e5	एम०ए०, पी-एच०डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ).		
	विषय पृष्ठ-सं		चित्र )	पृष्ठ-संख्या	
	'सर्वभूतिहते रताः'आवरण	-	६-   सात्त्विक, राजस और तामस आहार ७-   जीवनकी चार अवस्थाएँ		
	आदर्श जीवनचर्या—सर्वत्र भगवद्दर्शन	१			
	जीवनचर्याके विविध स्वरूप	२	८- भगवान् श्रीकृष्णकी जीवनचर्या ९- भगवान् महेश्वरद्वारा देवी पार्वतीको	9	
	सात्त्विक, राजस और तामस दान	3	जीवनचर्याका उपदेश	,	
<b>4</b> -	वैश्य तुलाधारकी स्वधर्मनिष्ठा(	<sup>४</sup> सादे	जावनचयाका उपदश	6	
۶-	पंचमहायज्ञका स्वरूप	33	१४- माता सीताको पातिव्रत्य धर्म समझाते हुए देवी अनसूया	८१	
₹-	एक ही थालीमें भोजन करते हुए दो व्यक्ति	3८	१५- महर्षि गौतम		
₹-	चारों आश्रमोंका स्वरूप	४६	१६- महर्षि विश्वामित्र		
8-	निष्काम भावसे किये जानेवाले काम्य कर्म	४८	१७– महर्षि भरद्वाजजीका आतिथ्य स्वीकार करते हुए	्लक्ष्मण	
<b>4</b> -	भगवान् श्रीउमामहेश्वर	44	एवं सीताजीसहित भगवान् श्रीराम	८५	
	विषपान करते हुए भगवान् शिव	40	१८- उलटे लटके हुए पूर्वजोंसे वार्तालाप करते मुनि अगस्त्य	T ८५	
<i>9</i> –	पितामह ब्रह्माजी	६१	१९- विवाहकी सहमति देती हुईं देवी लोपामुद्रा	८६	
	देवेन्द्रकी जिज्ञासाका समाधान करते भगवान् विष्णु	६५	२०- महर्षि अगस्त्य एवं उनकी जयकार करते हुए दे		
	भगवान् श्रीराम	७०	२१- लोपामुद्राको गले लगाती हुईं माता महालक्ष्मी		
	भगवान् श्रीकृष्ण	७३	२२– भगवान् श्रीरामद्वारा श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन कराना .		
	सप्तर्षियोंको गूलरके फल प्रदान करता राजसेवक	<i>७७</i>	२३– मनु–शर्तरूपाको भगवान् श्रीहरिका शक्तिसमेत दर्शन		
१२-	महर्षि वसिष्ठ	৩८	२४- बृहस्पित और मनु	१००	
१३-	महर्षि कश्यप एवं राजा पुरूरवा	८०	२५- राजा ऋतध्वज और मदालसा		

विषय

६८-राष्ट्रपिता महात्मा गांधी .....

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

१०२

विषय

२६- माता मदालसाके चरणोंमें नमन करते अलर्क.......

६७- महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीय .....

	•	• '	•	, , ,
२७-	भगवान् आदि शंकराचार्य	१०७	६९-म०म० पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री	३४२
२८-	श्रीरामानुजाचार्यजी	१११	७०-म०म० पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज	383
२९-	श्रीवल्लभाचार्यजी	११२	७१-पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज	३४६
-οξ	श्रीरामानन्दाचार्यजी	११५	७२-भाई एवं पत्नीसहित वनपथपर भगवान् श्रीराम	३६८
₹१-	देवर्षि नारदजीको अपनी दुर्दशा बताते हुए भक्तिदेवी	१२९	७३-मातृ-पितृभक्त श्रवणकुमार	३६८
<b>३</b> २-	शृंगारका मोह	१३८	७४-प्रतिज्ञा लेते हुए गंगापुत्र देवव्रत भीष्म	३६९
33-	भगवान् निम्बार्काचार्यजी	१७८	७५-महर्षि दुर्वासाका आतिथ्य करते हुए मुद्गल	०७६
₹8-	इन्द्रको उपदेश देते हुए देवगुरु बृहस्पतिजी	१९७	७६- श्रीकृष्ण-कर्ण-संवाद	३७१
३५-	कुरूप व्यक्तिको उसीके बचपनका चित्र दिखाता हुआ		७७-दुर्योधन एवं शल्य	३७२
	चित्रकार	१९८	७८-स्वामी श्रीरामकृष्णपरमहंस	४७६
₹-	अनन्य भजनसे शुद्ध हुए भक्तपर भगवत्कृपा	१९९	७९-स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी सरस्वती	३७५
₹७-	रोगी व्यक्तिकी सेवासे भगवत्प्राप्ति	२०१	८०- श्रीरमणमहर्षि	३७६
३८-	अतिथिपूजन	२०४	८१- श्रीगोविन्दाचार्यजी	১৩১
₹९-	बहूपर स्नेह	२०८	८२-क्षमाशील संत	३७९
80-	आलसी एवं कर्तव्यहीन व्यक्ति	२१२	८३-छत्रपति शिवाजीद्वारा नारीसम्मान	३८०
88-	मारीच-रावण-संवाद	२१८	८४-महाराणा प्रताप	३८०
४२-	सूर्योपासना	२२२	८५-गुरु तेगबहादुर	३८१
<b>∀</b> 3−	मांसाहारसे नैतिक पतन	२२५	८६-महाराज शिबि	३८२
88-	तलाक माँगती हुई स्त्री	२२९	८७–सम्राट् अशोक	३८२
४५-	रोगग्रस्त व्यक्ति	२४८	८८-सम्राट् हर्षवर्धन	३८३
४६-	चटोरी नारी	२५२	८९-संत ईसामसीह	३८३
-08	स्नातकको उपदेश देते हुए आचार्य	२६१	९०-भगवान् बुद्ध	३८३
<b>8</b> ८-	सिनेमामें अश्लील नृत्य देखते दर्शक	२६२	९१-भगवान् महावीर	३८४

४२- सूर्योपासना	२२२	८५-गुरु तेगबहादुर
४३- मांसाहारसे नैतिक पतन	२२५	८६-महाराज शिबि
४४- तलाक माँगती हुई स्त्री	२२९	८७–सम्राट् अशोक
४५- रोगग्रस्त व्यक्ति	२४८	८८-सम्राट् हर्षवर्धन
४६- चटोरी नारी	२५२	८९-संत ईसामसीह

४८- सिनेमामें अश्लील नृत्य देखते दर्शक ..... २६२ ९१-भगवान् महावीर..... ४९- घुड़दौड़में घोड़ोंपर दाँव लगाते व्यक्ति..... २६३

९२- संत सरमद ..... ३८४ ५०- जुआ खेलते हुए जुआरी..... ९३- गुरुकुलमें अध्ययन ..... २६३ ३८९ ५१- पृथ्वीको धारण करनेवाले सात तत्त्व ..... ९४- संन्यासी ..... २७३

३९० ५२- शिखामें ग्रन्थिकी आवश्यकता ..... ९५- राजा धर्मवर्मा के प्रश्नोंका समाधान करते हुए नारदजी ..... २७७

३९४ ९६-अपने दूतोंको समझाते हुए यमराजजी..... ५३- सन्ध्या करता हुआ द्विज ..... २८० ३९७

५४- गुरुचरणोंमें प्रणाम ..... ९७-क्लबका एक दृश्य..... २८९

४१९ ५५- महाराज दिलीप और सुदक्षिणाकी गोसेवा ..... ९८-चतुर नारीका घर ..... २९४ ४२८

९९-भारतीय संयुक्त परिवारप्रथा ..... २९७ 833

५६- भोजन परोसते हुए नारी..... १००-प्रभु श्रीरामद्वारा मुनिके चरणोंमें प्रणाम करना ....... 288

५७- दूषित पर्यावरणमें भोजन ..... ४३९

५८- मिलावट ..... १०१-स्त्रीको प्रताडित करना..... ३०३

१०२–सात्त्विक भोजन ..... ५९- झूठी गवाही ..... ४०६

४५२

१०३- तामसी भोजन ..... 308 ४५२

६०- मद्यपान.....

४५७

१०४-श्रीरामकी चरणपादुकाकी पूजामें रत भरतजी....... ४०६

६१- अभस्य-भक्षण .....

१०५-संत श्रीज्ञानेश्वरजी महाराज..... ७०६ ४६२

६२- महर्षि दधीचिद्वारा अपनी हड्डियोंका दान .....

४६३

६३- अलर्कका दत्तात्रेयजीकी शरणमें जाना..... १०६-संत श्रीएकनाथजी महाराजकी समत्व दृष्टि ......... ३२१

१०७-समर्थ स्वामी रामदासजी ..... ६४- श्रीउडियाबाबाजी ..... 373 ४६४

६५- स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज..... १०८-संत तुकारामजी महाराज..... ३२९

१०९-ध्यानमें अवस्थित संत ..... ६६- स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज..... ४८२ 337

३३५

११०-श्रीरामजीद्वारा विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा.....

अङ्क ] \* मङ्गलाशसा \*

## (मङ्गलाशंसा)

शं नो अग्निज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।

शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥

ज्योति ही जिसका मुख है, वह अग्नि हमारे लिये कल्याणकारक हो; मित्र, वरुण और अश्विनीकुमार

हमारे लिये कल्याणप्रद हों; पुण्यशाली व्यक्तियोंके कर्म हमारे लिये सुख प्रदान करनेवाले हों तथा वायु भी हमें

शान्ति प्रदान करनेके लिये बहे।

एवं वृक्ष हमारे लिये कल्याणकारक हों तथा लोकपति इन्द्र भी हमें शान्ति प्रदान करें।

हमारे लिये कल्याणप्रद हो। शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।

हमारा कल्याण करें तथा जल एवं वायु भी हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों। शं नो देव: सविता त्रायमाण: शं नो भवन्तुषसो विभाती:।

शं नः पर्जन्यो भवत प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्त शम्भः॥

पर्जन्यदेव हमारी प्रजाओंके लिये कल्याणकारक हों और क्षेत्रपति शम्भु भी हम सबको शान्ति प्रदान करें।

करें। [ऋग्वेद]

प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

यापन करें, सौ वर्षीतक सुनें अर्थात् सौ वर्षीतक श्रवण-शक्तिसे सम्पन्न रहें, सौ वर्षीतक अस्खलित वाणीसे युक्त रहें, सौ वर्षींतक दैन्यभावसे रहित रहें अर्थात् किसीके समक्ष दीनता प्रकट न करें। सौ वर्षींसे ऊपर भी बहुत कालतक हम देखें, जीयें, सुनें, बोलें और अदीन रहें।[ शुक्लयजुर्वेद ]

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दूशये नो अस्तु।

न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥ द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिये सुखकारक हों, अन्तरिक्ष हमारी दृष्टिके लिये कल्याणप्रद हों, ओषधियाँ

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥ विस्तृत तेजसे युक्त सुर्य हम सबका कल्याण करता हुआ उदित हो। चारों दिशाएँ हमारा कल्याण करनेवाली

हों। अटल पर्वत हम सबके लिये कल्याणकारक हों। निदयाँ हमारा हित करनेवाली हों और उनका जल भी

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ अदिति हमारे लिये कल्याणप्रद हों, मरुद्गण हमारा कल्याण करनेवाले हों। विष्णु और पुष्टिदायक देव

रक्षा करनेवाले सविता हमारा कल्याण करें, सुशोभित होती हुई उषादेवी हमें सुख प्रदान करें, वृष्टि करनेवाले

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। सभी देवता हमारा कल्याण करनेवाले हों, बुद्धि प्रदान करनेवाली देवी सरस्वती भी हम सबका कल्याण

तच्चक्षुर्देविहतं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतः शृण्याम शरदः शतं

देवताओंद्वारा प्रतिष्ठित, जगतुके नेत्रस्वरूप तथा दिव्य तेजोमय जो भगवान आदित्य पूर्व दिशामें उदित होते हैं; उनकी कृपासे हम सौ वर्षोतक देखें अर्थात् सौ वर्षोतक हमारी नेत्र-ज्योति बनी रहे, सौ वर्षोतक सुखपूर्वक जीवन-

जीवनचर्याश्रुतिकल्पलता जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां और याचना करनेवालेको दान देकर सुखी करे। (ऋग्वेद विदथे वर्धमान:। समर्य आ १०।११७।५) धीरा अपसो मनीषा देवया अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। पुनन्ति उदियर्ति वाचम्॥ जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदत् शन्तिवाम्॥ विप्र पुत्र पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका जिस व्यक्तिने जन्म लिया है, वह जीवनको सुन्दर बनानेके लिये उत्पन्न हुआ है। वह जीवन-संग्राममें लक्ष्य-आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पतिसे शान्तियुक्त मीठी वाणी साधनके हेतु अध्यवसाय करता है। धीर व्यक्ति अपनी बोलनेवाली हो। (अथर्ववेद ३।३०।२)

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

मननशक्तिसे कर्मोंको पवित्र करते हैं और विप्रजन दिव्य भावनासे वाणीका उच्चारण करते हैं। (ऋग्वेद ३।८।५)

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्।।

उत्तम ज्ञानके अनुसन्धानकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके सामने सत्य और असत्य दोनों प्रकारके वचन परस्पर स्पर्धा करते हुए उपस्थित होते हैं। उनमेंसे जो सत्य है, वह अधिक

सरल है। शान्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति उसे चुन लेता है और असत्यका परित्याग करता है।(ऋग्वेद७।१०४।१२) यस्तित्याज सचिविदं सखायं न

तस्य वाच्यपि भागो अस्ति। यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥

जो मनुष्य सत्य-ज्ञानके उपदेश देनेवाले मित्रका परित्याग कर देता है, उसके वचनोंको कोई नहीं सुनता। वह जो कुछ सुनता है, मिथ्या ही सुनता है। वह सत्कार्यके मार्गको नहीं जानता। (ऋग्वेद १०।७१।६)

स इद्धोजो यो गृहवे ददात्यनकामाय चरते कृशाय। अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥ अन्नकी कामना करनेवाले निर्धन याचकको जो

अन्न देता है, वही वास्तवमें भोजन करता है। ऐसे व्यक्तिके पास पर्याप्त अन्न रहता है और समय पड़नेपर बुलानेसे, उसकी सहायताके लिये तत्पर अनेक मित्र

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमन् पश्येत पन्थाम्।

मनुष्य अपने सम्मुख जीवनका दीर्घ पथ देखे

उपस्थित हो जाते हैं। (ऋग्वेद १०।११७।३)

३६।१८)

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ भाई-भाई आपसमें द्वेष न करें। बहिन बहिनके साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत

और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें। (अथर्ववेद ३।३०।३)

दृते दृश्रह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य

चक्षुषा समीक्षामहे॥ मेरी दृष्टिको दृढ कीजिये; सभी प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें; मैं भी सभी प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखुँ; हम परस्पर एक-दूसरेको मित्रकी दृष्टिसे देखें। (यजुर्वेद

**ाजीवनचर्या**−

ईशा वास्यमिदः सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥ अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है—यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो, (इसमें)

आसक्त मत होओ (क्योंकि) धन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है। (ईशावास्य०१) कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतःसमाः।

एवं त्विय नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ शास्त्रनियत कर्मोंको (ईश्वरपूजार्थ) करते हुए ही इस जगत्में सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा करनी चाहिये, इस प्रकार (त्यागभावसे, परमेश्वरके लिये) किये जानेवाले

\* जीवनचर्याश्रुतिकल्पलता \* अङ्क ] कर्म तुझ मनुष्यमें लिप्त नहीं होंगे, इससे (भिन्न) अन्य भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता कोई प्रकार अर्थात् मार्ग नहीं है (जिससे कि मनुष्य कर्मसे भवन्ति॥ यदि इस मनुष्यशरीरमें (परब्रह्मको) जान मुक्त हो सके)। (ईशावास्य० २) यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। लिया तब तो बहुत कुशल है, यदि इस शरीरके रहते-सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ रहते (उसे) नहीं जान पाया (तो) महान् विनाश जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंको परमात्मामें ही निरन्तर है, (यही सोचकर) बुद्धिमान् पुरुष प्राणी-प्राणीमें देखता है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें परमात्माको (देखता (प्राणिमात्रमें) (परब्रह्म पुरुषोत्तमको) समझकर इस है), उसके पश्चात् (वह कभी भी) किसीसे घृणा नहीं लोकसे प्रयाण करके अमर (परमेश्वरको प्राप्त) हो जाते करता। (ईशावास्य० ६) हैं। (केनोपनिषद् २।५) विज्ञानसारथिर्यस्तु मन:प्रग्रहवान्नर:। आशाप्रतीक्षे संगतः सूनृतां च सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ इष्टापूर्ते पुत्रपशूश्च सर्वान्। एतद् वृङ्के पुरुषस्याल्पमेधसो जो (कोई) मनुष्य विवेकशील बुद्धिरूप सारथिसे यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥ सम्पन्न (और) मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, जिसके घरमें ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये वह संसारमार्गके पार पहुँचकर परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्के निवास करता है, उस मन्दबृद्धि मनुष्यकी नाना प्रकारकी उस सुप्रसिद्ध परमपदको प्राप्त हो जाता है। (कठोपनिषद् आशा और प्रतीक्षा उनकी पूर्तिसे होनेवाले सब प्रकारके १।३।९) सुख, सुन्दर भाषणके फल एवं यज्ञ, दान आदि शुभ **उत्तिष्ठ**त जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया कर्मोंके और कुआँ, बगीचा, तालाब आदि निर्माण ुँ दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ करानेके फल तथा समस्त पुत्र और पशु—इन सबको (वह) नष्ट कर देता है। (कठोपनिषद् १।१।८) (हे मनुष्यो!) उठो, जागो (सावधान हो जाओ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-और) श्रेष्ठ महापुरुषोंके पास जाकर (उनके द्वारा) उस स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। परब्रह्म परमेश्वरको जान लो (क्योंकि) त्रिकालज्ञ श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते ज्ञानीजन उस तत्त्वज्ञानके मार्गको छूरेकी तीक्ष्ण एवं प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥ दुस्तर धारके सदृश दुर्गम (अत्यन्त कठिन) बतलाते हैं। श्रेय और प्रेय-ये दोनों ही मनुष्यके सामने (कठोपनिषद् १।३।१४) जयति नानृतं आते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य उन दोनोंके स्वरूपपर भली-सत्यमेव सत्येन पन्था विततो देवयानः। भाँति विचार करके उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा और वह बुद्धिश्रेष्ठ मनुष्य परम कल्याणके साधनको ही तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥ भोग-साधनकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है, यत्र (परंतु) मन्दबुद्धिवाला मनुष्य लौकिक योगक्षेमकी सत्य ही विजयी होता है, झुठ नहीं; क्योंकि इच्छासे, भोगोंके साधनरूप प्रेयको अपनाता है। (कठो-वह देवयान नामक मार्ग सत्यसे परिपूर्ण है, जिससे पूर्णकाम ऋषिलोग (वहाँ) गमन करते हैं, जहाँ पनिषद् १।२।२) इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति वह सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका उत्कृष्ट धाम न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि:। है। (मुण्डकोपनिषद् ३।१।६)

 अात्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समाचरेत् \* **ि जीवनचर्या**− प्रातःस्मरणीय श्लोक चरणोंवाली भगवती दुर्गादेवीका मैं प्रात:काल स्मरण गणेशस्मरण— प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं करता हूँ। सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्। सूर्यस्मरण— उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम्।। रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूषि। अनाथोंके बन्धु, सिन्द्रसे शोभायमान दोनों गण्डस्थल-सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं वाले, प्रबल विघ्नका नाश करनेमें समर्थ एवं इन्द्रादि देवोंसे ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥ नमस्कृत श्रीगणेशजीका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ। सूर्यका वह प्रशस्त रूप जिसका मण्डल ऋग्वेद, विष्णुस्मरण— कलेवर यजुर्वेद तथा किरणें सामवेद हैं। जो सृष्टि आदिके प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिनाशं कारण हैं, ब्रह्मा और शिवके स्वरूप हैं तथा जिनका रूप नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्। अचिन्त्य और अलक्ष्य है, प्रात:काल मैं उनका स्मरण करता हूँ। ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं त्रिदेवोंके साथ नवग्रहस्मरण— चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्।। मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च। संसारके भयरूपी महान् दु:खको नष्ट करनेवाले, ग्राहसे गजराजको मुक्त करनेवाले, चक्रधारी एवं नवीन गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कमलदलके समान नेत्रवाले, पद्मनाभ गरुडवाहन भगवान् कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ श्रीनारायणका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ। (मार्क०स्मृ०) शिवस्मरण— ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये सभी मेरे प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं

शिवस्मरण — ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं वृषभवाहनमिबकेशम्। प्रातःकालको मंगलमय करें। अट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं अट्वांम एवं त्रिशूल लिये सेसारके भयको नष्ट करनेवाले, देवेश, गंगाधर, वृषभवाहन, पार्वतीपति, हाथमें खट्वांग एवं त्रिशूल लिये अट्ठतीय संसाररूपी रोगका नाश करनेके लिये अट्ठितीय कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।

रत्नोंसे जटित मकर्कुण्डलों तथा हारोंसे सुशोभित, दिव्यायुधोंसे

दीप सुन्दर नीले हजारों हाथोंवाली, लाल कमलकी आभायुक्त

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ औषध-स्वरूप, अभय एवं वरद मुद्रायुक्त हस्तवाले (वामनपु० १४।३३) भगवान् शिवका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ। भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन और दक्ष—ये समस्त मुनिगण देवीस्मरण— प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें। सद्रत्वन्मकरकुण्डलहारभूषाम् सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च। रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम्॥ सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ शरत्कालीन चन्द्रमाके समान उज्ज्वल आभावाली, उत्तम

सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च

सप्तर्षयो द्वीपवनानि

सप्त।

अङ्क ] * प्रात:स्मरण ****************	ीय श्लोक* २१ जनसम्बद्धमञ्जातम्बद्धमञ्जनमञ्जनमञ्चन
	राजा नल पुण्यकीर्तिवाले हैं, भगवान् जनार्दन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥	पुण्यकीर्तिवाले हैं, माता सीता पुण्यकीर्तिशालिनी हैं और
(वामनपु० १४। २४, २७)	धर्मराज युधिष्ठिर पुण्यकीर्तिवाले हैं। अश्वत्थामा, बलि,
सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि और	वेदव्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम—
पिंगल-ये ऋषिगण; षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम,	ये सात चिरजीवी हैं।
धैवत तथा निषाद—ये सप्त स्वर; अतल, वितल, सुतल,	सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात अधोलोक	जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥
सभी मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें। सातों समुद्र,	(आचारेन्दु)
सातों कुलपर्वत, सप्तर्षिगण, सातों वन तथा सातों द्वीप, भूलींक,	इन सातों तथा आठवें जो मार्कण्डेयजी हैं, उनका नित्य
भुवर्लोक आदि सातों लोक सभी मेरे प्रात:कालको	स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसकी अकालमृत्यु
मंगलमय करें।	नहीं होती और वह सौ वर्षसे भी अधिक जीता है।
प्रकृतिस्मरण—	उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम्।
पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः	प्रातरेव पठेन्नित्यं सौभाग्यं वर्धते सदा॥
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः।	सोमनाथो वैद्यनाथो धन्वन्तरिरथाश्विनौ।
नभः सशब्दं महता सहैव	पञ्चैतान् यः स्मरेन्नित्यं व्याधिस्तस्य न जायते॥
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥	उमा, उषा, सीता, लक्ष्मी तथा गंगा—इन पाँच
(वामनपु० १४। २६)	नामोंका नित्य प्रात:काल पाठ करना चाहिये, इससे
गन्धयुक्त पृथ्वी, रसयुक्त जल, स्पर्शयुक्त वायु,	सौभाग्यकी सदा वृद्धि होती है। सोमनाथ, वैद्यनाथ,
प्रज्वलित तेज, शब्दसहित आकाश एवं महत्तत्व—ये सभी	धन्वन्तरि तथा दोनों अश्विनीकुमारों—इन पाँचोंका जो
मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें।	नित्य स्मरण करता है, उसे कोई रोग नहीं होता।
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं	कपिला कालियोऽनन्तो वासुकिस्तक्षकस्तथा।
पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या।	पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं विषबाधा न जायते॥
दुःस्वप्ननाशस्त्वह सुप्रभातं	हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनूमन्तं हलायुधम्।
भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात्॥	पञ्चकं वै स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम्॥
(वामनपु॰ १४। २८)	कपिला गौ, कालिय, अनन्त, वासुकि तथा तक्षक
इस प्रकार उपर्युक्त इन प्रात:स्मरणीय परम पवित्र	नाग—इन पाँचोंका नित्य नाम-स्मरण करनेसे विषकी बाधा
श्लोकोंका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक प्रात:काल पाठ करता है,	नहीं होती। भगवान् शिव, भगवान् विष्णु, हरिश्चन्द्र,
स्मरण करता है अथवा सुनता है, भगवद्यासे उसके दु:स्वपका	हनुमान् तथा बलराम—इन पाँचोंका नित्य स्मरण करना
नाश हो जाता है और उसका प्रभात मंगलमय होता है।	चाहिये, यह (स्मरण) घोर संकटका नाश करनेवाला है।
पुण्यश्लोकोंका स्मरण पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दन:।	आदित्यश्च उपेन्द्रश्च चक्रपाणिर्महेश्वरः। दण्डपाणिः प्रतापी स्यात् क्षुत्तृड्बाधा न बाधते॥
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः॥	वसुर्वरुणसोमौ च सरस्वती च सागरः।
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषण:।	पञ्चैतान् संस्मरेद् यस्तु तृषा तस्य न बाधते॥
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥	आदित्य, उपेन्द्र, चक्रपाणि विष्णु, महेश्वर तथा
(पद्मपु० ५१।६-७)	प्रतापी दण्डपाणिका स्मरण करनेसे भूख और प्यासकी

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− बात कोई नहीं सुनता। धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ पीड़ा नहीं सताती। अष्ट वसु, वरुण, सोम, सरस्वती तथा सागर-इन पाँचोंका जो स्मरण करता है, उसे प्यासकी और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों पीडा नहीं होती। नहीं करते। कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके सनत्कुमारदेवर्षिशुकभीष्मप्लवङ्गमाः लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दु:ख अनित्य, इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है उसके बन्धनका पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं कामस्तस्य न बाधते॥ रामलक्ष्मणौ सीता च सुग्रीवो हनुमान् कपिः। हेतु अनित्य। यह महाभारतका सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री ' के नामसे प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इसका पाठ पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं महाबाधा प्रमुच्यते॥ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्। वन्दे काशीं गृहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥ परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है। सनत्कुमार, देवर्षि नारद, शुकदेव, भीष्म तथा सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। हनुमानुजी-इन पाँचोंका नित्य स्मरण करनेवालेको काम उज्जियन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्।। नहीं सताता। राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव तथा वानर परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्। हनुमान्जी—इन पाँचोंका नित्य स्मरण करनेवाला महाबाधासे सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥ मुक्त हो जाता है। विश्वेश्वर, बिन्दुमाधव, दुण्ढिराज, वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे। दण्डपाणि, कालभैरव, काशी, गृहा, गंगा, भवानी अन्नपूर्णा हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥ तथा मणिकर्णिकाको मैं नमस्कार करता हूँ। एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः। मातापितृसहस्त्राणि पुत्रदारशतानि सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ च। (१) सौराष्ट्रप्रदेश (काठियावाड्)-में श्रीसोमनाथ, (२) संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥ हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनी (उज्जैन)-में च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।। श्रीमहाकाल, (४) ॐकारेश्वर अथवा अमलेश्वर, (५) ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे। परलीमें वैद्यनाथ, (६) डाकिनी नामक स्थानमें श्रीभीमशंकर, धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥ (७) सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर, (८) दारुकावनमें श्रीनागेश्वर, न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् (९) वाराणसी (काशी)-में श्रीविश्वनाथ, (१०) गौतमी धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतो:। (गोदावरी)-के तटपर श्रीत्र्यम्बकेश्वर, (११) हिमालयपर सुखदुःखे त्वनित्ये केदारखण्डमें श्रीकेदारनाथ और (१२) शिवालयमें नित्यो धर्मः जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ श्रीघुश्मेश्वरको स्मरण करे। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्याके समय इन बारह ज्योतिर्लिगोंका नाम लेता है, इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः उसके सात जन्मोंका किया हुआ पाप इन लिंगोंके स्मरणमात्रसे प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति॥ मनुष्य इस जगत्में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों मिट जाता है। स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये। और करते रहेंगे। अज्ञानी पुरुषको प्रतिदिन हर्षके हजारों नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥ और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं; किंतु विद्वान् रसोंके सारतत्त्वको जाननेवाली हे जिह्ने! तुम सदा पुरुषके मनपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मैं दोनों मधुररसमें प्रीति रखनेवाली हो। हे जिह्ने! तुम नारायणनामामृतका हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी निरन्तर पान करो।

### सफलताके सोपान।

### । आदर्श जीवनचर्याका स्वरूप 1

आवश्यकता है, कारण इस भवाटवीमें अनेक जन्मोंतक भटकनेके बाद अन्तमें यह मानवजीवन प्राप्त होता है। यहाँ प्राणी चाहे तो सदा-सर्वदाके लिये अपना कल्याण कर सकता है अथवा भगवत्प्राप्ति कर सकता है अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे भी मुक्त हो सकता है, परंतु इसके लिये अपने सनातन शास्त्रोंद्वारा निर्दिष्ट जीवनप्रक्रियाका अनुपालन करना पड़ेगा। हमारे शास्त्र परमात्मप्रभुकी आज्ञा हैं तथा प्राणिमात्रके कल्याणके विधान हैं, भगवान् कहते हैं कि जो मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है, वह मेरा द्वेषी तथा वैष्णव होनेपर भी मेरा प्रिय नहीं है-श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घा वर्तते। आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥ श्रीमद्भगवद्गीता भगवान्की वाणी है, इसमें मुख्यरूपसे मनुष्यको कर्तव्यपालन करनेकी शिक्षा प्रदान की गयी है। गीतामें अर्जुनकी इस जिज्ञासापर कि कर्तव्य क्या है, इसका निर्णय कैसे किया जाय? भगवान्ने कहा—कर्तव्य (क्या

मनुष्य-जन्म लेकर प्राणीको अत्यन्त सावधान रहनेकी

करना चाहिये) और अकर्तव्य (क्या नहीं करना चाहिये)-की व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण हैं। यह समझकर हमें शास्त्रविधिसे ही अपना कर्म करना चाहिये— तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहाईसि॥ (गीता १६। २४) भगवान् तो यहाँतक कहते हैं कि जो पुरुष शास्त्रविधिका

त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है, न उसे सुख मिलता है और न उसे परम गति ही प्राप्त होती है-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६। २३) शास्त्रकी परम्परामें जीवनके सभी क्रियाकलापोंके लिये विधि-निषेधका एक विधान बना हुआ है। जो इस

विधानके अन्तर्गत अपने क्रियाकलापोंका सम्पादन करता

उसके वे सभी क्षण, जो अनिवार्यरूपसे दैनिक चर्या आदि कार्यकलापोंके सम्पादनमें लगते हैं, वे क्षण भी उसके

पुण्यार्जनमें सहायक होते हैं। यदि भावना शुद्ध हो तो सभी कार्यकलाप भगवदाराधनके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

यदि अपने २४ घण्टेके समयमें २ घण्टेका समय भगवान्की पूजा तथा परमार्थके शुभ कार्योंमें लगाया तो

श्भकार्यका पुण्य हमें अवश्य प्राप्त होगा, परंतु साथ ही यह प्रश्न उठता है कि बचे हुए २२ घण्टेका समय हमने

किस रूपमें बिताया। यदि यह समय अशास्त्रीय निषिद्ध भोगविलासमें तथा उन भोग्यपदार्थोंके साधन-संचयमें

असत्य और बेईमानीका आश्रय लेकर लगाया तो उसका पाप भी अवश्य भोगना पड़ेगा। इस प्रकार पुण्य कम और

पाप बहुत अधिक होनेके कारण ही जीव पशु-पक्षी, तिर्यक् आदि चौरासी लाख योनियोंमें भटकने लगता है, इसलिये भगवत्कृपासे मनुष्ययोनि प्राप्त होनेपर अत्यधिक

सावधानीकी आवश्यकता है। जो अपना सर्वविध कल्याण चाहते हैं, उन्हें शास्त्रकी विधिके अनुसार अपनी जीवनचर्या एवं दैनिक चर्या बनानी चाहिये। यह मनुष्यमात्रका धर्म है और उसका कर्तव्य है। परंतु इसका पुण्यलाभ अदृष्ट है

अर्थात् प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देता। मृत्युके बाद भी शाश्वत रूपमें इसका फल प्राप्त होता रहता है। आजकल भौतिकविज्ञान एवं आधुनिक वातावरणसे

प्रभावित कई लोग किसी भी कार्यको करनेमें दृष्टलाभकी अर्थात् प्रत्यक्ष दीखनेवाले लाभकी अपेक्षा करते हैं। वास्तवमें संसारमें दीखनेवाली सभी वस्तुएँ और पदार्थ

अनित्य और असत्य हैं अर्थात् ये समाप्त होनेवाले हैं। इसलिये इन्हें अनात्म पदार्थ कहा जाता है, जबतक जीवन है तभीतक इनका उपयोग है, बादमें सब यहाँ ही छूट

जानेवाले हैं। इनका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। परमात्मप्रभु ही सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं, जो प्राय: इन भौतिक आँखोंसे नहीं दीखते, अतः परमात्मप्रभुकी प्राप्ति

ही मनुष्यका शाश्वत कल्याण है। इस दृष्टिसे धार्मिक कार्यक्रमोंका मुख्य फल अदृष्ट

ही है, जो प्राय: दीखता नहीं अर्थात् दूसरे जन्मोंमें भी प्राप्त है, वह वस्तुत: भगवानुकी आज्ञाका पालन करता है,

इस वाक्यमें धर्मके दो फल बताये गये हैं—१-लौकिक अभ्युदय—उन्नति, २-अलौकिक नि:श्रेयस— कल्याण, जिसका फल दूसरे जन्ममें भी प्राप्त होता है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि कोई व्यक्ति केवल भौतिक लाभको उद्देश्य बनाकर वैज्ञानिक उपयोगिताके आधारपर विधि-निषेधका पालन करता है तो उसे लौकिक लाभ तो

भारतक लाभका उद्दश्य बनाकर वज्ञानिक उपयागिताक आधारपर विधि-निषेधका पालन करता है तो उसे लौकिक लाभ तो प्राप्त होगा, परंतु वह आध्यात्मिक लाभसे वंचित हो जायगा। उदाहरणार्थ—कोई व्यक्ति गंगाजल तथा तुलसीदलकी

उदाहरणार्थ—कोई व्यक्ति गंगाजल तथा तुलसीदलकी रोगनाशकतारूप उपयोगिताको भौतिक रूपसे जानकर सेवन करता है, उसे केवल रोगनाशरूप लौकिक गौणफलकी ही प्राप्ति होगी। गंगाजल भगवान्के चरणकमलका चरणोदक है, स्नान-पानद्वारा पापनाशक, अन्त:करणशोधक तथा

भगवत्प्रसादरूप है—इन श्रद्धापूर्ण भावनाओंसे होनेवाला अलौकिक मुख्य फल उसे नहीं प्राप्त होगा; क्योंकि जबतक लक्ष्य नहीं बनता तथा श्रद्धापूर्ण भावना नहीं होती, तबतक

लक्ष्य नहीं बनता तथा श्रद्धापूर्ण भावना नहीं होती, तबतक अलौकिक फलकी प्राप्ति नहीं होती। वेद-शास्त्रकी आज्ञा मानकर गंगाजलका स्नान-पान करनेसे उक्त अलौकिक फल तो मुख्यरूपसे प्राप्त होता है, किंतु रोगनाशक लौकिक

गंगाजलकी वस्तुशक्तिमें स्वाभाविक रूपसे विद्यमान रहता है। उसमें भावनाकी अपेक्षा नहीं होती। अत: अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको भगवान्की आज्ञा मानकर प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त उद्देश्य

गौणफल भी प्राप्त हो जाता है। कारण, रोगनाशरूप गुण

बनाकर शास्त्रद्वारा प्रतिपादित विधि-निषेधका पालन करते हुए अपनी जीवनचर्या एवं दैनिक चर्या बनानी चाहिये। इससे अभ्युदय तथा नि:श्रेयस—लौकिक और अलौकिक—

दोनों फलोंकी प्राप्ति स्वाभाविक रूपसे होगी।

आधुनिक वातावरणमें लोगोंको कई प्रकारकी

आधुनिक वातावरणम लागाका कई प्रकारका आवश्यकताएँ तथा अपेक्षाएँ रहती हैं, वे शास्त्रोक्त विधि-निषेधके पालन करनेमें सशंकित रहते हैं तथा करना चाहिये। आचार-धर्मका पालन करनेसे मनुष्य आयु, इच्छानुरूप सन्तति और अक्षय धनको प्राप्त करता है, इतना ही नहीं; अल्पमृत्यु आदिका भी नाश होता है, जो

दु:ख भोगता रहता है तथा रोगी और अल्पायु (कम उम्रवाला) होता है। विद्या आदि सद्गुणोंसे हीन पुरुष भी यदि सदाचारी और श्रद्धावान् तथा ईर्ष्यारहित होता है तो वह भी सौ वर्षोंतक जीता है।'\*

यहाँ श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थोंके आधारपर

है। अतः यहाँ शास्त्रोक्त दैनिक चर्या एवं जीवनचर्याकी

प्रस्तुति वैज्ञानिक रीतिसे मनमें उठनेवाली शंकाओंका

समाधान करते हुए की जा रही है-जिसका पालन

कर्तव्यबुद्धिसे करनेपर लोक-परलोक दोनों सुधर

सकते हैं अर्थात् लोकमें तो व्यक्ति स्वस्थ रहकर सुखी हो सकता है और परलोकमें पुण्यकी प्राप्तिकर अपने

आचार: परमो धर्म:

शरीर स्वस्थ, मन शान्त और बुद्धि निर्मल होती है एवं

उसका अन्त:करण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है। शुद्ध अन्त:करण ही वस्तुत: भगवानुके चिन्तन और ध्यानके

योग्य होता है, उसीमें भगवान्का स्थिर आसन लगता है।

इसलिये मनुष्यको शास्त्रोक्त आचार जानना चाहिये और

उसका पालन करना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं-

अंगभूत धर्मका मूल—सदाचारका सावधानीपूर्वक सेवन

पुरुष दुराचारी है, उसकी लोकमें निन्दा होती है, वह सदा

'श्रुति और स्मृतिमें कथित अपने नित्य कर्मोंके

आचार-विचार परम धर्म है। सदाचारमें लगे मनुष्यका

कल्याणपथका पथिक बन सकता है।

तथा वर्तमान आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर शास्त्रोक्त दिनचर्या तथा जीवनचर्या प्रस्तुत है, जिसका पालन करनेपर स्वास्थ्य आदि भौतिक लाभके साथ-साथ आध्यात्मिक और

विधि-निषेधके पालन करनेमें सशंकित रहते हैं तथा पारमार्थिक लाभकी प्राप्ति भी हो सकेगी।

\* श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु। धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रित:॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

दुराचारा ।ह पुरुषा लाक भवात ।नान्दतः । दुःखभागा च सतत व्याधिताऽल्पायुरव च ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥ (मनु० ४। १५५—१५८)

\* सफलताके सोपान*\** अङ्क ] दिनचर्या दर्शन करता हूँ। इससे धन तथा विद्याकी प्राप्तिके साथ-प्रात:जागरण पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये कल्याणकामी व्यक्तिको साथ कर्तव्यकर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें (अर्थात् सूर्योदयसे ३ घंटेसे १<sup>१</sup>/२ वेदव्यासने करोपलब्धिको मानवका परम लाभ माना है। घण्टे पूर्वतक) शय्याका त्याग करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त भगवानुने हमें विवेकशक्ति इसलिये प्रदान की है कि हम तथा उष:कालकी बडी महिमा है, इस समय उठनेवालेका अपने हाथोंसे सदा सत्कर्म करते रहें। करावलोकनके स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है, जो विधानका आशय यह भी है कि प्रात:काल उठते ही दृष्टि सूर्योदयके समय सोता है, उसकी उम्र और शक्ति घटती कहीं और न जाकर अपने करतलमें ही देवदर्शन करे, है तथा वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार होता है। जिससे वृत्तियाँ भगविच्चन्तनकी ओर प्रवृत्त हों, बुद्धि आयुर्वेदशास्त्रमें यह बताया गया है कि ब्राह्ममुहूर्तमें सात्त्विक बनी रहे तथा पूरा दिन शुभ कार्योंमें बीते। उठनेसे वर्ण, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्वास्थ्य तथा आयुकी भुमिवन्दना प्राप्ति होती है, उसका शरीर कमलकी तरह प्रफुल्लित हो इस प्रकार करदर्शनके अनन्तर व्यक्तिको चाहिये कि जाता है। वह पृथ्वीमाताकी वन्दना करे। पृथ्वी सबकी माता हैं, धरित्री हैं, उन्होंने सबको धारण कर रखा है, वे सभीके वर्णं कीर्तिं मितं लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति। लिये पूज्य हैं, वन्द्य हैं तथा आराधनाके योग्य हैं। भगवान् ब्राह्मे मुहर्ते सञ्जाग्रिच्छ्यं वा पङ्कुजं यथा॥ विष्णुकी दो पत्नियाँ हैं-१-महादेवी लक्ष्मी (श्रीदेवी) (भै० सार० ९३) धर्मशास्त्रोंमें भी कहा है कि 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत' तथा दूसरी हैं भूदेवी (पृथ्वी)। निद्रा-परित्यागके अनन्तर अर्थात् सभीको ब्राह्ममुहूर्तमें उठ जाना चाहिये। इस समय चूँकि हमें अपने शयनके आसनसे भूमिपर उतरना है तो वायु अत्यन्त शीतल तथा मधुर होती है। यह समय ब्रह्मका पाँव रखना पड़ेगा और अपनी माताके ऊपर कौन ऐसा है, चिन्तन करनेके लिये सर्वोत्तम है, इसीलिये इसे ब्राह्ममूहर्त जो पाँव रखेगा? परंतु पाँव रखे बिना भी आगेके कर्म कहा जाता है। वैसे इस समय जो भी कार्य किया जाय, सम्पादित होने असम्भव हैं। अतः इसी विवशताके कारण वह बहुत अच्छा होता है। इस समयमें चन्द्रिकरणोंसे पृथ्वीमाताकी सर्वप्रथम वन्दना की जाती है और निम्नलिखित अमृतका क्षरण होता है, इसलिये इस कालको अमृतवेला प्रार्थनाके द्वारा उनसे क्षमा माँगी जाती है, भूमिपर पाँव रखनेसे पूर्व निम्न श्लोक पढ़ना चाहिये-भी कहा जाता है। करदर्शन समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥ प्रात:काल उठते ही शयन-शय्यापर सर्वप्रथम करतल (दोनों हाथोंकी हथेलियों)-के दर्शनका विधान है। करतलका इसका भाव यह है कि हे पृथ्वीदेवि! आप समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली हैं, पर्वतरूपी स्तनोंसे दर्शन करते हुए निम्नलिखित श्लोकका पाठ करना सुशोभित हैं तथा भगवान् विष्णुकी आप पत्नी हैं, आपको चाहिये— नमस्कार है, मेरे द्वारा होनेवाले पादस्पर्शके लिये आप मुझे कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती। करमुले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥ क्षमा करें। इस श्लोकमें धनकी अधिष्ठात्री लक्ष्मी, विद्याकी मंगल-दर्शन एवं गुरुजनोंका अभिवादन अधिष्ठात्री सरस्वती तथा कर्मके अधिष्ठाता ब्रह्माकी स्तुति प्रात:-जागरणके बाद यथासम्भव सर्वप्रथम मांगलिक की गयी है। इस मन्त्रका आशय है कि मेरे कर (हाथ)-वस्तुएँ (गौ, तुलसी, पीपल, गंगा, देवविग्रह आदि) जो भी के अग्रभागमें भगवती लक्ष्मीका निवास है, कर (हाथ)-उपलब्ध हों, उनका दर्शन करना चाहिये तथा घरमें माता-के मध्यभागमें सरस्वती तथा कर (हाथ)-के मूलभागमें पिता एवं गुरुजनों, अपनेसे बडोंको प्रणाम करना चाहिये। ब्रह्मा निवास करते हैं। प्रभातकालमें मैं हथेलियोंमें इनका अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करनेका बड़ा लाभ है। अभिवादन

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− (प्रणाम) करनेवाले तथा नित्य वृद्ध पुरुषोंकी सेवा है। इसी मनोविज्ञानके आधारपर प्रात:काल उनके स्मरणका करनेवाले पुरुषकी आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति (बल)— विधान किया गया है। प्रात:स्मरणके कुछ श्लोक मंगलाचरणके इन चारोंकी वृद्धि होती है। अपने दोनों हाथोंको एक-साथ प्रारम्भमें दिये गये हैं, जिन्हें देखना चाहिये। दूसरेपर रखते हुए दाहिने हाथसे दाहिने पैरका तथा बायें कर्मोंद्वारा भगवदाराधना हाथसे बायें पैरका स्पर्श करता हुआ अभिवादन करे। भगवद्गीतामें भगवान्ने यह आदेश दिया है कि विज्ञानकी दृष्टिसे मनुष्यके शरीरमें रहनेवाली विद्युत्-शक्ति **'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दित मानवः'** अपने पृथ्वीके आकर्षणद्वारा आकृष्ट होकर पैरोंसे निकलती रहती कर्मों के द्वारा भगवान्की पूजा सम्पन्न होनेपर लक्ष्यकी प्राप्ति है। दाहिने हाथसे दाहिने पैर और बायें हाथसे बायें पैरका हो जाती है। इसकी प्रक्रियाके रूपमें भगवानने अर्जुनको यह स्पर्श करनेपर वृद्ध पुरुषके शरीरकी विद्युत्-शक्तिका प्रवेश भी उपदेश दिया कि 'मामनुस्मर युध्य च' अर्थात् मेरा स्मरण प्रणाम करनेवाले पुरुषके शरीरमें सुगमतासे हो जाता है। करते हुए युद्धरूपी अपने कर्मका सम्पादन करो। यह जगत्के इस विद्युत्-शक्तिके साथ वृद्ध पुरुषके ज्ञानादि सद्गुणोंका सभी मनुष्योंके लिये भगवानुका उपदेश है। अत: संकल्परूपमें भी प्रवेश हो जाता है। विद्युत्-शक्ति मुख्यरूपसे पैरोंद्वारा भगवान्से यह प्रार्थना करनी चाहिये। हे परमात्मन्! श्रृति और स्मृति आपकी ही आज्ञाएँ निकलती है, इसलिये पैर ही छुए जाते हैं, सिर आदि नहीं। वृद्ध पुरुषोंको नित्य प्रणाम करनेसे वे प्रसन्न होकर अपने हैं।<sup>२</sup> आपकी इन आज्ञाओंके पालनके लिये मैं इस समयसे दीर्घकालीन जीवनमें सम्पादन किये हुए ज्ञानका दान प्रणाम लेकर सोनेतक सभी कार्य करूँगा। इससे आप मुझपर करनेवालेको देते हैं। इस प्रकार ज्ञान-दानद्वारा प्रत्यक्षरूपमें प्रसन्न हों; क्योंकि आज्ञापालनसे बढ़कर स्वामीकी और और विद्युत्-शक्ति-प्रवेशद्वारा अप्रत्यक्षरूपमें उनके गुणोंकी कोई सेवा नहीं होती। आपकी यह आज्ञा है कि काम प्राप्ति प्रणाम करनेवाले व्यक्तिको प्राप्त हो जाती है। करनेके साथ-साथ मैं आपका स्मरण<sup>३</sup> करता रहूँ। देवताओं तथा महापुरुषोंका स्मरण तदनुसार यथासम्भव आपका स्मरण करता हुआ और नाम प्रात:काल उठनेके बाद शौचादि कृत्यसे निवृत्त लेता हुआ काम करता रहुँगा तथा उन्हें आपको समर्पित होकर अथवा इसके पूर्व हाथ, मुँह धोकर कपड़े बदलकर भी करता रहुँगा। इस कर्मरूप पूजासे आप प्रसन्न हों। अपने इष्टदेवका, देवताओंका तथा महापुरुषोंका स्मरण इस प्रकार निम्न प्रार्थना करके अपनी दैनिक चर्या तथा उनकी प्रार्थना करनी चाहिये। प्रारम्भ करनी चाहिये। प्रातःस्मरणीय श्लोक जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये। प्रात:स्मरणीय श्लोकोंका प्रात:काल पाठ करनेसे नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥ बहुत कल्याण होता है, जैसे-१-दिन अच्छा बीतता है, २-त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव दु:स्वप्न, कलिदोष, शत्रु, पाप और भवके भयका नाश होता श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव। है, ३-विषका भय नहीं होता, ४-धर्मकी वृद्धि होती है, समुत्थाय तव प्रियार्थं प्रात: अज्ञानीको ज्ञान प्राप्त होता है, ५-रोग नहीं होता, ६-पूरी आयु संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये मिलती है, ७-विजय प्राप्त होती है, ८-निर्धन धनी होता है, भाव यह है कि हे जिह्ने! तुम सभी रसोंके तत्त्वको ९-भूख-प्यास और कामकी बाधा नहीं होती तथा १०-सभी जाननेवाली हो तथा सर्वदा मधुर रस ही तुम्हें प्रिय है। अत: बाधाओंसे छुटकारा मिलता है इत्यादि। हे जिह्ने! तुम नारायणरूपी नामामृतका निरन्तर पान करती इसके साथ ही स्वयंमें दैवी गुणोंका आधान तथा रहो। हे तीनों लोकोंके चैतन्यस्वरूप आदिदेव विष्णो! महापुरुषोंके गुणोंको जीवनमें धारण करनेकी प्रेरणा मिलती प्रात:काल उठकर मैं आपकी आज्ञासे ही आपकी प्रसन्नता प्राप्त १-अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

२-श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे०। (वांधूलस्मृ० १८९, ब्रह्मपु०, आचारेन्दु) ३-(क) मामनुस्मर युध्य च। (गीता ८।७) (ख) कर्मकालेऽपि सर्वत्र स्मरेद् विष्णुं हविर्भुजम्। तेन स्यात् कर्म सम्पूर्णं तस्मै सर्वं निवेदयेत्॥ (आश्वलायन)

\* सफलताके सोपान \* अङ्क ] करनेके लिये सांसारिक कार्योंमें प्रवृत्त होने जा रहा हूँ। आगे कहे—अद्य सूर्योदयादारभ्य श्वस्तनसूर्योदयपर्यन्तं इस प्रार्थनामें अपनी दैनिक चर्या प्रारम्भ करनेके पूर्व षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र ( २१६०० )-संख्याकोच्छ्-भगवानुकी आज्ञा प्राप्त की जाती है तथा उनकी प्रसन्नता वासनि:श्वासाभ्यां हंसं सोऽहंरूपाभ्यां गणेशब्रह्मविष्ण्-प्राप्त करनेके लिये हम अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं। महेशजीवात्मपरमात्मगुरुप्रीत्यर्थमजपागायत्रीजपं करिष्ये। अजपाजप<sup>१</sup> संस्कृत भाषाके संकल्पको उच्चारण करनेमें असुविधा हो तो मानसिक संकल्प भी किया जा सकता है। श्वास-सामान्यतया प्रत्येक स्वस्थ मनुष्यके चौबीस घंटेमें २१६०० श्वास आते हैं। सन्तों-महात्माओंकी यह आज्ञा है प्रश्वासके साथ सहज होनेवाले हंस मन्त्रके जपको भगवान्को भावपूर्वक मनसे समर्पित कर देना चाहिये तथा कि कम-से-कम इतना नाम-जप प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन करना चाहिये। इसके लिये शास्त्रने एक बड़ा सुगम साधन दूसरे दिनका प्रतिज्ञा-संकल्प भी मानसिक कर लेना बताया है—अजपाजप। इस साधनसे पता चलता है कि चाहिये। जीवपर भगवानुकी कितनी असीम अनुकम्पा है। अजपाजपका उष:पान संकल्प कर लेनेपर २४ घंटेमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं हो आयुर्वेदके अनुसार प्रात:काल सूर्योदयके पूर्व तथा पाता। चाहे हम जागते हों, स्वप्नमें हों या सुषुप्तिमें हों— शौचसे पहले जल पीनेकी विधि भी है। रात्रिमें ताम्रपात्रमें ढँककर रखा हुआ जल प्रात:काल कम-से-कम आधा

प्रत्येक स्थितिमें 'हंस'<sup>२</sup> का जप श्वासक्रियाद्वारा अनायास होता ही रहता है। संकल्प कर देनेमात्रसे यह जप उस व्यक्ति (मनुष्य)-द्वारा किया हुआ माना जाता है।3 (क) किये हुए अजपाजपके समर्पणका संकल्प—

'ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बुद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे ····स्थाने ····नामसंवत्सरे ····ऋतौ ····मासे ····पक्षे ····तिथौ

···दिने प्रातःकाले ···गोत्रः ···शर्मा ( वर्मा /गुप्तः ) अहं ह्यस्तनसूर्योदयादारभ्य अद्यतनसूर्योदयपर्यन्तं श्वासिक्रयया भगवता कारितं 'अजपागायत्रीजपकर्म' भगवते समर्पये।

ॐ तत्सत् श्रीब्रह्मार्पणमस्तु।'

(उत्तरगीता १।५ में गौडपादाचार्य)

(ख) आज किये जानेवाले अजपाजपका संकल्प— किये गये अजपाजपको भगवान्को अर्पितकर आज सूर्योदयसे लेकर कल सूर्योदयतक होनेवाले अजपाजपका संकल्प

करे—'ॐ विष्णु' से प्रारम्भकर ....'अहं' तक बोलनेके बाद

उच्चारण किये केवल श्वासके आने-जानेसे जो जप सम्पन्न होता है, उसे 'अजपा' कहते हैं।

१-(क) 'न जप्यते, नोच्चार्यते (अपितु श्वासप्रश्वासयोर्गमनागमनाभ्यां सम्पाद्यते) इति अजपा।' (शब्दकल्पद्रुम) अर्थात् बिना जप एवं

(ख) अग्निपुराणमें बतलाया गया है कि श्वास-प्रश्वासद्वारा 'हंस:', 'सोऽहं' के रूपमें शरीरस्थित ब्रह्मका ही उच्चारण होता रहता है, अतः तत्त्ववेत्ता इसे ही 'जप' कहते हैं। उच्चरति स्वयं यस्मात् स्वदेहावस्थित: शिव:। तस्मात् तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते॥ (२१४।२४)

२-(क) उच्छवासश्चैव नि:श्वासो हंस इत्यक्षरद्वयम्। तस्मात् प्राणस्थहंसाख्य आत्माकारेण संस्थित:॥

लीटर अथवा सम्भव हो तो सवा लीटरतक पीना चाहिये,

इसे उष:पान कहा जाता है, इससे कफ, वायु एवं पित्त

(त्रिदोष)-का नाश होता है तथा व्यक्ति बलशाली एवं

दीर्घायु होता है, मल साफ होता है, पेटके विकार दूर होते हैं। भारतीय शास्त्रोंमें कही गयी सभी बातें वैज्ञानिक हैं,

धार्मिक हैं और ऐसी भी बातें बतायी गयी हैं, जो विज्ञानकी

शौचाचार

मूत्रका त्याग करते समय सिरको कपड़ेसे ढक लेना

चाहिये अथवा जनेऊको बायें कानसे सटाकर सिरके

ऊपरसे दाहिने कानमें लपेट लेना चाहिये। इस क्रियासे रक्त तथा वायुकी गति अधोमुखी होनेसे मलत्यागमें सहायता

मिलती है और शरीरके उत्तम तथा पवित्र अंग सिर

आदिकी मलके परमाणुओंसे रक्षा होती है। शौचके समय

इसके बाद मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मल-

(ख) परमात्माको 'हंस' इसलिये कहा जाता है कि वह जीवोंके भटकावका हनन कर देता है—'हन्ति जीवसंसारमिति हंस:।'

(ग) भगवान्ने हंसावतार धारण भी किया था। (देखिये श्रीमद्भा० ११। १३)

कल्पनासे भी बाहर हैं।

३-अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी। तस्याः संकल्पमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः॥ (आचाररत्नमें अंगिरा, आचारभूषण)

 अात्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− ऊपर-नीचेके दाँतोंको जोरसे सटाकर रखना चाहिये, इससे हो पाता। मनोभावको शुद्ध रखना आभ्यन्तर शौच माना दाँत मजबूत होते हैं, बहुत दिनोंतक चलते हैं, दाँतोंकी कोई जाता है। किसीके प्रति ईर्ष्या, राग-द्वेष, लोभ, मोह, मद-बीमारी नहीं होने पाती। मल-मूत्रका त्याग करते समय मात्सर्य, घृणा आदिके भावका न होना आभ्यन्तर शौच है। मौन रहना चाहिये। चोटी (शिखा) खुली रखनी चाहिये व्याघ्रपादका कथन है कि यदि पहाड़ जितनी मिट्टी और एवं ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिये। गंगाके समस्त जलसे जीवनभर कोई बाह्य शुद्धिकार्य करता सामान्यतः पेशाब करके पानीसे मूत्रेन्द्रियको जरूर रहे, किंतु उसके पास आन्तरिक शौच न हो तो वह शुद्ध नहीं हो सकता।<sup>३</sup> अत: आभ्यन्तर शौच अति आवश्यक धोना चाहिये। मलत्यागके बाद मिट्टीसे गुदा आदि जरूर धो लें, इससे बवासीरकी बीमारी नहीं होती। शास्त्रानुसार है। भगवान् सबमें विद्यमान हैं, इसीलिये किसीसे द्वेष-लिंगको एक बार तथा गुदाको तीन बार मिट्टी लगाकर धो क्रोधादि क्यों किया जाय? सबमें भगवान्का दर्शन करते लेना चाहिये। बायें हाथको दस बार और दोनों हाथोंको हुए सभी परिस्थितियोंको भगवान्का वरदान समझते हुए मिलाकर सात बार तथा पैरको भी मिट्टीसे धोनेकी विधि सबमें मैत्रीभाव रखे, साथ ही प्रतिक्षण भगवान्का स्मरण करते है। शौचके बाद बारह कुल्ले तथा लघुशंकाके बाद चार हुए उनकी आज्ञा समझकर शास्त्रविहित कार्य करता रहे। कुल्ले करनेका विधान है। दन्तधावन परिस्थितिभेदसे शौचकी यह प्रक्रिया बदल जाती है। शौचनिवृत्तिके पश्चात् व्यक्तिको दातौन तथा मंजनसे स्त्री और शूद्रके लिये तथा रातमें अन्योंके लिये भी यह दाँतोंको साफ करना चाहिये। आजकल दाँतोंको साफ आधी हो जाती है। यात्रा (मार्ग)-में चौथाई बरती जाती करनेके लिये ब्रशका प्रयोग लोग अधिक करते हैं, परंतु है। रोगियोंके लिये यह प्रक्रिया उनकी शक्तिपर निर्भर हो नीम तथा बबूल आदिकी दातौन दाँतोंकी सुरक्षाके लिये जाती है। शौचका उपर्युक्त विधान स्वस्थ गृहस्थोंके लिये अधिक लाभप्रद हैं। रविवार, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्रत, श्राद्धादि दिनोंमें दातौन करनेका विधान नहीं है।१ है। अत: इन दिनोंमें केवल शुद्ध मंजनसे दाँत साफ करना साबुनसे शुद्धि नहीं — आजकल आधुनिक वातावरणमें मिट्टीके स्थानपर साबुनसे हाथ धोनेकी प्रक्रिया चल रही है, श्रेयस्कर है। दाँत साफ करनेके बाद जीभीसे जीभ भी परंतु शास्त्रानुसार साबुनसे शुद्धि और पवित्रता नहीं होती। साफ करनी चाहिये। यह मिट्टीसे ही प्राप्त है। आजकल तो अधिकतर चर्बीयुक्त व्यायाम तथा वायुसेवन शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये, कार्य करनेकी सामर्थ्य साबुन बनते हैं, जो और भी अशुद्ध हैं। इससे हाथ धोनेपर कभी-कभी स्वच्छताकी प्रतीति तो होती है, परंतु वास्तवमें बनाये रखनेके लिये, पाचनक्रिया तथा जठराग्निको ठीक पवित्रता प्राप्त नहीं होती। वैसे भी मलमें घृत-तेलकी तथा रखनेके लिये, शरीरको सुगठित, सुदृढ़ और सुडौल

पित्तकी स्निग्धता—चिकनाहट मिली रहती है, उसकी बनानेकी दृष्टिसे अपने आयु, बल, देश और कालके

शुद्धि रुक्ष तथा क्षारयुक्त मिट्टी या राखसे जितनी अच्छी अनुरूप नियमित रूपसे योगासन एवं व्यायाम अवश्य तरह होती है, वैसी स्निग्ध साबुनसे नहीं होती। करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्यक्ति सामान्यत: बीमार नहीं

**आभ्यन्तर शौच<sup>२</sup>—**मिट्टी और जलसे होनेवाला यह होते और उन्हें औषधिसेवनकी आवश्यकता ही नहीं शौचकार्य बाहरी है, इसकी भी आवश्यकता है, किंतु पडती ।<sup>४</sup>

आभ्यन्तर (आन्तरिक) शौचके बिना यह प्रतिष्ठित नहीं सुबह और शामको नित्य खुली, ताजी और शुद्ध

१-स्त्रीशुद्रयोरर्धमानं शौचं प्रोक्तं मनीषिभि:।दिवा शौचस्य निश्यर्धं पथि पादो विधीयते॥

आर्तः कुर्याद् यथाशक्तिः शक्तः कुर्याद् यथोदितम्॥ (आचारभूषणमें आदित्यपुराण, दक्षस्मृति) २-शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ (दक्षस्मृति ५।३) ३-गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृद्भारैश्च नगोपमै:।आमृत्योश्चाचरन् शौचं भावदुष्टो न शुध्यति॥

(आचारेन्द्रमें व्याघ्रपाद, यही भाव दक्षस्मृतिका है।) ४-(क) लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः । विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥ (अ०ह०सू० २।१०)

(ख) वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च ॥ समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्। (सु०चि० २४।४८-४९)

अङ्क ] * सफलता	के सोपान∗ २९
**************************************	**************************************
हवामें अपनी शक्तिके अनुसार थकान न मालूम होनेतक	किया गया है। इसके अतिरिक्त तेलमर्दनसे त्वचा कोमल
साधारण चालसे घूमना चाहिये। नियमपूर्वक कम-से-कम	बनती है। तेलमालिशके लिये सरसोंका तेल अधिक
दो-तीन किलोमीटरतक घूमना चाहिये। प्रौढावस्थामें टहलना	उपयोगी है। धर्मशास्त्रमें एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या,
भी एक प्रकारका व्यायाम है। नियमपूर्वक घूमनेके	सूर्यकी संक्रान्ति, व्रत तथा श्राद्ध आदिके दिन एवं रवि,
व्यायामसे और शुद्ध वायुसेवनसे शरीरको बहुत लाभ	मंगल, गुरु और शुक्रवारको तेल लगानेका निषेध है। किंतु
पहुँचता है। यह कार्य स्नानके बाद अथवा पूर्व दोनों	यह निषेध तिल-तेलके लिये है। सरसोंके तेल तथा
प्रकारसे किया जा सकता है।	सुगन्धित तेलके लिये नहीं <sup>४</sup> —ब्रह्मचारी तथा संन्यासीके
एक बात ध्यान रखनेकी है कि व्यायाम, योगासन	लिये तैलाभ्यंगका निषेध है।
अथवा टहलनेके समय भगवन्नाम-जप अथवा स्तोत्र-	क्षौर
पाठादि अवश्य करना चाहिये, जिससे समयका आध्यात्मिक	शास्त्रोंमें क्षौरसम्बन्धी विचार विस्तारसे हुआ है। क्षौर
सदुपयोग होता रहे।	कब करना चाहिये, कब नहीं करना चाहिये तथा क्यों नहीं
तैलाभ्यंग	करना चाहिये—इसपर अनेक प्रकारकी मीमांसा प्राप्त होती
आयुर्वेदशास्त्रमें शरीरकी आरोग्यता तथा मनकी	है। प्राचीन शास्त्रीय परम्पराको माननेवाले लोग इन बातोंका
प्रसन्नताके लिये तैलाभ्यंग (तेलमालिश) भी प्रतिपादित	ठीक-ठीक पालन करते हैं, किंतु इसका फल अदृष्ट
किया गया है। जरा, श्रम तथा वातके विनाशार्थ और शरीरकी	होनेसे कुछ आधुनिक लोग यह विचार नहीं रखते।
दृढ़ता, पुष्टि और दृष्टिवृद्धिके लिये स्नानके पूर्व नित्य	सामान्यत: सोमवार, बुधवार, रविवार तथा शुक्रवार क्षौरकर्मके
तेलकी मालिश करनी चाहिये। सिर, कान तथा पाँवके	लिये प्रशस्त दिन माने गये हैं। एकादशी, चतुर्दशी,
तलवोंमें तेलकी मालिशका विशेष लाभ है। १ कानमें तेल	अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, शनिवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार,
डालनेसे कानके रोग, ऊँचा सुनना, बहरापन आदि विकार	व्रतके दिन तथा श्राद्धादिके दिनोंमें बाल तथा दाढ़ी नहीं
नहीं होते। सिरकी मालिशसे कानोंको और कानोंकी	बनवानी चाहिये। जिस व्यक्तिको एक सन्तान हो, उसे
मालिशसे पाँवोंको लाभ पहुँचता है तथा पाँवोंकी मालिशसे	सोमवारके दिन क्षौर निषिद्ध है।
नेत्ररोगोंका एवं नेत्रोंके अभ्यंगसे दन्तरोगोंका शमन होता है। र	स्नान
तेलमर्दनके विषयमें चरकने कहा है कि शरीरको स्वस्थ	व्यक्तिको प्रतिदिन मन्त्रपूत स्वच्छ जलसे स्नान करना
रखनेके लिये अधिक वायुकी आवश्यकता है। वायुका	चाहिये। तभी वह सन्ध्यावन्दन, मन्त्रजप, स्तोत्र आदि पाठ
ग्रहण त्वचाके आश्रित है। त्वचाके लिये अभ्यंग तेलमालिश	तथा भगवद्दर्शन और चरणामृत-ग्रहण करनेका अधिकारी
परमोपकारी है, इसलिये मालिश करनी चाहिये। साधारणतया	बनता है, गंगा आदि पवित्र निदयों में, बहते हुए नद
तो यही माना जाता है कि वायुका ग्रहण केवल नासिकाद्वारा	अथवा निर्मल जलवाले सरोवरमें स्नान करना भौतिक तथा
ही किया जाता है, किंतु वास्तविक बात यह है कि जितनी	आध्यात्मिक दृष्टिसे सर्वोत्तम है। यदि ऐसा न हो सके तो
वायुका नाकसे ग्रहण किया जाता है, उतनी वायु शरीरके	सामान्य जलमें भी निम्न मन्त्रसे गंगादिका आवाहन करके
लिये पर्याप्त नहीं है, इसलिये शरीरमें त्वचाके रोमकूपोंसे	स्नान करना चाहिये—
ही शेष वायुकी पूर्ति होती है। इन रोमकूपोंको स्वच्छ, शुद्ध	गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
तथा खुला रखनेके लिये ही तेलमर्दनका मुख्य रूपसे विधान	नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

१. अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं जराश्रमवातहा । दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदाढर्यकृत्॥

शिर:श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्। (अ०ह०सू० २।८-९) मन्याहनुसंग्रह: । नोच्चै: श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्॥ (च०सू० ५।८४) कर्णरोगा २. न वातोत्था न

मूर्ध्नोऽभ्यंगात् कर्णयोः शीतमायुः कर्णाभ्यंगात् पादयोरेवमेव । पादाभ्यंगान्नेत्ररोगान् हरेच्च नेत्राभ्यंगाद् दन्तरोगांश्च नश्येत्॥ ३. स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम्। त्वच्यश्च परमभ्यङ्गस्तस्यात्तं शीलयेन्नरः॥ (चरकसंहिता सू० ५।८७)

४. सार्षपं पुष्पवासितम्। अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन॥ (निर्णयसिन्धु) गन्धतैलं यत्तैलं प्रतिदिनं वारिणा । प्रात:स्नानेन योग्य: स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु॥ ५. स्नानं कुर्यान्मन्त्रपूतेन

A. S. W.	
<u> </u>	**************************************
टंकीमें जमा किये हुए नलके जलकी अपेक्षा कुएँसे	<b>अशक्तोंके लिये स्नान</b> —स्नानमें असमर्थ होनेपर
निकाला हुआ जल, कुएँके निकाले हुए जलसे झरनेका	सिरके नीचेसे ही स्नान करना चाहिये अथवा गीले वस्त्रसे
जल, झरनेके जलसे सरोवरका जल, सरोवरके जलसे	शरीर पोंछ लेना भी एक प्रकारका स्नान कहा गया है।
नदीका जल, नदीके जलसे तीर्थका जल, तीर्थके जलसे	अधिक अस्वस्थतामें हाथ-पैर, मुँह आदि धोकर कपड़े
गंगाजीका जल अधिक श्रेष्ठ माना गया है। <sup>१</sup> उषाकी	बदलनेपर भी स्नानकी विधि पूरी हो जाती है।
लालीके पहले ही स्नान करना उत्तम माना गया है। <sup>२</sup> इससे	वस्त्रधारण
प्राजापत्यव्रतका फल प्राप्त होता है। <sup>३</sup> तेल तथा शरीरको	वस्त्रधारणका मुख्य उद्देश्य शरीररक्षा तथा लज्जानिवारण
मल-मलकर नदीमें नहाना मना है। अतः नदीसे बाहर	है। अतः स्थान और कालको दृष्टिमें रखकर शरीररक्षाके

अात्मनः प्रतिकलानि परेषां न समाचरेत \*

तटपर ही देह मलकर नहा ले तब नदीमें गोता लगाये।<sup>8</sup>

शास्त्रोंने इसे मलापकर्षणस्नान कहा है।

शरीरको अँगोछे तथा हाथसे मल-मलकर खुब नहाना चाहिये। नहाते समय ऐसा निश्चय करे कि मेरे

शरीरके मैलके साथ ही मनका मैल भी धुल रहा है और इस समय भगवानुके नामका उच्चारण अवश्य करते रहना चाहिये। अपने शास्त्रोंमें सात प्रकारके स्नान बताये गये हैं—

१-मन्त्रस्नान—आ**पो हि ष्ठा०** इत्यादि मन्त्रोंसे मार्जन

करना मन्त्रस्नान है, २-भौमस्नान—समस्त शरीरमें मिट्टी लगाना, ३-अग्निस्नान—भस्म लगाना, ४-वायव्यस्नान— गायके खुरकी धूलि लगाना, ५-दिव्यस्नान-सूर्यिकरणमें वर्षाके जलसे स्नान करना, ६-वारुणस्नान—जलमें डुबकी लगाकर स्नान करना, ७-मानसिक स्नान-आत्मचिन्तन

इस प्रकार प्रात:कालीन स्नान नित्यचर्याका प्रमुख अंग है; क्योंकि आगेकी सभी धर्मकर्मादि क्रियाएँ स्नानमूलक ही हैं। गंगादि नदियोंमें मौसल स्नान करना चाहिये अर्थात् खड़े होकर सीधे डुबकी लगानी चाहिये, शरीर मलना नहीं

करना मानसिक स्नान है।

चाहिये। कई लोग गंगाजीमें कुल्ला करते हैं तथा साबुन लगाकर स्नान करते हैं, ऐसा करनेसे प्रत्यवाय बनता है

और जल भी दूषित हो जाता है, अत: इससे बचना चाहिये। पुण्यं १. निपानादुद्धतं तत:

प्रस्रवणोदकम् । ततोऽपि सारसं पुण्यं ततो नादेयमुच्यते॥ गङ्गातोयं ततोऽधिकम् ॥ (अग्निपुराण) पुण्यं २. उष:कालस्तु लोहितादिगुणलक्षितकालात् प्राक्कालः। (कल्पतरु) स्नानं समाचरेत्। (मेधातिथि) प्रक्षालयेत्तीरे स्नानं तत:

महाधम:।' नीला वस्त्र धारण करनेका भी निषेध किया गया है। आपस्तम्बऋषिने कहा है-

चद्दर आदिका विधान है।

सन्ध्यायामुदिते रवौ । प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥ (दक्षस्मृ० २ । ११) ५. मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च।वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात्॥

लिये स्त्री-पुरुषोंके अंगोंकी बनावट और कोमलता तथा

कठोरताको दुष्टिमें रखकर विभिन्न प्रकारके वस्त्र धारण

करनेका विधान शास्त्रोंने किया है। भारतीय संस्कृतिमें

मुख्य रूपसे पुरुषोंके लिये वस्त्रके रूपमें धोती पहननेका

निर्देश है। धुले हुएको धौत कहते हैं, धौतका ही अपभ्रंश

धोती बन गया है। प्रतिदिन धोये जानेके कारण ही धोती नाम पड़ा है। स्नान करनेके बाद धुला वस्त्र ही पहनना

चाहिये। आजकल पैंट-कोट आदि पहननेका प्रचलन

बढता जा रहा है। यह पाश्चात्य देशोंका अन्धानुकरण है।

पैंट आदि प्रतिदिन न धोये जानेके कारण अशुद्ध रहते हैं।

पडती है। अतः धोती पहननेका तात्पर्य यह भी है कि शरीरका आच्छादन भी हो जाय और शरीरमें हवा भी

लगती रहे। इसी प्रकार स्त्रियोंके लिये साडी-ब्लाउज तथा

समय धोती अवश्य बाँधनी चाहिये। लुंगीकी तरह न

बाँधकर कच्छ (लाँग) लगाकर बाँधनेकी विधि है। बिना

लॉंग बॉंधे पूजा आदि करनेका निषेध है<sup>६</sup> 'मुक्तकच्छो

भारतवर्ष उष्ण देश है। यहाँ ८-९ महीने गरमी

कम-से-कम पूजा आदिके समय तथा भोजनके

आपो हि ष्ठादिभिर्मान्त्रं मुदालम्भस्तु पार्थिवम्। आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरज: स्मृतम्॥

यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद् दिव्यमुच्यते। अवगाहो वारुणं स्यात् मानसं ह्यात्मचिन्तनम्॥ (आचारम०, प्रयोगपारिजात) ६. अकच्छस्य द्विकच्छस्य अशिखो शिखवर्जित:। पाककर्ता हव्यग्राही षडैते ब्राह्मणाधमा:॥ (स्मृतिवचन)

जीवनचर्या−

\* सफलताके सोपान \* अङ्क ] कर्म करनेसे होगा। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥ पूजा किसी आसनपर ही बैठकर करनी चाहिये। लकड़ीकी चौकी, कुश, ऊनके आसनपर पूजाके लिये (६1३) जो नील वस्त्र धारण करके स्नान, दान, जप, होम, बैठनेका विधान है। देवपूजाके सभी कार्योंमें कुशके स्वाध्याय, पितृतर्पण, पंचमहायज्ञ आदि कर्म करता है, प्रयोगका विधान है तथा कुशासनको सर्वदोषरहित और उसके वे कर्म निष्फल हो जाते हैं। सब मन्त्रोंकी सिद्धिमें सहायक कहा है। ऊनी तथा रेशमी वस्त्र बिना धोये भी प्रयोगमें लिये शास्त्रोंमें कुछ आसनोंके निषेध-वचन प्राप्त हैं। जा सकते हैं। वे शुद्ध माने जाते हैं। धरतीमें बैठनेपर दु:खकी उत्पत्ति, पत्थरपर बैठनेसे व्याधि निष्कर्षरूपमें वस्त्रोंको धारण करनेसे सरदी, गरमी और पीड़ा, केवल वस्त्रपर बैठनेसे जप, ध्यान और तपकी हानि होती है। र तथा लज्जानिवारण आदि मुख्य उद्देश्योंकी पूर्ति होती हो तथा शरीरविज्ञानानुसार कोई रोग उत्पन्न न होकर रोगोंका आसनका एक दूसरा अर्थ भी है, पूजा-पाठमें नाश होता हो एवं मनोविज्ञानानुसार भोग-विलास, कामुकता सिद्धासन तथा पद्मासन आदि प्रशस्त माने गये हैं। आदि मानसिकरोग उत्पन्न न होकर सादगी आदि सत्त्वगुण स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी इन आसनोंका महत्त्व है। बढ़ते हों और आर्थिक, पारिवारिक तथा सामाजिक संकट तिलक-धारण उत्पन्न न करते हों—ऐसे वस्त्रोंको ही धारण करना पूजा-पाठ, भजन-ध्यान आदि कार्योंमें मन:शान्ति चाहिये। इन सबपर विचार करके ऋषियोंने जैसे वस्त्र और एकाग्रताकी ही प्रधानता है। मनका स्थान मस्तिष्क धारण करनेका विधान किया है, वैसे ही वस्त्र धारण करने है। अत: मनको स्वस्थ, शान्त और सात्त्विक रखनेकी चाहिये। दुष्टिसे माथेपर चन्दन, कपूर, केशर आदि पदार्थोंका लेप नहानेके बाद सिरके केशोंको कंघीसे ठीक कर करना स्वास्थ्यकी दुष्टिसे उत्तम है। इसी विज्ञानके अनुसार मन:प्रधान भजन-ध्यान, पूजा-पाठ आदि कार्य तथा दान, लिया जाय, जिससे कोई जीव-जन्तु या कूड़ेका कण सिरपर न रहने पाये। सिरपर कंघी करनेसे बुद्धिका होम, तर्पण आदि सात्त्विक कर्मोंसे पूर्व तिलकको धारण विकास होता है। करनेका विधान किया गया है तथा तिलक बिना इन पूजा-विधान कर्मोंको निष्फल बताया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया स्नान आदिके अनन्तर सन्ध्यावन्दन, तर्पण तथा है— अपने इष्टदेवके पूजन करनेकी विधि है। शिखा (चोटी), स्नानं दानं तपो होमो देवतापितृकर्म च। सूत्र (जनेऊ)-के बिना जो देवकार्य किये जाते हैं, वे सदा तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना॥ निष्फल होते हैं-धर्मशास्त्रमें कहा गया है-'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥' ऊर्ध्वपुण्डुं मृदा धार्यं भस्मना तु त्रिपुण्डुकम्। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-इन द्विजातियोंको यज्ञोपवीत चन्दनेनैव सर्वेषु शुभकर्मसु॥ (जनेऊ) अवश्य धारण करना चाहिये। इसीसे वे सन्ध्यावन्दन मृत्तिका (गोपीचन्दन)-से ऊर्ध्वपुण्डू तथा भस्मसे तथा वैदिक देवपूजन कार्योंके अधिकारी होते हैं। त्रिपुण्ड धारण करना चाहिये। सभी शुभ कर्मोंमें चन्दनसे स्त्री एवं शुद्रके लिये यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण दोनों प्रकारका तिलक किया जा सकता है। कुमकुम (रोली)-का प्रयोग भी तिलकमें किया करनेकी विधि नहीं है। वे केवल भगवन्नामका जप, कीर्तन एवं सेवाकार्यमें संलग्न रहें। उन्हें वही फल प्राप्त जाता है, विशेषकर सौभाग्यवती माताओंको कुमकुमका होगा, जो द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-को वैदिक तथा सिन्द्रका तिलक ही करना चाहिये। सिन्द्रमें रम्ये सर्वदोषविवर्जिते। कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा॥ २-धरण्यां दु:खसम्भृति: पाषाणे व्याधिपीडनम्। जपध्यानतपोहानिं वस्त्रासनं करोति हि॥

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− सर्वदोषनाशक शक्ति रहती है। तिलकके अतिरिक्त माँगमें इस प्रकार विशेष कार्योंके लिये दिशा-निर्देशका सिन्द्र लगानेसे सिरके बालोंमें जुँ, लीखका भय नहीं विधान विशेष विज्ञानका अनुसन्धान करके ही किया गया है। अत: उसी दिशामें मुख करके वह कर्म करना चाहिये। रहता। इसलिये शास्त्रकारोंने इसे एक प्रकारसे सौभाग्यका चिह्न माना है। ऊपर लिखे तिलकके द्रव्योंमेंसे यदि कोई सन्ध्या-तर्पण एवं इष्टदेवका पूजन द्रव्य किसी समय पासमें न हो तो केवल शुद्ध जलसे भी द्विजको यथासाध्य त्रिकाल (प्रात:, मध्याह्न तथा सायं) सन्ध्या करनी चाहिये। कम-से-कम दो कालोंकी सन्ध्या तो तिलक करनेका विधान किया गया है, क्योंकि जल भी अवश्य ही करनी चाहिये। जो द्विज प्रतिदिन प्रमादवश सन्ध्या शोधक है। इस प्रकार धर्मशास्त्रके आदेशके अतिरिक्त तिलकके नहीं करता, वह द्विजकर्मोंसे बहिष्कार करनेयोग्य होता है और भौतिक गुणोंको समझकर भी तिलक अवश्य करना चाहिये। उसे भयानक नरक-यातना भोगनी पडती है। शिखाबन्धन रात्रिका अधिपति चन्द्रमा है, वही हमारे मनका भारतीय संस्कृति एवं सनातनधर्मके अनुसार सिरके देवता है, दिनका अधिपति सूर्य है, वही हमारे प्राणोंका पिछले भागपर शिखा (चोटी) अवश्य रखनी चाहिये। संचालक है। मन तथा प्राणोंके सन्धिकालमें सत्त्वगुण आध्यात्मिक विज्ञानके अनुसार तो जिस प्रकार किसी भवन बढ़ता है, ऐसी दशामें भजन, ध्यान, सन्ध्योपासना करना अति उत्तम माना जाता है, यही कारण है कि दोनों तथा मन्दिरके शिखरपर ध्वजा लगायी जाती है, उसी प्रकार सन्ध्याओंमें सन्ध्योपासना करनेका अनिवार्य विधान है। यह शरीर भी एक प्रकारका मन्दिर है, इसमें आत्मरूपसे परमात्मा निवास करते हैं। अत: इसके शिखरपर शिखा **'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'** (वेद)। द्विजको वैदिक मन्त्रोंसे प्रात: तथा सायं सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिये। (चोटी)-रूपी ध्वजा होनी आवश्यक है। भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ मेरुदण्डके भीतर स्त्री तथा शुद्रोंको भी वैदिक मन्त्रोंके बिना पौराणिक रहनेवाली ज्ञान तथा क्रियाशक्तिकी आधार सुष्मणा नाडी समाप्त मन्त्रोंसे अथवा बिना किसी मन्त्रके केवल भगवन्नामका उच्चारण करते हुए भगवान्की उपासना करनी चाहिये। होती है। यह स्थान शरीरका सर्वाधिक मर्मस्थान है, इस स्थानपर चोटी रखनेसे मर्मस्थान सुरक्षित रहनेसे क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति उपासनाके लिये यह समय अति उपयोगी होनेके कारण सुरक्षित रहती है, जिससे भजन, ध्यान, दान आदि शुभ कर्म इस समय दूसरे कर्म करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है। सुचार रूपमें सम्पन्न होते हैं, इसीलिये धर्मशास्त्रोंमें कहा है-संकल्प-आसनपर बैठकर तिलकधारण और ध्याने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने। शिखाबन्धन करनेके बाद संकल्प करना चाहिये; क्योंकि शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥ सम्पूर्ण कर्मोंकी सफलतामें दृढ़ संकल्पका सर्वाधिक अमुक दिशामें मुख माहात्म्य है। मनुस्मृति (२।३)-में कहा है कि समस्त प्रात:कालीन सन्ध्यावन्दनादि कर्मोंमें सूर्योपासना प्रधान कामनाएँ, यज्ञ, व्रत, नियम, धर्म संकल्पजन्य ही हैं— होनेके कारण सूर्यके सम्मुख पूर्वकी ओर मुँह करके तथा सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः। सायंकालीन सन्ध्यामें पश्चिमकी ओर मुख करके सन्ध्योपासना व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥\* करनी चाहिये। भौतिक दृष्टिसे प्राकृतिक चिकित्सा-प्राणायाम विज्ञानानुसार प्रात:काल तथा सायंकाल सूर्यकी किरणोंका भजन, ध्यान, पाठ, पूजा आदि सात्त्विक कार्योंके सेवन हो जानेसे शारीरिक रोगोंका नाश होता है। धर्मशास्त्रोंमें लिये शान्त और सात्त्विक मनकी परम आवश्यकता होती देवकार्य पूर्वाभिमुख होकर और पितरोंका कार्य दक्षिणमुख है। प्राणायामद्वारा प्राणकी समगति (दो स्वरोंसे बराबर होकर करनेका विधान है। उत्तरकी ओर मुख करके चलना) होनेपर मन शान्त और सात्त्विक हो जाता है। यही योगाभ्यास करनेका विधान भी किया गया है— प्राणायामका आध्यात्मिक प्रयोजन है। प्राणायामसे शारीरिक उत्तराभिमुखो भृत्वा''''' योगाभ्यासं स्थितश्चरन्॥ लाभ भी है। हमारा जीवन श्वास-प्रश्वासरूप प्राणोंकी (त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् १८-१९) गतिपर आधारित है। इस कार्यको जिन फेफड़ोंद्वारा किया \* सन्ध्या-वन्दनकी वैदिक प्रक्रिया तथा संकल्प इत्यादि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित 'नित्यकर्मपूजाप्रकाश' पुस्तकमें देख सकते हैं।

\* सफलताके सोपान \* अङ्क ] जाता है, उनकी स्थिति-स्थापक शक्तिकी रक्षा आवश्यक होते हैं। मन्त्रोंमें गायत्रीमन्त्र सर्वोपरि माना गया है, परंतु इसके

श्वासको रोके रहे (इसे कुम्भक कहते हैं), फिर नाकके दाहिने छिद्रसे लगभग १६ सेकेण्डमें धीरे-धीरे श्वासका त्याग करे (यह

सेकेण्डतक वायुको खींचे (इसे पूरक प्राणायाम कहते हैं), नासिकाके दोनों छिद्रोंको बन्दकर लगभग १६ सेकेण्डतक

भिन्न-भिन्न प्रकारके लाभोंके लिये शास्त्रोंमें विभिन्न

प्रकारके प्राणायाम करनेका विधान किया गया है। सन्ध्योपासनाके

अंगरूपमें किये जानेवाले प्राणायामकी सामान्य विधि निम्न प्रकार है—आसनपर बैठकर नाकके बायें छिद्रसे लगभग ८

है। यह कार्य प्राणायामसे सम्यक् हो जाता है।

रेचक प्राणायाम कहलाता है)। स्वास्थ्यकी दुष्टिसे एक बार बायें छिद्रसे श्वास खींचकर दायेंसे छोड़े, दूसरी बार दायेंसे खींचकर बायेंसे छोड़े, इसे अनुलोम-विलोम प्राणायाम कहते हैं। सन्ध्यावन्दनमें आचमन, सूर्यार्घ एवं

### सूर्योपस्थान

### सन्ध्यावन्दनके अन्तर्गत कई बार आचमन करनेका विधान है तथा सभी धार्मिक कृत्योंके प्रारम्भमें तथा बीच-

बीचमें आचमनकी विधि बतायी गयी है। इससे आन्तरिक

पवित्रता होती है। लौकिक दुष्टिसे मन्त्रोच्चारजन्य कण्ठ-शुष्कता आदिके निवारणके लिये यह किया जाता है। आचमन आदिके अनन्तर भगवान् सूर्यको जलके द्वारा अर्घ

प्रदान किया जाता है। ये जलकी बूँदें वज्र बनकर असुरोंका विनाश करती हैं। \* इसके अनन्तर सूर्योपस्थानके मन्त्र हैं, जिनमें व्यक्ति स्वयंको स्वस्थ रखकर दीर्घायुष्य-प्राप्तिकी प्रार्थना करता है।

#### मन्त्रजप

सन्ध्योपासनकी पूर्ति गायत्रीमन्त्रके जपसे होती है। सूर्योपस्थानके बाद कम-से-कम एक माला गायत्रीमन्त्रका जप अवश्य करना चाहिये। कभी-कभी बहुत शीघ्रता होनेपर करमालासे १० बार गायत्री जपनेसे भी सन्ध्याकी पूर्ति हो जाती है। गायत्रीमन्त्रके जपकी बडी महिमा है। सम्पूर्ण वेदका सारस्वरूप गायत्रीमन्त्रमें समाहित है। भगवती गायत्रीको वेदमाता कहा गया है तथा उपासनाकी दुष्टिसे गायत्रीमन्त्रका

जप अधिकाधिक करना चाहिये। समय हो तो सन्ध्योपासनके उपरान्त गायत्रीमन्त्रकी ११ मालाका प्रतिदिन जप किया जा सकता है। इससे पापका क्षय होता है तथा प्रत्यवाय समाप्त

अपने कल्याणका आधार ही नामजप है। अपने इष्टदेवके

नामजपकी बड़ी महिमा है। विशेषकर कलियुगमें

जपनेका अधिकार केवल यज्ञोपवीतधारी व्यक्तिको ही है।

नामजप

जीवोंका यथायोग्य भरण-पोषण पाँच श्रेणियोंके जीवोंकी

पारस्परिक सहायतासे सम्पन्न होता है। वे पाँच हैं—देवता,

ऋषि, पितर, मनुष्य और पश्-पक्षी आदि भृतप्राणी।

देवता संसारभरमें सबको इष्ट भोग देते हैं, ऋषि-मुनि सबको

ज्ञान देते हैं, पितर सन्तानका भरण-पोषण करते हैं, रक्षा

नामका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। नामजप करनेमें किसी प्रकारका बन्धन नहीं है। चलते-फिरते, खाते-पीते,

उठते-बैठते—सब समय भगवन्नामका जप किया जा सकता है। भगवान्को निरन्तर स्मरण रखनेका यह अमोघ साधन है। मालाका प्रयोग करनेसे, जपके संख्याकी गिनती

रखनेसे नामजप बराबर चलता रहता है।

#### पंचमहायज्ञ सृष्टिके कार्यका सुव्यवस्थितरूपसे संचालन और सब

करते हैं और कल्याण-कामना करते हैं, मनुष्य कर्मींके द्वारा सबका हित करते हैं और पशु-पक्षी, वृक्षादि सब जीवोंके सुखके लिये अपना आत्मदान देते रहते हैं। इन पाँचोंके सहयोगसे ही सबका निर्विध्न जीवननिर्वाह होता है, अत: प्रत्येक व्यक्तिपर इन पाँचोंके ऋण हैं-देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण, मनुष्य-ऋण और भूत-ऋण। पंच-महायज्ञसे

इन पाँचों प्रकारके ऋणसे मुक्ति होती है। अत: प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन निम्नलिखितरूपसे पंचमहायज्ञ सम्पन्न

\* सन्ध्यायां यदप: प्रयुङ्के ता विप्रुषो। वज्री भृत्वा असुरानपाघ्नन्ति॥

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− करना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह तृप्ति होती है। जो कुछ भी अर्जित करता है, उसमें इन सबका भाग ४-पितृयज्ञ — पितरोंके निमित्त तर्पण तथा श्राद्ध सबको देकर ही अपने उपयोगमें लाये। आदि करना पितृयज्ञ है। पितृयज्ञके रूपमें कम-से-कम जो मनुष्य सब जीवोंको उनका उचित हिस्सा देकर पितृतर्पण प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये। इससे समस्त बचा हुआ खाता है, अपने उपयोगमें लाता है, वही लोकोंकी तथा पितरोंकी तृप्ति होती है। इससे लोकमें यश, अमृताशी (अमृत खानेवाला) है। जो ऐसा न करके केवल धन तथा सन्तान-प्राप्तिका सुख प्राप्त होता है। अपने लिये कमाता है और अकेला ही खाता है, वह पाप तर्पणका फल-एक-एक पितरको तिलमिश्रित जलकी तीन-तीन अंजलियाँ प्रदान करे। (इस प्रकार तर्पण खाता है। यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। करनेसे) जन्मसे आरम्भकर तर्पणके दिनतक किये पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं।\* भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ तर्पण न करनेसे प्रत्यवाय (पाप)—ब्रह्मादिदेव (गीता ३।१३) यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब एवं पितृगण तर्पण न करनेवाले मानवके शरीरका रक्तपान पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना करते हैं अर्थात् तर्पण न करनेके पापसे शरीरका रक्तशोषण शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको होता है-ही खाते हैं। 'अतर्पिताः शरीराद्रुधिरं पिबन्ति' पंचमहायज्ञके अनुष्ठानसे समस्त प्राणियोंकी तृप्ति -इससे यह सिद्ध होता है कि गृहस्थ मानवको होती है, पंचमहायज्ञ करनेसे अन्नादिकी शुद्धि तथा पापोंका प्रतिदिन तर्पण अवश्य करना चाहिये। क्षय होता है। अत: पंचमहायज्ञ करके ही गृहस्थोंको भोजन ५-मनुष्ययज्ञ-अधासे अत्यन्त पीडित मनुष्यके करना चाहिये। इसके सम्पन्न करनेसे धर्म, अर्थ, काम घर आ जानेपर उसकी भोजनादिसे की जानेवाली सेवाको और मोक्षकी प्राप्ति होती है। मनुष्ययज्ञ कहते हैं। अतिथिके घर आ जानेपर चाहे वह पंचमहायज्ञका स्वरूप किसी जाति या सम्प्रदायका हो, उसकी सम्मानपूर्वक मधुर १-ब्रह्मयज्ञ — वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि वचन, जल तथा अन्न आदिसे यथाशक्ति सेवा करनी चाहिये। मनुष्ययज्ञसे धन, आयु, यश और स्वर्ग आदिकी

प्राप्ति होती है।

# इतिहास-ग्रन्थोंके अध्ययन, अध्यापन तथा स्वाध्यायको

## ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है। ब्रह्मयज्ञ करनेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है, इसके सम्पन्न करनेसे व्यक्ति ऋषि-ऋणसे मुक्त हो

## जाता है।

२-देवयज्ञ — अपने इष्टदेवकी उपासना तथा परब्रह्म परमात्माके निमित्त अग्निमें किये गये हवनको देवयज्ञ कहते हैं। देव-ऋणसे उऋण होनेके लिये देवयज्ञ करना

परमावश्यक है। ३-भूतयज्ञ — कृमि, कीट-पतंग, पश्-पक्षी आदिकी

सेवाको भूतयज्ञ कहते हैं। सामान्यतः प्रत्येक प्राणी अपने सुखके लिये अनेक भृतों—जीवोंको प्रतिदिन क्लेश देता है; क्योंकि ऐसा हुए बिना शरीरयात्रा नहीं चल पाती। अतः भूतों—जीवोंसे उऋण होनेके लिये भूतयज्ञ करना

आवश्यक है। भूतयज्ञसे कृमि-कीट, पशु-पक्षी आदिकी

\* एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रीन् दद्याज्जलाञ्जलीन्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ (नित्यकर्मपूजाप्रकाश)

आता है, जो लोग स्वयं उस समय भगवान्की पूजामें संलग्न होना चाहते हों, उनके लिये नीचे देवोपासनाकी विधि लिखी जा रही है। जिनके पास समयका अभाव हो, वे कम-से-कम भगवान्के मन्दिरमें जहाँ विधिपूर्वक पूजा

भगवद्दर्शन तथा चरणामृतपान

इसके बाद अपने इष्टदेवकी पूजा-उपासनाका प्रकरण

होती हो, वहाँ जाकर स्तुति और प्रार्थनाके द्वारा परमात्मप्रभुके समक्ष अपनी श्रद्धा निवेदित करें तथा उन्हें प्रभुका चरणामृत ग्रहण करना चाहिये। चरणामृतकी बडी महिमा

है। विशेषकर शालग्रामभगवान्का चरणामृत भौतिक दृष्टिसे

त्रिदोषनाशक होता है, कारण शालग्रामशिलामें स्वर्णकी मात्रा रहती है। चरणामृतमें तुलसीदलका भी मिश्रण रहता

अङ्क ] * सफलता	के सोपान∗ ३५
**************************************	**************************************
है, जो स्वयंमें एक औषधि है। आयुर्वेदमें औषधियोंके	भगवत्स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेगा।
साथ अनेक रोगोंमें तुलसीका अनुपानरूपसे विधान किया	यहाँ शास्त्रोंमें वर्णित देवोपासनाकी कुछ विधियाँ
गया है। इस प्रकार चरणामृत अनेक रोगोंका नाशक	प्रस्तुत की जा रही हैं—
तथा जीवनीशक्तिवर्धक गुणोंसे युक्त है। इस कारण इसे	नित्योपासनामें दो प्रकारकी पूजा बतायी गयी है—
<b>अकालमृत्युहरणम्, सर्वव्याधिविनाशनम्</b> कहना उचित	१–मानसपूजा और २–बाह्यपूजा। साधकको दोनों प्रकारकी
ही है।	पूजा करनी चाहिये, तभी पूजाकी पूर्णता है। अपनी सामर्थ्य
देवोपासना	और शक्तिके अनुसार बाह्यपूजाके उपकरण अपने आराध्यके
जीवनमें उपासनाका विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य	प्रति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निवेदन करना चाहिये। शास्त्रोंमें
अपने जीवनका वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है,	लिखा है कि <b>'वित्तशाठ्यं न समाचरेत्'</b> अर्थात् देव-
तब वह तन-मन-धनसे अपने उस लक्ष्यकी प्राप्तिमें	पूजनादि कार्योंमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। सामान्यत:
संलग्न हो जाता है। मानवका वास्तविक लक्ष्य है	जो वस्तु हम अपने उपयोगमें लेते हैं, उससे हल्की वस्तु
भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये उसे	अपने आराध्यको अर्पण करना उचित नहीं है। वास्तवमें
यथासाध्य संसारकी विषय-वासनाओं और भोगोंसे दूर	भगवान्को वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, वे तो भावके
रहकर भगवदाराधन एवं अभीष्टदेवकी उपासनामें संलग्न	भूखे हैं। वे उपचारोंको तभी स्वीकार करते हैं, जब
होनेकी आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार गंगाका	निष्कपटभावसे व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा और भक्तिसे निवेदन
अविच्छिन्न प्रवाह समुद्रोन्मुखी होता है, उसी प्रकार	करता है।
भगवद्गुण-श्रवणके द्वारा द्रवीभूत निर्मल, निष्कलंक, परम	बाह्यपूजाके विविध विधान हैं, यथा—राजोपचार,
पवित्र अन्त:करणका भगवदुन्मुख हो जाना वास्तविक	सहस्रोपचार, चतु:षष्ट्युपचार, षोडशोपचार और पंचोपचार-
उपासना है—	पूजन आदि। यद्यपि सम्प्रदाय-भेदसे पूजनादिमें किंचित्
मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।	भेद भी हो जाते हैं, परंतु सामान्यत: सभी देवोंके पूजनकी
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥	विधि समान है। गृहस्थ प्राय: स्मार्त होते हैं, जो पंचदेवोंकी
(श्रीमद्भा० ३।२९।११)	पूजा करते हैं। पंचदेवोंमें १-गणेश, २-दुर्गा, ३-शिव, ४-
इसके लिये आवश्यक है कि चित्त संसार और	विष्णु और ५-सूर्य हैं। ये पाँचों देव स्वयंमें पूर्ण ब्रह्मस्वरूप
तद्विषयक राग-द्वेषादिसे विमुक्त हो जाय। शास्त्रों और	हैं। साधक इन पंचदेवोंमें एकको अपना इष्ट मान लेता
पुराणोंकी उक्ति है—'देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो	है, जिन्हें वह सिंहासनपर मध्यमें स्थापित करता है। फिर
देवमर्चयेत्।' देव-पूजाका अधिकारी वही है, जिसमें	यथालब्धोपचार-विधिसे उनका पूजन करता है।
देवत्व हो। जिसमें देवत्व नहीं, वास्तवमें उसे देवार्चनसे	भगवत्पूजा अतीव सरल है, जिसमें उपचारोंका कोई
पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। अत: उपासकको	विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व भावनाका है। उस समय
भगवदुपासनाके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद,	जो भी उपचार उपलब्ध हो जायँ, उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक
मात्सर्य, ईर्ष्या, राग–द्वेष, अभिमान आदि दुर्गुणोंका त्यागकर	निश्छल दैन्यभावसे भगवदर्पण कर दिया जाय तो उस
अपनी आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। साथ ही शास्त्रोक्त	पूजाको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं—
आचार-धर्मको स्वीकारकर बाह्य शुद्धि कर लेनी चाहिये,	पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
जिससे उपासकके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तथा	तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
अन्तरात्माकी भौतिकता एवं लौकिकताका समूल उन्मूलन	(गीता ९।२६)
हो सके और उनमें रसात्मकता तथा पूर्ण दिव्यताका	अर्थात् जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प,
आविर्भाव हो जाय। ऐसा जब हो सकेगा, तभी वह	फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि, निष्काम
उपासनाके द्वारा निखिल-रसामृतमूर्ति सच्चिदानन्दघन	प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्प

आदि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। नीचे लिखी जा रही है-१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि। विशिष्ट उपासना (प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित विशेष अवसरोंपर जो देवाराधन किया जाता है, जैसे—नवरात्रके अवसरपर दुर्गापूजा, सप्तशतीका पाठ, करता हैं।) रामायण आदिके नवाह-पाठ, श्रावण आदि पवित्र महीनोंमें २-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि। (प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता लक्ष-पार्थिवार्चन, महारुद्राभिषेक, श्रीमद्भागवतसप्ताह आदि विशेष प्रकारके अनुष्ठान विशिष्ट उपासनाएँ हैं। आरोग्यता हँ।) एवं दीर्घजीवन-प्राप्तिके निमित्त महामृत्युंजयका जप एवं ३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि। धन, सन्तान तथा अन्य कामनाओं के निमित्त किये जानेवाले (प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको अर्पित अनुष्ठान भी इन्होंमें आते हैं, परंतु भगवत्प्रीतिके निमित्त करता हुँ।) किये गये अनुष्ठानका अनन्त फल शास्त्रोंमें बताया गया ४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि। है, जो भी अनुष्ठान-साधन-भजन किया जाय, वह (प्रभो! मैं अग्निदेवके रूपमें दीपक आपको अर्पित अनात्म (संसारकी) वस्तुओंकी प्राप्तिके निमित्त नहीं, करता हुँ।) अपितु भगवान्की प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये ही करना ५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि। (प्रभो! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदित चाहिये। मानस-पूजा करता हूँ।) बाह्यपुजाके साथ-साथ मानसपुजाका भी अत्यधिक ६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि। महत्त्व है। पूजाकी पूर्णता मानसपूजनमें ही हो जाती है। (प्रभो! मैं सर्वात्माके रूपमें संसारके सभी उपचारोंको भगवानुको किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।)—इन मन्त्रोंसे भावनापूर्वक भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं मानस-पूजा की जा सकती है।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके। इसलिये

शास्त्रोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्टदेवकी मानसिक मूर्तिकी कल्पना अपने हृदयमें करता है तथा उन्हें मुक्तामणियोंसे

मण्डितकर स्वर्णसिंहासनपर विराजमान करता स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गंगाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पंचामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं।

लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमल-पुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी

पृथ्वीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके

भोजन-विज्ञान भोजन तैयार हो जानेपर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव एवं पंचबलि करना चाहिये तथा भगवान्का भोग लगाना चाहिये। पंचबलिका तात्पर्य है, भोजनमें जो सामग्री बनती

**ाजीवनचर्या**−

है, वे सभी वस्तुएँ पाँच जगह निकाली जायँ। पहली बलि गोमाताके लिये, दूसरी श्वान (कुत्ते)-के लिये, तीसरी वायस (कौए)-के लिये, चौथी बलि देवोंके लिये और पाँचवीं पिपीलिका (चींटी आदि कीट-पतंगों)-के लिये संकल्पद्वारा प्रदान करनेकी विधि है। भगवान्के

विशेष महत्त्व बताया गया है। इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि भोजनमें तुलसीदल डालनेसे न्यूनातिन्यून परिमाणमें विद्यमान अन्नकी विषाक्तता तुलसीके प्रभावसे शमित हो उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे जाती है—'तुलसीदलसम्पर्कादन्नं भवति निर्विषम्।'

भोगमें तुलसीदल छोड़नेका विधान है। तुलसीदलका

भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। अतः जब भी भोजन करे तो पहले भगवान्को निवेदन इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है, जो करके प्रसादरूपसे ही ग्रहण करे। पैरोंको धोकर, भलीभाँति

अङ्क ] * सफलता	के सोपान * ३७
**************************************	**************************************
कुल्ला करके, हाथ-मुँह धोकर भोजन करना चाहिये।	भाग, जल और वायुके एक-एक भागद्वारा उदरकी पूर्ति
भोजन करनेसे पूर्व घरपर आये अतिथिका सत्कार करे।	करनी चाहिये। भोजन करते समय जल न पीना स्वास्थ्यके
फिर अपने घरमें आयी विवाहिता कन्या, गर्भिणी स्त्री,	लिये लाभदायक है। जल पीना हो तो भोजनके मध्यमें
दु:खिया, वृद्ध और बालकोंको भोजन कराकर अन्तमें	थोड़ा-थोड़ा आवश्यकतानुसार पीना चाहिये। भोजनके
स्वयं भोजन करना चाहिये। इन सबको भोजन कराये	अन्तमें जल पीना उचित नहीं है। भोजनके कम-से-
बिना जो स्वयं भोजन करता है, वह पापमय भोजन	कम एक घण्टे बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिये।
करता है।	भोजनके अन्तमें <b>'ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा</b> ' मन्त्र
जिस प्रकार सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि प्रात:-	बोलकर आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने
सायं दो बार करनेकी विधि है, उसी प्रकार अन्नका	भोजनप्रसादको अमृतसे आच्छादित करता हूँ।
भोजन भी गृहस्थको प्रात:–सायं दो बार ही करना	अप्रसन्न मनसे, बिना रुचिके, भूखसे अधिक और
चाहिये। इसके अतिरिक्त दूध-फलादिका सेवन करना	अधिक मसालोंवाला चटपटा भोजन शरीरके लिये हानिकारक
उचित है। भोजनसे पूर्व भोजनपात्रका परिषेचन (चारों	होता है। भोजन न तो इतना कम होना चाहिये, जिससे
ओर जलका मण्डल) करना चाहिये, जिससे कीट	शरीरकी शक्ति घट जाय और न इतना अधिक होना
आदि भोजनकी थालीसे दूर रहें।* भोजन प्रारम्भ करनेके	चाहिये कि जिसे पेट पचा ही न सके।
पूर्व लवणरहित तीन ग्रास 'ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ	बहुत प्यास लगी हो, पेटमें दर्द हो, शौचकी हाजत
भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा'—इन	हो अथवा बीमार हो— ऐसे समय भोजन न करे। अपवित्र
तीन मन्त्रोंसे थालीसे बाहर दायीं ओर निकालकर रखना	स्थानमें, सन्ध्याकालमें, गन्दी जगह, फूटी थाली आदिमें
चाहिये तथा इन्हीं मन्त्रोंसे जल भी छोड़ना चाहिये। इन	भोजन न करे। भोजन बनाने और परोसनेवाला मनुष्य
तीन ग्रासोंमें पृथ्वी, भुवनमण्डल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको	दुराचारी, व्यभिचारी, चुगलखोर, छूतका रोगी, कोढ़ और
तृप्त करनेकी भावना है। तदनन्तर भोजन प्रारम्भ करनेके	खाज-खुजलीका रोगी, क्रोधी, वैरी और शोकसे ग्रस्त नहीं
पूर्व लवणरहित पाँच छोटे-छोटे ग्रासोंको—'ॐ प्राणाय	होना चाहिये। जिस आसनपर भोजन करने बैठे, उसे पहले
स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ	झाड़ लेना चाहिये और सुखासनसे बैठकर भोजन करना
उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा'—इन पाँच मन्त्रोंसे	चाहिये। भोजन करते समय गुस्सा न हो, कटु वचन न
मुँहमें लेना चाहिये। इन पाँच ग्रासोंके द्वारा आत्मस्वरूप	कहे। भोजनमें दोष न बतलाये, रोये नहीं, शोक न करे,
ब्रह्मके प्रीत्यर्थ जठराग्निमें आहुति प्रदान करनेका भाव	जोरसे न बोले। किसी दूसरेको न छुए, वाणीका संयम
है। भोजनके पूर्व <b>'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'</b> इस	करके अनिषिद्ध अन्नका भोजन करे। अन्नकी निन्दा न
मन्त्रसे आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने	करे। बहुत गरम तथा बहुत ठण्डी चीज दाँतोंसे चबाकर

मन्त्रसे आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने करे। बहुत गरम तथा बहुत ठण्डी चीज दाँतोंसे चबाकर भोजनको अमृतरूपी बिछावन (आधार) प्रदान करता न खाये। अधिक तीखा, अधिक कड़वा, अधिक नमकीन, हूँ। इसके बाद मौन होकर प्रसन्न मनसे खूब चबा– अधिक गरम, अधिक रूखा, अधिक तेज भोजन राजसी चबाकर भोजन करे। आयुर्वेदके अनुसार एक ग्रासको है और अधकच्चा, रसहीन, दुर्गन्थयुक्त, बासी और जूठा लगभग बत्तीस बार चबाना चाहिये। जो अन्नको चबाकर अन्न तामसी है। राजसी, तामसी अन्नका, मांस-मद्यका

नहीं खाता, उसके दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा दाँतोंके तथा शास्त्रनिषिद्ध अन्नका त्याग करना चाहिये। भोजनके बदले उसकी अँतड़ियोंको काम करना पड़ता है, जिससे आदिमें अदरकको कतरकर उसके साथ थोड़ा नमक अग्नि मन्द हो जाती है। कहा गया है कि अन्नके दो मिलाकर खाना अच्छा है। जीभके स्वादवश अधिक खा

ाग्नि मन्द हो जाती है। कहा गया है कि अन्नके दो मिलाकर खाना अच्छा है। जीभके स्वादवश अधिक खा \* सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम् । नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि:॥

भोजनादौ सदा विप्रैर्विधेयं परिषेचनम्। तेन कीटादयः सर्वे दूरं यान्ति न संशयः॥

लेना उचित नहीं है। एक थालीमें दो आदमी न खायँ। इसी प्रकार एक नूँ ठा भो*ज*न

अात्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्



गोदमें लेकर अन्न न खायें। ताँबेके बरतनमें दुध न रखें। जिस दुधमें नमक गिर

गया हो, उसे कभी न पियें। पीतलके बरतनमें खट्टी चीज रखकर न खायँ। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि दिनोंको व्रत रखना चाहिये। व्रतके दिन निराहार रहे या

परिमित आहार करे, केवल जल पीना अच्छा है।

रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ, कुत्तेका छुआ हुआ, गायका सुँघा हुआ, कीड़ा, लार, थूक आदि पड़ा हुआ, अपमानसे मिला हुआ तथा

वेश्या, कलाल, कृतघ्नी, कसाई और राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये।

### भोजनमें चौकेकी व्यवस्था

धूल और दुर्गन्धरहित, प्रकाशयुक्त, शुद्ध हवादार स्थानमें भोजन बनाना चाहिये। चारों ओरसे घिरी हुई जगहमें बैठकर भोजन करना चाहिये। प्राचीन कालसे ही

अपने यहाँ चौकेकी व्यवस्थापर बहुत ध्यान दिया जाता रहा है। चौकेके भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे आजकल लोग

भूलते जा रहे हैं। चौका चार प्रकारकी शुद्धियोंका समुच्चय

स्थानकी शुद्धिपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है; क्योंकि प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण, पर्यावरण

है। इससे किया गया भोजन हमारे शरीरको स्वस्थ तथा

मनको पवित्र बनाता है। ये चार शुद्धियाँ हैं—(१) क्षेत्रशुद्धि, (२) द्रव्यशुद्धि, (३) कालशुद्धि और (४) भावशुद्धि।

(१) क्षेत्रशृद्धि भोजन करते समय हमें क्षेत्र या

**ाजीवनचर्या**−

हमारे मन तथा तनको जब प्रभावित करता है तो हमारे भोजनको भी प्रभावित करेगा ही। यदि किसी व्यक्तिको मरघट या श्मशानभूमि अर्थात् किसी अपवित्र स्थानमें भोजन कराया जाय और उसी व्यक्तिको उपवन आदि

किसी पवित्र स्थानपर भोजन कराया जाय तो इन दोनों स्थानोंके भोजन, पाचनमें पर्याप्त अन्तरका अनुभव होगा। इसी प्रकार बाजारोंमें, गलियों आदिके आस-पास, कूड़ा-कचरा और उनपर भिनभिनाती मिक्खयाँ, मच्छर तथा खाद्यपदार्थींपर जहाँ धूल जमी हो, ऐसे दूषित स्थानोंपर जब

रुग्णता पैदा करते हैं। चौकेकी व्यवस्थाके अन्तर्गत यह

क्षेत्रशृद्धि स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त वैज्ञानिक और लाभदायक

व्यक्ति चाट, पकौड़ी, मिष्टान्न आदि खाता-पीता है तो कदाचित् वह भूल जाता है कि ऐसे स्थानोंका पर्यावरण पर्याप्त दूषित है। ऐसे वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु भोजनके साथ शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, जो शरीरमें

है। प्राचीन परम्पराके अनुसार चौकेमें अनिधकृत व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल अधिकृत व्यक्ति ही भोजन छूनेके अधिकारी होते थे।

(२) द्रव्यशुद्धि—द्रव्य भी हमारे भोजनपर बड़ा असर डालता है। अनीति, अनाचार और बेईमानी आदि अधर्मके साधनोंके धनसे बनाया गया भोजन हमारे तन

तथा मनको प्रभावित करता है। ऐसा भोजन हमारे परमाणुओंको सात्त्विक कभी भी नहीं बना सकता।

(३) कालश्द्धि—काल या समयका भी भोजनपर प्रभाव पडता है। जो लोग समयपर भोजन नहीं करते, वे

प्राय: उदरसम्बन्धी व्याधियोंसे पीडित रहते हैं। भूख लगनेपर भोजन करना भोजनका सर्वोत्तम समय है तथा नियमित समयसे भोजन करना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है।

गृहस्थके लिये सूर्य रहते दिनमें भोजन करना चाहिये तथा दूसरे समयका भोजन सूर्यास्तके बाद करनेकी विधि है। है और भोजनमें इन चारों प्रकारकी शुद्धियोंकी आवश्यकता मानवको हितकर भोजन उचित मात्रामें उचित समयपर

\* सफलताके सोपान \* अङ्क ] करना चाहिये—'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी सोलह कुल्ले करनेका विधान है। कुल्ला करते समय मुँहमें पानी रखकर दस-पन्द्रह बार आँखोंको जलके छींटे जितेन्द्रियः '। (चरक) (४) भावश्द्भि—भोजनपर भावनाओंका भी गहरा देकर धोना चाहिये। दिनमें जितनी बार मुँहमें पानी ले प्रभाव पडता है, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको नीरोग रहनेके उतनी बार यदि यह क्रिया की जाय तो आँखोंमें बडा लाभ लिये भोजन शुद्धभावसे करना चाहिये। क्रोध, ईर्ष्या, होता है। भोजनके उपरान्त लघुशंका भी तुरंत करनी उत्तेजना, चिन्ता, मानसिक तनाव, भय आदिकी स्थितिमें चाहिये। यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है, इससे किया गया भोजन शरीरके अन्दर दूषित रसायन पैदा करता मूत्रसम्बन्धी बीमारीका बचाव होता है। है. जिसके फलस्वरूप शरीर विभिन्न रोगोंसे घिर जाता है। भोजनके बाद दौड़ना, कसरत करना, तैरना, नहाना, शुद्ध चित्तसे प्रसन्नतापूर्वक किया गया आहार शरीरको घुड़सवारी करना, मैथुन करना और तुरंत ही बैठकर काम पुष्ट करता है, कुत्सित विचारों एवं भावोंके साथ किये करने लगना स्वास्थ्यके लिये बहुत हानिकर है। गये भोजनसे व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। भोजनके बाद लगभग सौ कदम चलना चाहिये तथा इसके साथ ही भोजन बनानेवाले व्यक्तिके भी भाव शुद्ध चलनेके बाद लगभग १० मिनट दोनों घुटने पीछे मोड़कर होने चाहिये। उसे भी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदिसे ग्रस्त नहीं वजासनमें बैठना चाहिये, तदनन्तर विश्रामकी मुद्रामें सीधे होना चाहिये। लेटकर ८ श्वास तथा दाहिनी करवटमें १६ श्वास और इस प्रकार इन चारों शुद्धियोंके साथ यदि भोजन बायीं करवट लेटकर ३२ श्वास लेनेकी विधि है। इससे करेंगे तो निश्चितरूपसे हमारा मन भी निर्मल रहेगा और पाचनक्रिया ठीक रहती है तथा यह स्वास्थ्यके लिये शरीर भी नीरोगी रहेगा। अत्यन्त लाभप्रद है। भोजनसामग्रीकी शुद्धता जीविकोपार्जन — जिन व्यक्तियोंपर जीविकोपार्जनकी भोजनसामग्रीकी शुद्धता और पवित्रतापर विशेष जिम्मेदारी है, उन्हें कम-से-कम ८ घण्टे अथवा ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। भोजनके कच्चे सामान आवश्यकतानुसार इससे अधिक समयमें जीविकोपार्जनके आटा, दाल, घी, मसाला आदि स्वच्छ और साफ बरतनोंमें लिये व्यापार अथवा नौकरी (सेवा) न्यायोचित रूपमें पूर्ण ढककर रखे जायँ। बिना ढके बरतनोंमें चूहे घुस जाते हैं ईमानदारीके साथ तथा तत्परतापूर्वक कर्तव्यबुद्धिसे करना और वे वहाँ मल-मूत्रका त्याग कर देते हैं। चूहोंके मल-चाहिये। इसमें एक रहस्य है, इस रहस्यको समझ लेनेपर म्त्रमें भयानक विष होता है। खुले बरतनोंमें दूसरे जानवर जीविकोपार्जनका कार्य भी भगवान्की पूजामें परिणत हो भी घुसकर सामानको गन्दा कर देते हैं। चौकेमें भोजन जाता है। लोभकी अत्यन्त बढ़ी हुई प्रवृत्ति तथा किसी भी

बनाकर जिन बरतनोंमें रखा हो, उन्हें ढककर रखना चाहिये। दूध, दही, मिठाई आदि पदार्थ ऐसे स्थानोंपर रखने चाहिये, जिनसे उनपर मक्खी-मच्छर न बैठ पायें। पंगतमें

भोजन करने बैठे तो सबके साथ उठना चाहिये। भोजनके बादके कृत्य

भोजन करनेके अनन्तर दाँतोंको खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिये, ताकि उनमें अन्नका एक भी कण न रह जाय। अन्नकण दाँतोंमें रह जानेपर दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा उससे पायरियाका रोग भी हो जाता है।

अन्नकणोंको नीम आदिके तिनकेसे निकालकर अच्छी

तरह धो लेना चाहिये। अपने शास्त्रोंमें भोजनके अनन्तर

करे तो उसका यह कार्य भगवदाराधनके रूपमें परिणत हो जाता है तथा उसके प्रारब्धके अनुसार उसे धन और यशकी भी प्राप्ति होती ही है। साथ ही वह उत्तरोत्तर स्वाभाविक रूपसे उन्नतिके पथपर अग्रसर होता है। परमात्मप्रभु भी उसपर प्रसन्न रहते हैं। दाँतोंके बीचमें यदि फाँक हो गयी हो तो उसमें फँसे शयन- रातमें भोजन करनेके तुरंत बाद सोना नहीं

तरह धन कमानेकी चेष्टा ही मनुष्यको पतनकी ओर ले

जाती है। झूठ, कपट, चोरी और छल आदिसे बचकर यदि

व्यक्ति आसक्तिरहित होकर पूर्ण ईमानदारी, सत्यता एवं

तत्परतापूर्वक अपना व्यापार अथवा नौकरी कर्तव्यबुद्धिसे

चाहिये। सोनेसे पूर्व सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय और भगवान्का

स्मरण अवश्य करना चाहिये। सोनेके पूर्व लघुशंका

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− आदिसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोकर उन्हें भलीभाँति सन्तुलनकारी भोजन कहा जाता है। इन तीनोंका स्वभावसे पोंछकर स्वच्छ बिछावनपर पूर्व या दक्षिणकी ओर सिर गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिये स्वभाव और परिस्थितिके करके सोना चाहिये। हवादार घर जिसमें भगवानुके चित्र अनुसार भोजन करनेकी अनुमति दी जाती है। शारीरिक टॅंगे हों, शयनके लिये उत्तम स्थान माना गया है। श्रम करनेवाले व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और उसका प्रकार भगवानुका ध्यान करके बायीं करवट सोना स्वास्थ्यके जो होगा, वह मानसिक श्रमशील व्यक्तिके भोजनकी मात्रा लिये उत्तम है। सामान्यत: ६-७ घण्टे सोनेपर नींद पूरी और प्रकारसे भिन्न होगा। हो जाती है। अभ्यास कर लेनेपर छ: घण्टेसे कम भी आहारका सर्वोपरि सिद्धान्त तो यह है कि भूख सोया जा सकता है। सोनेके समय मुँह ढककर या मोजा लगनेपर आवश्यकतानुसार भूखसे कम मात्रामें भोजन पहनकर नहीं सोना चाहिये। रातमें जल्दी सोना तथा करना चाहिये। प्रात:काल जल्दी उठना स्वास्थ्यके लिये विशेष लाभप्रद (२) श्रम — जीवनमें भोजनके साथ श्रमका कम महत्त्व नहीं है। आजकल श्रमके अभावमें आलस्य और है। शयनका स्थान हवादार, स्वच्छ तथा साफ होना प्रमादके कारण विभिन्न प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति हो रही चाहिये। मनुष्य सोकर उठनेपर शान्त अन्त:करणसे जिसका है। ऐसे बहुत लोग हैं, जिन्हें जीवनमें कभी भी सच्ची चिन्तन करता है, उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी भूखकी अनुभूति नहीं होती। प्रकार सोनेके पूर्व जिसका चिन्तन करता हुआ सोता है, स्वस्थ रहनेके लिये दैनिक जीवनक्रममें कुछ घण्टे उसका भी प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि उस ऐसे बिताने चाहिये, जिससे सहज श्रम हो जाय। जो लोग स्वाभाविक रूपसे शारीरिक श्रम नहीं कर सकते, उन्हें विषयकी आवृत्ति अनेक बार निद्रा आ जानेतक हो जाती है, जिसका गुप्तरूपसे प्रवाह निद्रामें भी बना रहता है। व्यायाम, योगासन और भ्रमणके द्वारा श्रमशील होना इसीलिये सोनेसे पूर्व पुराणोंकी सात्त्विक कथा या भक्तगाथा चाहिये। श्रवण करके अथवा भगवन्नामका जप करते हुए सोनेका आजकल सिनेमा, होटल तथा क्लबोंमें जानेके लिये विधान किया गया है। और टी.वी. आदि देखनेके लिये तो सरलतासे समय स्वास्थ्यरक्षाकी आवश्यक बातें मिलता है, किंतु व्यायामके लिये समयके अभावकी शिकायत बनी रहती है। जो व्यक्ति श्रम या व्यायाम स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे शास्त्रोक्त दिनचर्या ऊपर प्रस्तुत की गयी है, वस्तुत: स्वास्थ्यरक्षाके पाँच मूल आधार नियमित रूपसे करते हैं, उन्हें सामान्यत: दवा लेनेकी हैं—(१) आहार, (२) श्रम, (३) विश्राम, (४) मानसिक आवश्यकता नहीं पड़ती, वे स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ सन्तुलन और (५) पंचमहाभूतोंका सेवन। रहते हैं। (१) आहार—आहारके सम्बन्धमें ऊपर विस्तारसे (३) विश्राम—आहार तथा श्रमकी तरह विश्राम वर्णन किया जा चुका है। आयुर्वेदमें तीन प्रकारके भी शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है। अत्यधिक परिश्रमसे भोजनोंका उल्लेख मिलता है—(१) शमन करनेवाला थके व्यक्तिमें विश्रामके पश्चात् नवजीवनका संचार होता भोजन, (२) कृपित करनेवाला भोजन तथा (३) सन्तुलन है। रातकी गहरी नींदसे शरीरमें पुन: नयी शक्ति तथा मनमें रखनेवाला भोजन। वात-पित्त और कफ-इन तीनोंके नयी उमंगका प्रादुर्भाव होता है। विश्रामके बाद श्रम और असन्तुलनसे रोगका जन्म होता है। ये तीनों रोगके प्रमुख श्रमके बाद विश्राम—दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। कारण हैं। जो भोज्यपदार्थ इन तीनोंका शमन करते हैं, वे प्राय: लोग शरीरको तो विश्राम देते हैं, किंतु मनको शमनकारी और जो इन तीनोंको कृपित करते हैं, वे विश्राम नहीं देते। शरीर एक स्थानपर पड़ा रहता है, किंतु

मन इधर–उधर भटकता रहता है। नींदके समय शरीर

कुपितकारी तथा जो तीनोंको सन्तुलित किये रहते हैं, उन्हें

अङ्क ] * सफलता	के सोपान∗ ४१
**************************************	**************************************
शान्त रहता है, किंतु मन स्वप्नमें फँसा रहता है। ध्यान तथा	विद्यमान रहना है, जो उस परम तत्त्वका ही अंश है।
भगवन्नाम-स्मरणसे मनको विश्राम मिल सकता है। इसी	<b>( ५ ) पंचमहाभूतोंका सेवन</b> —यह शरीर पंचमहाभूत
प्रकार जीवनमें संयम-नियमका पालन करनेसे मनको	अर्थात् आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीसे निर्मित है।
शान्त रखनेमें सहायता मिलती है। निद्रा भी विश्रामका	जीवनकी रक्षाके लिये इन पाँचों तत्त्वोंकी अनिवार्य
सर्वोत्तम साधन है। शरीर तथा मन—दोनोंको विश्राम	आवश्यकता है।
मिलनेपर ही पूर्ण विश्रामकी स्थिति बनती है।	[ <b>१ ] आकाश</b> —जैसे हमारे बाहर सर्वत्र आकाश
(४) <b>मानसिक सन्तुलन</b> —मानसिक विश्रामके	है, वैसे ही हमारे शरीरके भीतर भी आकाश है। इसीलिये
बाद शारीरिक क्रिया होती है। शरीर सदा मनका अनुगामी	शरीरके भीतर असंख्य जीवनकोष हैं, जो गतिमान् हैं।
होता है। मनमें संकल्प उठता है, इसके बाद ही शरीरद्वारा	रक्तसंचार या वायुसंचारके लिये शरीरमें खाली जगह
क्रिया आरम्भ होती है। शुद्ध चित्तमें पवित्र संकल्प या	अर्थात् आकाशकी आवश्यकता अनिवार्य है।
विचार आते हैं और अशुद्ध चित्तमें बुरे संकल्प या विचार	[ <b>२ ] वायु</b> —प्राय: जहाँ आकाश है, वहाँ वायु भी
आते हैं। मन शरीररूपी यन्त्रका संचालक है। मन या	है। चूँकि आकाश सर्वत्र है, अतः वायु भी सर्वत्र है।
चित्तको शुद्ध रखनेपर वही सही मार्गपर चलेगा। इसलिये	वायुके बिना एक पल भी व्यक्ति रह नहीं सकता। जल
शरीरशुद्धिकी अपेक्षा चित्तशुद्धिका महत्त्व अधिक है।	और अन्नके बिना तो कुछ घण्टों या दिनोंतक प्राण बच
चित्तशुद्धिके बाद शारीरिक स्वास्थ्यका सुधार स्वत: स्वाभाविक	सकते हैं, किंतु वायुके बिना प्राणी कुछ ही क्षणोंमें प्राण
रूपसे हो जायगा।	त्याग देता है। वायुका सेवन मनुष्य चौबीस घण्टे सतत
मनके शान्त तथा प्रसन्न रहनेपर सामान्यतः शरीर	करता है, इसलिये आकाश तथा वायुका समान महत्त्व है।
स्वस्थ रहेगा ही। मनमें अशान्ति, क्रोध, ईर्ष्या, राग–द्वेष	जटिल रोगमें जब औषधि असर नहीं करती तब
बढ़नेपर शरीरको रोगी बननेसे रोका नहीं जा सकता।	रोगीको वायु-परिवर्तन कराकर स्वास्थ्यलाभ कराया जाता
आजकल अनेक लोगोंको क्रोध, चिन्ता, भय, दुःख तथा	है। जहाँ दवा काम नहीं करती, वहाँ हवा काम कर जाती
मानसिक तनाव आदिके कारण रक्तचाप, मधुमेह तथा	है—ऐसी कहावत प्रचलित है। प्रकृतिने जीवनकी रक्षाके
हृदय एवं मस्तिष्कसम्बन्धी बीमारियाँ होती रहती हैं।	लिये प्रचुर मात्रामें हवा प्रदान कर रखी है।
चित्तको शान्त और प्रसन्न रखनेकी दृष्टिसे मानसिक	[ <b>३</b> ] <b>तेज</b> —तेजका पर्यायवाची शब्द अग्नि या
आहारके रूपमें हमें अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि करनी	ऊष्मा है। जबतक प्राणी जीवित है तबतक शरीरमें गरमी
होगी। कानसे अच्छी बातें सुनें, भजन सुनें, आँखके द्वारा	रहती है। मृत्यु होनेपर शरीर ठंडा हो जाता है। जीवनके
भी महापुरुषोंकी जीवनी पढ़ें, सत्-दृश्यका अवलोकन	साथ तेज या ऊष्माका तथा सूर्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है।
करें, मनमें अच्छे विचारोंको स्थान दें तथा बुरे विचारोंको	सूर्यकी गरमीसे प्रकृति प्राणिमात्रके लिये फल-फूल,
त्यागें। तभी चित्तशुद्धिकी प्रक्रिया प्रारम्भ होगी।	कन्द-मूल आदि पकाती है। सूर्यिकरणोंमें जन्तुनाशक गुण
वास्तवमें मानसिक स्वस्थता ही आरोग्यताकी मुख्य	भी है। विभिन्न रोगोंमें सूर्यिकरण-चिकित्सा भी की जाती
पूँजी है। मन तथा शरीर दोनों शुद्ध एवं स्वस्थ रहनेपर ही	है। स्वास्थ्यलाभकी दृष्टिसे प्रात:काल तथा सायंकालमें
पूर्णरूपसे आरोग्य सुरक्षित रह सकता है। मानसिक	जब किरणोंमें गरमी कम होती है तब सूर्यका सेवन खुले
सन्तुलन बनाये रखनेके लिये भगवान्का भजन, प्रार्थना,	बदन करना हितकर है। अत: तेज भी जीवनके लिये
अपने इष्टका ध्यान, सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय आदि मुख्य	अत्यन्त उपयोगी है।
साधन हैं। स्वस्थ रहनेका अर्थ है अपने-आपमें स्थित	[४] <b>जल</b> —मानवको जलकी प्रचुर आवश्यकता
होकर शान्त एवं प्रसन्न रहना। वास्तवमें शान्ति, प्रसन्नता	है। मनुष्यके आहारमें ठोस पदार्थ कम और तरल पदार्थ
अथवा जीवनका सम्पूर्ण रहस्य स्वमें स्थित आत्मतत्त्वमें	अधिक मात्रामें रहता है। स्नान, भोजन, स्वच्छता और

<b>४२</b> * आत्मनः प्रतिकूलानि	न परेषां न समाचरेत्* [ जीवनचर्या-
**************************************	********************************
सफाई—सभी कार्य जलके बिना सम्भव नहीं हैं। पशुपालन,	सबसे विनम्र व्यवहार करना चाहिये। व्यर्थमें हाथ-पैर हिलाना,
खेती-बारी आदि सभी कार्य जलपर ही निर्भर करते हैं।	लगातार सूर्यकी ओर देखना तथा सिरपर भार ढोना आदि कार्य
अतः जल भी जीवन है।	न करे, अत्यन्त चमकीली वस्तुओंकी ओर देरतक नहीं
[ <b>५ ] पृथ्वी</b> —पृथ्वीमाताकी गोदमें हम जन्मसे लेकर	देखना चाहिये, इससे अन्धत्व आनेका भय होता है। सूर्योदय
मृत्युतक निरन्तर रहते हैं। पृथ्वी अर्थात् मिट्टीमें आकाश, वायु,	तथा सूर्यास्तके समय सोना, भोजन तथा स्त्रीगमन आदि करना
जल तथा सूर्यके सहयोगसे अन्न, फल, मूल, वनस्पति और	निषिद्ध है। हानिप्रद पेय नहीं पीना चाहिये। किसी भी कार्यमें
ओषिधयों आदिकी उत्पत्ति होती है और इसीसे सभी प्राणियोंका	अति नहीं करना चाहिये— <b>'अति सर्वत्र वर्जयेत्'</b> ।
भरण-पोषण तथा रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीके विभिन्न	बुद्धिमान् व्यक्तिको दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।
प्रयोगोंसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीकी पट्टी	समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव तथा सत्पात्रको दान देनेकी
प्राय: सभी रोगोंमें उपयोगी है।	भावना रखनी चाहिये। हिंसा, चोरी, पिशुनता, कठोरता, झूठ,
यह शरीर पंचमहाभूतोंसे बना है, इसलिये प्रकृतिमें	दुर्भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि पापोंसे तथा शरीर, मन और वाणीके
आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-तत्त्वकी प्रचुरता है,	द्वारा किसी भी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। अन्यथा
जिससे प्राणी मुक्तभावसे उनका उपयोग करके नीरोग और	व्याधिरूपमें उनका दण्ड भोगना पड़ता है।
स्वस्थ रह सके।	संक्षेपमें निष्कर्ष यह है कि जीवनके उत्कर्षके लिये
कल्याणकामी मनुष्यके लिये आयुर्वेदशास्त्रके	तथा अपने कल्याणके लिये आचारधर्म अर्थात् सदाचारका
अन्तमें कुछ उपदेश प्रदान किये गये हैं, जो यहाँ	पालन ही मनुष्यका मुख्य धर्म है—'आचारप्रभवो धर्मो
प्रस्तुत हैं—	धर्मस्य प्रभुरच्युतः' (विष्णुसहस्रनाम श्लोक १३७)।
मानवको सभी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। हितैषी	जिसका अनुशीलनकर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों,
मित्रोंको समझना तथा वंचक मित्रोंसे दूर रहना चाहिये।	अभिचारोंसे सुरक्षित रहकर पूर्ण आरोग्य तथा धर्म, अर्थ,
अभावग्रस्त, रुग्ण एवं दीनजनोंकी सहायता करनी चाहिये।	काम और मोक्ष—सभीको प्राप्त करनेमें सक्षम हो जाता है।
क्षुद्रातिक्षुद्र चींटी आदि प्राणियोंको अपने समान समझना	जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार-विहारका सेवन करता
चाहिये। देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथिका	है, सोच-समझकर कार्य करता है, विषयोंमें आसक्त नहीं
सतत सत्कार करना चाहिये। याचकोंको विमुख नहीं जाने देना	होता, जो दानशील, समत्व बुद्धिसे युक्त, सत्य-परायण, क्षमावान्,
चाहिये और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार नहीं करना	वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला है, वह नीरोग होता है—
चाहिये। अपकार करनेवालेका भी निरन्तर उपकार करनेकी	नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
ही भावना रखनी चाहिये। फलकी कामनासे निरपेक्ष रहकर	दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥
सम्पत्ति और विपत्तिमें सदा समबुद्धि रखनी चाहिये। <sup>१</sup> उचित	(चरक)
समयपर अति संक्षेपमें किसीसे भी हितकर बात कहनी	मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा
चाहिये—'काले हितं मितं ब्रूयात्।' मनुष्यको करुणार्द्र,	प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है—
कोमल, सुशील तथा संशयरहित होना चाहिये तथा किसीपर	'प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामो स्थिरधी: स्वस्थमुच्यते।'

अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिये। किसीको अपना शत्रु ये सभी बातें अथवा विशेषताएँ आचारधर्मके पालनसे मानना तथा किसीसे शत्रुता करना दोनों अच्छे नहीं हैं। रे सदैव ही सम्भव हैं और यही स्वस्थ दैनिक चर्याका आधार है।

१-आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्

। विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥ अर्चयेद्वेगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् स्यादपकारपरेऽप्यरौ । सम्पद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु॥ (अ०ह०सू० २।२३—२५)

२-न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्॥ (अ०ह०सू० २।२७)

\* सफलताके सोपान\* अङ्क ] जीवनचर्या सामान्यतया मानवके लिये एक प्रश्न है कि जीवन व्यक्तिका पतन निश्चित है। उसे अगले जन्मोंमें पश्-

कैसे बिताया जाय। वैसे तो जीवनयापनके लिये प्रकृतिके पक्षी, कीट-पतंग एवं तिर्यक् योनि प्राप्त होती है तथा नरक भी भोगना पड़ता है। अतः अत्यन्त सावधान कुछ नियम हैं, जिनके अनुसार स्वाभाविक रूपमें

विचारप्रधान प्राणी है, पशुत्वसे ऊपर उठकर दिव्यत्वकी ओर जाता है, पशुकी अपेक्षा मनुष्यकी यही विशेषता है

कि पशु तो अपनी आँखोंके सामने कोई मोहक वस्तु देखकर उसे पानेके लिये दौड पडता है और उसके

प्रलोभनमें फँसकर पीछे होनेवाली ताड़नापर दृष्टि नहीं रखता, उसे तो केवल वर्तमान सुख चाहिये, परंतु मनुष्य

किसी आकर्षक वस्तुको देखकर यह जानता है, विचार

करता है और फिर यदि वह वस्तु अपने जीवनकी

प्रगतिमें सहायक हुई तो उसे जहाँतक हुआ अपनी उन्नतिमें बाधक न हो, स्वीकार करता है और उसका उपयोग करता है। यद्यपि मनुष्यको क्षणिक उपभोग-

सुखपर जो कि अत्यन्त तुच्छ है, मुग्ध नहीं होना चाहिये। कारण मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह अपने भविष्यकी अर्थात् जन्मान्तरकी भी चिन्ता करे, केवल

मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंकी परिधिमें ही सीमित न रहकर अपने शाश्वत कल्याणके लिये प्रयत्नशील रहे। श्रीमद्भगवद्गीतामें इसीलिये भगवान्ने उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो

बन्धु आत्मैव रिपुरात्मनः॥ यदि हम अपना पतन नहीं होने देना चाहते हैं तो हमें अपना उद्धार अपने-आप

करना होगा। वस्तुत: हम ही अपने-आपके मित्र और शत्रु हैं। यदि हम अपने कल्याणप्राप्तिके पथपर अर्थात्

शास्त्रोक्त कर्तव्योंका क्रियान्वयन करते हैं, हम अपने मित्र हैं और यदि हम उच्छृंखलतापूर्वक अपनी मनमानी करते

हैं तो स्वाभाविक रूपसे हम स्वयंके शत्रु हो जाते हैं। कारण उच्छृंखल होकर अधर्मपूर्वक कार्य करनेवाले

संसारके सम्पूर्ण प्राणी अपना निर्वाह करते हैं। मनुष्य

किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये, इसपर संक्षेपमें यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है—

अपने शास्त्रोंमें संस्कारोंकी आवश्यकता बतायी गयी

है, जैसे खानसे सोना, हीरा आदि निकलनेपर उसमें चमक, प्रकाश तथा सौन्दर्यके लिये तपाकर, तराशकर मल हटाना एवं चिकना करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्यमें

रहनेकी आवश्यकता है।

मानवीय शक्तिका आधान होनेके लिये उसे सुसंस्कृत होना आवश्यक है और उसे पूर्णतः विधिपूर्वक संस्कारसम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमें विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे

दिव्य ज्ञान उत्पन्न होकर आत्माको परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित करना ही मुख्य संस्कार है, तभी मानवजीवन प्राप्त करनेकी सार्थकता भी है। संस्कारोंसे अन्त:करण शुद्ध होता है, संस्कार मनुष्यको

पाप और अज्ञानसे दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे समन्वित करते हैं। शास्त्रोंमें संस्कारपर बहुत विचार हुआ है तथा विविध संस्कारोंका उल्लेख है, परंतु उनमें मुख्य तथा आवश्यक

षोडश संस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यासजीद्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश संस्कार इस प्रकार हैं<sup>१</sup>—

जीवनचर्याके अन्तर्गत जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त

संस्कार

१-गर्भाधानसंस्कार—विधिपूर्वक संस्कारसे युक्त गर्भाधानसे अच्छी और सुयोग्य सन्तान उत्पन्न होती है।

इस संस्कारसे वीर्यसम्बन्धी तथा गर्भसम्बन्धी पापका नाश होता है। दोषका मार्जन तथा क्षेत्रका संस्कार होता है। यही गर्भाधानसंस्कारका फल है।<sup>२</sup>

त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडशः स्मृताः।(व्यासस्मृति १।१३–१५) २-निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते। क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥ (स्मृतिसंग्रह)

वेदारम्भक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥

१-गर्भाधानं पुसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया:॥

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− २-पुंसवनसंस्कार-पुत्रकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें जाता है तथा मर्मस्थानकी सुरक्षाके लिये सिरके पिछले पुंसवनसंस्कारका विधान है। इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, भागमें चोटी रखनेका विधान किया है। इसलिये पुंसवनसंस्कार किया जाता है। ९-कर्णवेध-पूर्ण पुरुषत्व एवं स्त्रीत्वकी प्राप्तिके **३-सीमन्तोन्नयनसंस्कार**—गर्भके छठे या आठवें लिये यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारको छ: माससे लेकर १६वें मासतकमें अथवा तीन, पाँच आदि मासमें यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारका फल भी गर्भकी शुद्धि ही है। सामान्यत: गर्भमें चार मासमें विषमवर्षमें अथवा कुलके आचारके अनुसार करना बालकके अंग-प्रत्यंग, हृदय आदि प्रकट हो जाते हैं। चाहिये। गर्भमें चेतना आ जाती है। इस समय जो संस्कार डाले जाते १०-उपनयन—इस संस्कारसे द्विजत्वकी प्राप्ति हैं, उसका बालकपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अत: होती है, शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा गया है कि इस माता-पिताको चाहिये कि इन दिनों विशेष सावधानीके संस्कारके द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यका द्वितीय जन्म साथ शास्त्रसम्मत व्यवहार रखें तथा गर्भिणी स्त्रीको सत्संग होता है। विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करना इस संस्कारका मुख्य अंग है। इस संस्कारके द्वारा अपने आत्यन्तिक तथा अच्छी पुस्तकोंका स्वाध्याय करना चाहिये। **४-जातकर्मसंस्कार**—इस संस्कारसे गर्भस्रावजन्य कल्याणके लिये वेदाध्ययन तथा गायत्रीजप, श्रीतस्मार्त सारा दोष नष्ट हो जाता है, बालकके जन्म होते ही यह आदि कर्म करनेका अधिकार प्राप्त होता है। संस्कार करनेका विधान है। नालच्छेदनसे पूर्व बालकको ११-वेदारम्भसंस्कार—उपनयनके बाद बालकको स्वर्णकी शलाका अथवा अनामिका अँगुलीसे मधु तथा घृत वेदाध्ययनका अधिकार प्राप्त हो जाता है, साथ ही चटाया जाता है। विद्याध्ययनमें कोई विघ्न नहीं होने पाता। ज्योतिर्निबन्धमें कहा गया है— ५-नामकरणसंस्कार—इस संस्कारका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि तथा लौकिक व्यवहारकी सिद्धि बताया विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयुः प्रवर्धते। गया है। <sup>१</sup> जन्मसे १० रात्रिके बाद ११वें दिन कुलक्रमानुसार विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ किसी भी दिन नामकरणसंस्कार करनेकी विधि है। वेदविद्याके अध्ययनसे सारे पापोंका लोप होता है, ६-निष्क्रमणसंस्कार—इस संस्कारका फल विद्वानोंने आयुकी वृद्धि होती है, सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, आयुकी वृद्धि बताया है। यह संस्कार बालकके चौथे या यहाँतक कि उसके समक्ष साक्षात् अमृत-रस अशनपानके छठे मासमें होता है। रूपमें उपलब्ध हो जाता है। ७-अन्नप्राशन-इस संस्कारके द्वारा माताके गर्भमें **१३-समावर्तन (वेदस्नान)-संस्कार**—समावर्तन मिलनभक्षणजन्य जो दोष बालकमें आ जाते हैं, उनका विद्याध्ययनका अन्तिम संस्कार है। विद्याध्ययन पूर्ण हो नाश हो जाता है। शुभ मुहूर्तमें देवताओंका पूजन करनेके जानेके अनन्तर स्नातक ब्रह्मचारी अपने पूज्य गुरुकी आज्ञा पश्चात् माता-पिता आदि सोने या चाँदीकी शलाका या मानकर अपने घरमें समावर्तित होता है, लौटता है। इसीलिये इसे समावर्तनसंस्कार कहा जाता है। गृहस्थजीवनमें प्रवेश

चम्मचसे बालकको हविष्यान्न (खीर) आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न मन्त्रके उच्चारणपूर्वक चटाते हैं।

८-चूडाकरणसंस्कार ( वपनक्रिया )— इसका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि करना है, इसे प्राय: तीसरे, चौथे या सातवें वर्ष अथवा कुलपरम्परानुसार करनेका विधान

**१४-विवाहसंस्कार**—विवाहसंस्कारका संस्कृतिमें अत्यधिक महत्त्व है। जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्यजातिके स्त्री-पुरुषोंका विवाहसंस्कार

पानेका अधिकारी हो जाना समावर्तनसंस्कारका फल है।

है। शुभ मुहूर्तमें कुशल नाईद्वारा बालकका मुण्डन कराया प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना दुर्विज्ञेय है। कन्या और सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा। नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभि:॥ (स्मृतिसंग्रह) १-आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च

अङ्क ] $st$ सफलताः * सम्बन्धसमम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसममसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसममसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसममसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसममसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धसमसममसम्बन्धसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसमसम	के सोपान <b>*</b> ****************
	जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं
शास्त्रोंने नहीं प्रदान की है। इसके लिये कुछ नियम और	हो चुका है, उन्हींके अनुसार उनमें यथायोग्य सत्त्व-रज
विधान बने हैं, जिनसे स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण होता है।	और तमोगुणकी न्यूनाधिकता होती है, इन्हीं गुणकर्मीके
पाणिग्रहणसंस्कार देवता और अग्निके साक्षित्वमें करनेका	अनुसार जीवको देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि विभिन्न
विधान है। भारतीय संस्कृतिमें यह दाम्पत्यसम्बन्ध जन्म-	योनियोंमें जाना पड़ता है। भगवान् जगत्की सृष्टिके समय
जन्मान्तर तथा युगयुगान्तरतक माना गया है।	जीवके लिये जब मनुष्ययोनिका निर्माण करते हैं, तब उन
<b>१५-विवाहाग्निपरिग्रह</b> —विवाहसंस्कारमें लाजाहोम	जीवोंके गुण और कर्मोंके अनुसार उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय,
आदि क्रियाएँ जिस अग्निमें सम्पन्न की जाती हैं, वह	वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं; क्योंकि
आवसथ्य नामक अग्नि कहलाती है। इसीको विवाहाग्नि	भगवान्का वचन है—'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्म-
भी कहा जाता है।	विभागशः।' प्रजापति ब्रह्माके द्वारा चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि हुई
<b>१६-त्रेताग्निसंग्रह</b> —विवाहाग्निसे अतिरिक्त तीन	है। इन चारों वर्णोंके लिये उनके स्वभावानुकूल पृथक्-
अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि)-की स्थापना	पृथक् कर्मोंका विधान भी भगवान् ही कर देते हैं, जिससे
तथा उनकी रक्षाका विधान भी शास्त्रोंमें निर्दिष्ट है। ये	ब्राह्मण शम-दमादि कर्मोंमें रत रहें, क्षत्रिय शौर्य-तेज
त्रेताग्नि कहलाती हैं। इनमें श्रौतकर्म सम्पन्न होते हैं।	आदिसे युक्त हों, वैश्य कृषि-गोरक्षामें लगे रहें और शूद्र
अन्त्येष्टि-क्रिया	सेवापरायण हों।
कुछ आचार्योंने मृतशरीरकी अन्त्येष्टिक्रियाको भी एक	इस प्रकार गुण और कर्मके विभागसे वर्णविभाग
संस्कार माना है, जिसे पितृमेध, अन्त्यकर्म, अन्त्येष्टि अथवा	बनता है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि मनमाने कर्मसे वर्ण
श्मशानकर्म आदि नामोंसे भी कहा गया है। यह क्रिया अत्यन्त	बदल जाता है। वर्णका मूल जन्म है और कर्म उसके
महत्त्वपूर्ण है और जीवनकी अन्तिम कड़ी है।	स्वरूपकी रक्षाका प्रधान कारण है। इस प्रकार जन्म और
मृत्युके उपरान्त इस संस्कारमें मुख्यत: दाहक्रियासे	कर्म दोनों ही वर्णमें आवश्यक हैं।
लेकर द्वादशाहतकके कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। मृत	मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही
व्यक्तिके शरीरको स्नान कराकर, वस्त्रोंसे आच्छादितकर,	उसका विभिन्न वर्णोंमें जन्म हुआ करता है, जिसका जिस
तुलसी-स्वर्ण आदि पवित्र पदार्थोंको अर्पितकर शिखासूत्रसहित	वर्णमें जन्म होता है, उसे उसी वर्णके निर्दिष्ट कर्मोंका
उत्तरकी ओर सिर करके चितामें स्थापित करना चाहिये	आचरण करना चाहिये; क्योंकि वही उसका स्वधर्म है और
और फिर औरस पुत्र या सिपण्डी या सगोत्री व्यक्ति	स्वधर्म का पालन करते-करते मर जाना भगवान् श्रीकृष्णने
सुसंस्कृत अग्निसे मन्त्रसहित चितामें अग्नि दे। अग्नि	कल्याणकारक बताया है—
देनेवाले व्यक्तिको बारहवें दिन सपिण्डनपर्यन्त सारे कर्म	'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥'
करने चाहिये। तीसरे दिन अस्थिसंचय करके दसवें दिन	—साथ ही परधर्मको भयावह भी बताया है। यह
दशाहकर तिलांजिल देनी चाहिये। दस दिन तथा बारह	ठीक है; क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्मपालनसे ही सामाजिक
दिनतक अशौच रहता है, इसमें कोई नैमित्तिक कार्य नहीं	शक्ति और सामंजस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी
करने चाहिये। बौधायनीय पितृमेध सूत्रोंमें इस क्रियाकी	रक्षा एवं उन्नित होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका
विशिष्ट विधि दी गयी है।	ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकारक है।
वर्णव्यवस्था	अतः व्यवस्थित वर्णव्यवस्थाको मर्यादित रहने देना, उनका
भारतीय संस्कृतिमें तथा शास्त्र, पुराणोंमें सनातनधर्मका	संरक्षण करना, तदनुसार चलना सबके लिये सर्वथा
आधार वर्णाश्रमकी व्यवस्था है। अनादिकालसे जीवोंके जो	कल्याणकारक सिद्ध होगा।

करता हुआ अपने परिवारका पालन-पोषण करे। समाज, देश आश्रमव्यवस्था वर्णव्यवस्थाकी भाँति आश्रमव्यवस्था भी भारतीय और राष्ट्रकी सेवा करे। गृहस्थाश्रमके अनेक कर्तव्योंके वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होते हैं। संस्कृति एवं हिन्दूधर्मका एक प्रमुख अंग है। ब्रह्मचर्य,

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

भी निर्भर करता है। ब्रह्मचर्याश्रम — प्रारम्भके २५ वर्ष ब्रह्मचर्य-आश्रमके

वैश्य-बालक ५ से २५ वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें ब्रह्मचर्यका पालन करते थे और इसके नियमानुसार रहते थे। शूद्र बालक भी अपने अधिकारानुसार इस उच्च आदर्शका अनुकरण करते थे। परनारीका स्पर्श तो क्या उनके प्रति दृष्टिपात करना

गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—इन चार आश्रमोंमें प्रत्येक

व्यक्तिका कर्तव्यकर्म उसके वर्णके साथ-साथ आश्रमपर

अन्तर्गत माने गये हैं। प्राचीनकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और

अवस्था प्राप्त होनेपर समावर्तन-संस्कारके बाद पाणिग्रहण-संस्कारके द्वारा वे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे।

यहाँतक कि उनका चिन्तन भी अपराध था। २५ वर्षकी

गृहस्थाश्रम-- आश्रमव्यवस्थामें गृहस्थाश्रमको एक महत्त्वपूर्ण आश्रम माना गया है। यह सभी आश्रमोंका आधार

है। सम्पूर्ण जीवनकी जिम्मेदारियोंका निर्वाह इस आश्रममें ही होता है। युवावस्था प्राप्त होनेपर व्यक्तिमें एक विशेष शक्तिका संचार होना स्वाभाविक है। पचास वर्षकी अवस्थातक शास्त्रोंने

व्यक्तिका मस्तिष्क परिपक्व हो जाता है। इसके बाद अवस्था प्राय: ढलने लगती है। उसकी सन्तान भी तबतक युवावस्थाको प्राप्त हो जाती है। पारलौकिक चिन्तन तथा भगवदाराधनकी ओर उसकी प्रवृत्तियाँ विशेषरूपसे उन्मुख होने लगती हैं। इसलिये उसमें गृहस्थ जीवनकी जिम्मेदारियोंसे मुक्त होनेकी भावना जाग्रत् होना स्वाभाविक है। अतः शास्त्रकारोंने पचास वर्षकी अवस्थासे ७५ वर्षकी अवस्थाको

सुखोंका त्याग करता हुआ व्यक्ति निवृत्तिमार्गकी ओर अग्रसर होता है और मुख्य रूपसे वनमें, एकान्तमें अथवा तीर्थस्थलोंमें निवास करता हुआ निष्काम कर्म, भगवच्चिन्तन, आराधन एवं तपोमय जीवन व्यतीत करता है। तीर्थयात्रा,

संन्यासाश्रम — जीवनका अन्तिम आश्रम है — संन्यास-आश्रम। सभी प्रकारके दायित्वोंसे संन्यास लेनेका विधान इस आश्रममें है। जीवन-निर्वाहमात्रके लिये जो कर्म करना आवश्यक हो, उसके अतिरिक्त सभी कर्मींसे वह संन्यास ले लेता है तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावनासे

ब्रह्मचिन्तनमें ही अपना समय व्यतीत करता है। वर्णाश्रमधर्म पुनर्जन्म और कर्मवादके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। वर्णाश्रमधर्मका अन्तिम लक्ष्य है शिवत्वकी

प्राप्ति। जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना तथा जन्म-जन्मान्तरके चक्रसे उद्धार पाना मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वर्णाश्रम इसी साधनाका पथ दिखलाता है।

वतोपवास

मनुष्योंके कल्याणके लिये यज्ञ, तपस्या, तीर्थसेवन,

दान आदि अनेक साधन बताये गये हैं, उनमें एक साधन व्रतोपवास भी है, इसकी बडी महिमा है। अन्त:करणकी शुद्धिके लिये व्रतोपवास आवश्यक है। इससे बुद्धि, विचार

**ाजीवनचर्या**−

वानप्रस्थाश्रम—पचास वर्षकी अवस्थातक प्रायः

वानप्रस्थ-आश्रमकी व्यवस्था दी। इस आश्रममें गृहस्थाश्रमके

व्रत, व्रतोद्यापन, परोपकार, समाज-सेवा तथा अन्य सभी

पारमार्थिक कार्य इस आश्रममें सम्पन्न किये जा सकते हैं।

उसे अधिकार दिया कि वह पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये

वंशवृद्धिके निमित्त सन्तान उत्पन्न करे तथा जीविकोपार्जन

और ज्ञानतन्तु विकसित होते हैं। शरीरके अन्त:स्थलमें परमात्माके

अङ्क ] * सफलता	क्रे सोपान∗ ४७
**************************************	********************************
प्रति भक्ति-श्रद्धा और तन्मयताका संचार होता है। पारमार्थिक	सन्मार्गमें प्रवृत्त होते हुए कर्ता या अनुष्ठाता लौकिक तथा
लाभके साथ-साथ व्रतोपवाससे भौतिक लाभ भी होते हैं।	पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। इसीलिये व्रतोपवासकी
व्यापार, व्यवसाय, कला-कौशल, शास्त्रानुसन्धान और	महिमा बताते हुए कहा गया है कि व्रतोपवास के
उत्साहपूर्वक व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन किये	अनुष्ठानसे पापोंका प्रशमन होता है। ईप्सित फलोंकी प्राप्ति
जानेमें मन निगृहीत रहता है, जिससे सुखमय दीर्घ जीवनमें	होती है, देवताओंका आश्रयण प्राप्त होता है। व्रतीपर देवता
आरोग्य साधनोंका स्वत: संचय हो जाता है।	अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे अपने अभीष्ट मनोरथोंको
यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे दूर होते	प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो व्यक्ति निर्दिष्ट
ही हैं। तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और सांसर्गिक	विधिसे व्रतोपवासका अनुष्ठान करते हैं, वे संसारमें सभी
पाप, उपपाप, महापापादि भी व्रतोपवाससे दूर होते हैं। उनके	दु:खोंसे रहित होते हैं और स्वर्गलोकमें ऐश्वर्यका भोग
समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भके पूर्व	करते हैं तथा देवताओंद्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।
पापयुक्त प्राणियोंका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति	दान-प्रकरण
होते ही वह सूर्योदयके कमलकी भाँति खिल उठता है।	मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व बतलाया
पुण्यप्राप्तिके लिये किसी पुण्यतिथिमें उपवास करने या	गया है। यह एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको
किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य-संचय करनेके संकल्पको	प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करना चाहिये। 'श्र <b>द्धया देयम्,</b>
व्रत कहा जाता है। यम-नियम और शम-दम आदिका पालन,	हिया देयम्, भिया देयम्।' दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा
भोजन आदिका परित्याग अथवा जल-फल आदिपर रहना	लज्जासे दे या भयसे दे, परंतु दान किसी प्रकार अवश्य
तथा समस्त भोगोंका त्याग करना—ये सब व्रतके अन्तर्गत	देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परम आवश्यक है।
समाहित होते हैं। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत कहे जाते हैं। व्रतीको	दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। अत:
शारीरिक सन्ताप सहन करना पड़ता है, इसीलिये इसे तप भी	मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना
कहा जाता है। इन्द्रियनिग्रहको दम और मनोनिग्रहको शम	चाहिये।
कहा गया है। व्रतमें इन्द्रियोंका नियमन (संयम) करना होता	अपने शास्त्रोंमें कहा है—' <b>विभवो दानशक्तिश्च</b>
है। इसलिये इसे नियम भी कहते हैं। इसके पालनसे देवगण	महतां तपसां फलम्' विभव और दान देनेकी सामर्थ्य
व्रतीपर प्रसन्न होकर उसे भोग तथा मोक्ष—सब कुछ प्रदान	अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके फल हैं।
कर देते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम,	विभव होना तो सामान्य बात है, यह कहीं भी हो सकता
देवपूजा, हवन, संतोष और चोरीका अभाव—इन नियमोंका	है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना मनकी उदारतापर
पालन प्राय: सभी व्रतोंमें आवश्यक माना गया है—	ही निर्भर करता है, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्यपुंजसे प्राप्त
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।	होती है।
देवपूजाग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च॥	शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।	विशद विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर
(अग्निपु० १७५।१०-११)	अर्थात् तीर्थ आदिमें, शुभकालमें तथा अच्छे मुहूर्तमें
इन सभी व्रतोपवासोंमें व्यक्तिको सात्त्विकताका	सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित
आश्रयणकर अपने त्रिविध पापोंको दूर करनेके लिये,	है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी
अन्तः करणकी शुद्धिके लिये विशेषतः भगवत्प्राप्तिके लिये	दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता
ही इनका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठानसे परम	है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें
कल्याण होता है, बुद्धि निर्मल हो जाती है, विचारोंमें	आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष
सत्त्वगुणका उद्रेक होता है, विवेक शक्ति प्राप्त होती है,	महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ितसमुदायको
सत्-असत्का निर्णय स्वत: होने लगता है और अन्तमें	अन्न-आवास, भूमि आदिको जो सहायता प्रदान की जाती

है, वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र),

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

स्वर्ण तथा द्रव्यादिका दान। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा व्यतीपात आदि पुण्यकालोंमें विशेषरूपसे दानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें अन्नदान, द्रव्यदान, स्वर्णदान, भूमिदान तथा गोदान आदिका विशेष महत्त्व है।

जो मनुष्यकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं,

जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान या घटदान

(३) अनेक पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है,

सामूहिक दोनों प्रकारसे होता है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें

सब कर्म सम्पन्न होते हैं, उसी प्रकार दान भी नित्य

नियमपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकारके दानमें अन्नदानका

दिये जाते हैं, उन्हें नैमित्तिक दान कहते हैं। शास्त्र-पुराणोंमें इसकी विस्तारपूर्वक व्यवस्था बतायी गयी है। जैसे सूर्यग्रहण

तथा चन्द्रग्रहणके समय ताम्र तथा रजतपात्रमें काले तिल,

(१) दैनिक जीवनमें जिस प्रकार व्यक्तिके द्वारा और

(२) विभिन्न पर्वोंपर तथा विशेष अवसरोंपर जो दान

दानके विविध स्वरूप वर्णित हैं—

विशेष महत्त्व बताया गया है।

आदि और अष्ट एवं षोडशमहादान परिगणित हैं। ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि नि:स्वार्थभावसे

भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पण

बुद्धिसे किये जायँ तो ये ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे। (४) कुछ दान बहुजनिहताय, बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है।

दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है। उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधान सामान्य कोटिके मानवोंके लिये किया गया है, जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये-

> धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च। पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग) और

अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुआँ, बावडी, तालाब

आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि

न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ

दशमांश (आमदनीका दसवाँ हिस्सा) बुद्धिमान् व्यक्तिको

दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये लगाना चाहिये-

कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

नहीं होता, यह बात 'न्यायोपार्जितवित्तस्य' इस वचनसे

स्पष्ट होती है। देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट किया गया है

कि अन्यायोपार्जित द्रव्यसे किया गया कर्म व्यर्थ है, उससे

न तो इस लोकमें कीर्ति होती है और न परलोकमें कोई

पारमार्थिक फल ही मिलता है। \* यह भी मान्यता है कि

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य

सामान्यतः न्यायपूर्वक एकत्रित किये गये धनका

किये जायँ तो परम कल्याणकारी सिद्ध होंगे।

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन

**ाजीवनचर्या**−

(स्कन्दपुराण)

(५) स्वजन (परिवारके लिये)—इस प्रकार पाँच प्रकारसे धनका विभाग करनेवाला इस लोक तथा परलोकमें भी आनन्दको प्राप्त करता है। यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें स्पष्ट कहा गया

है कि जिस सर्वस्व दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप

आदि श्भकर्म करनेमें समर्थ होता है-तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते। दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

\* अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्। न कीर्तिरिह लोके च परलोके च तत्फलम्॥ (देवीभा० ३।१२।८)

अङ्क ]	के सोपान <b>* ४९</b> ************
जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन है, अनावश्यक एक पैसा भी	होते हैं, पिछले पाप नष्ट होकर पुण्योंका संचय होता है—
खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका	प्रभावादद्धताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका	परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥
विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे	श्रद्धा-विश्वाससे तीर्थका फल बढ़ता है, तीर्थमें
अवश्यपालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और	जानेवाले तथा रहनेवालेको परिग्रह, काम-क्रोध, लोभ-
छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान	मोह, दम्भ, परनिन्दा और ईर्घ्या-द्वेषसे बचना चाहिये।
करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है—	तीर्थोंमें पाप करनेसे पापकी वृद्धि होती है, अत: तीर्थोंमें
शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।	पापसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥	भारतके चारों धाम और सातों पुरियोंकी तथा भगवान्
जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके	श्रीराम और श्रीकृष्णके आवासस्थल होनेसे तथा बदरिकाश्रम,
दु:खपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर	रामेश्वरम् आदि धामोंकी, नर-नारायणके द्वारा तपस्या
भी पालन न कर विप्रोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित	करने तथा श्रीरामादिद्वारा देवस्थापन करनेसे अत्यन्त महत्ता
विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है।	है। गंगादि नदियाँ नाम लेनेसे ही साधकको तार देती हैं।
पुराणोंमें दानके सम्बन्धमें तो यहाँतक कह दिया गया	इसी प्रकार पुष्कर, मानसरोवर आदि ब्रह्माजीके मनसे
है कि जितनेमें पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका	उत्पन्न हुए हैं और उनके द्वारा यज्ञ आदि करनेसे वे महान्
अधिकार है, उससे अधिकमें जो अधिकार मानता है वह	तीर्थ हैं। जिनका शरीर और मन संयत होता है, उन्हें
चोर है, दण्डका भागी है—	तीर्थोंका विशेष फल मिलता है।
यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।	गणपति आदि देवता एवं ऋषि-मुनि, पितर, संत-
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥	ब्राह्मणोंका पूजन–स्मरण करके तीर्थयात्राका शुभारम्भ करना
तीर्थयात्रा	चाहिये और यान आदिका आश्रय छोड़कर शुद्धभावसे
भारतीय संस्कृतिमें तीर्थयात्राका विशेष महत्त्व है। जिस	धर्माचरणको बढ़ाते हुए तीर्थींमें निवास करना चाहिये।
देशकी भूमि, जल, तेज, वायु तथा आकाश (वातावरण)-में	मानसतीर्थींका महत्त्व
काम-क्रोधादि मानसिक रोगोंको दूर करनेकी विशेष योग्यता	एक बार अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—'निष्पापे!
होती है, उन स्थानोंको शास्त्रकी भाषामें तीर्थ कहते हैं। यद्यपि	में उन मानस-तीर्थोंका वर्णन करता हूँ, जिन तीर्थोंमें स्नान
शरीर और मनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण	करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है, उसे सुनो। सत्य,
जिस देशका शरीरपर जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा ही सात्त्विक,	क्षमा, इन्द्रिय-संयम, सब प्राणियोंके प्रति दया, सरलता,
राजस, तामस प्रभाव मनपर भी पड़ता है एवं जिस देशका	दान, मनका दमन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति
मनपर जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा प्रभाव शरीरपर पड़ता है	और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य
तथापि सात्त्विक प्रभाव डालनेवाले देशका नाम ही तीर्थ है।	परमतीर्थ है। मनकी परमविशुद्धि तीर्थोंका भी तीर्थ है।
भगवान्के अवतारोंके प्राकट्यस्थल, ब्रह्मा आदि विशिष्ट	जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है, जिसने
देवताओंकी यज्ञभूमियाँ और क्षेत्र, विशिष्ट नदियोंके संगम	इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नात है और
एवं पवित्र वन, पर्वत, देवखात, झील, झरने तथा प्रभावशाली	जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।'
संत–भक्त, ऋषि–मुनि, महात्माओंकी तपस्थलियाँ और साधनाके	जो लोभी, चुगलखोर, निर्दय, दम्भी और विषयोंमें
क्षेत्र आदि तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थोंमें जानेसे सत्संगके साथ-	आसक्त है, वह सारे तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान कर लेनेपर
साथ वहाँके पूर्वोक्त सभी तत्त्वोंके सूक्ष्म तेजस्वी संस्कार उपलब्ध	भी पापी और मलिन ही है। शरीरका मैल उतारनेसे ही

मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको निकाल देनेपर ही वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है। रे भीतरसे सुनिर्मल होता है। जलजन्तु जलमें ही पैदा होते हैं जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल— और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहता है तथा उनके मनका मल नहीं धुलता। विषयोंमें अत्यन्त राग ही जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।<sup>३</sup>

अात्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समाचरेत् \*

मनका मल है और विषयोंसे वैराग्य ही निर्मलता है। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे

शुद्धि नहीं होती। जैसे सुराभाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही है, वैसे ही जबतक मनका

भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके

लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यानसे विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञानजलमें जो स्नान करता है, वही परमगतिको प्राप्त करता है।<sup>१</sup>

तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता? जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयमित हैं

अर्थात् जिसके हाथ सेवामें लगे हैं, पैर तीर्थादि भगवत्-

स्थानोंमें जाते हैं और मन भगवान्के चिन्तनमें संलग्न है, जिसे अध्यात्मविद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहता है, जिसकी भगवान्के कृपापात्रके रूपमें कीर्ति है,

१-शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥ सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थिमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥

तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते। ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥ तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् । तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥ ज्ञानं जलाप्लुतदेहस्य

स्नानमित्यभिधीयते । स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः । सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः॥ शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः । मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः ॥ जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः। न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः॥ मानसो मल उच्यते।तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥ विषयेष्वतिसंरागो

५-अक्रोधनोऽमलमति:

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति । शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि: ॥ दानिमज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा। सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ॥ निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसेन्नर:।तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥ रागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥ (स्कन्दपु॰, काशी॰ ६ । २९—४१) ज्ञानजले

२-यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ३-प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्। अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ४-अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः। विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते॥

६-तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः। कृतपापो विशुद्ध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत्॥ ७-अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥

सत्यवादी दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥

बात ही क्या है ?<sup>६</sup>

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रतपालनमें दृढ़ है और सब प्राणियोंको अपने आत्माके समान अनुभव करता है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामोंको आरम्भ

नहीं करता, थोडा आहार करता है, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त

कर चुका है, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ है,

जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसकी तो

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा (पापका पुतला-पापमें

**Г जीवनचर्या**−

गौरवबुद्धि रखनेवाला), नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कमें ही डूबा रहता है-ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त नहीं करते। (स्कन्दपुराण)

\* सफलताके सोपान \* अङ्क ] पापी मनुष्योंके तीर्थमें जानेसे उनके पापकी शान्ति जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं है, उस परिवारमें समस्त (यज्ञादि) होती है। जिनका अन्त:करण शुद्ध है, ऐसे मनुष्योंके लिये तीर्थ यथोक्त फल देनेवाला है।<sup>१</sup> क्रियाएँ व्यर्थ होती हैं। जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थमें प्रवेश हिन्द्-जीवनमें नारी-मर्यादाको सदैव-सर्वत्र सुरक्षित रखनेका विशेष ध्यान रखा जाता है। धर्मशास्त्रका स्पष्ट करता है, उसे तीर्थयात्रासे कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती।<sup>२</sup> आदेश है—'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। जो यथोक्त विधिसे तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण रक्षन्ति स्थिविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥' बाल्यावस्थामें द्वन्द्वोंको सहन करनेवाले वे धीर पुरुष स्वर्गमें जाते हैं।<sup>३</sup> पिता, युवावस्थामें पित और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं, त्यौहारविज्ञान स्त्रीको कभी इनसे पृथक् स्वतन्त्र रहनेका विधान नहीं है। जिस तिथि या वार (दिन)-में कोई विशेष लाभप्रद धर्मशास्त्रद्वारा यह कल्याणकारी आदेश नारीस्वातन्त्र्यताका कार्य सम्पन्न होता है अथवा किन्हीं विशेष प्रेरणादायक अपहरण नहीं है। नारीको निर्बाधरूपसे अपना स्वधर्मपालन कर सकनेके लिये बाह्य आपत्तियोंसे उसकी रक्षाके हेतु महापुरुषोंका प्रादुर्भाव होता है, उस तिथि या वारको त्यौहार नामसे पुकारते हैं। भारतवर्षमें त्यौहारोंका अत्यधिक महत्त्व पुरुषसमाजपर यह भार दिया गया है। धर्मभीरु पुरुष इसे भार नहीं मानता, धर्मरूपमें स्वीकारकर अपना कल्याणकारी है। यहाँ दशहरा, दीपावली, होली आदि त्यौहारोंमें उच्चता-निम्नता तथा शत्रुता-उदासीनताके भावका परित्याग करके कर्तव्य समझता है। सभीसे गले लगकर मिलनेकी परम्परा बहुत ही उपयोगी नारीधर्मका निर्देश करते हुए धर्मशास्त्र कहता है-है, इससे परस्पर सौहार्द बढ़ता है, सालभरकी शत्रुतामें नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्। न्यूनता आती है और उदासीनता मिटती है। इन सब पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥ लाभोंकी दृष्टिसे त्यौहारोंको अवश्य मनाना चाहिये। अन्य अर्थात् स्त्रियोंके लिये पृथक् रूपसे कोई यज्ञ, व्रत देशोंकी अपेक्षा भारतवर्षमें त्यौहारोंकी संख्या अधिक है। या उपवास करनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल रामनवमी, गंगादशहरा, जन्माष्टमी, विजयादशमी, दीपावली, पतिपरायणताके द्वारा ही वह उत्तम गतिको प्राप्त कर गोवर्धनपूजन, अन्नकूट, भातृद्वितीया (भैयादूज), गोपाष्टमी, सकती है। शिवरात्रि आदि यहाँके मुख्य पर्व हैं। इन सभी पर्वींकी धर्मशास्त्रका यह आदेश विशेष महत्त्वपूर्ण और अपनी-अपनी विशेषता है तथा धार्मिक दृष्टिसे इनके सारगर्भित है, इसमें नारीके प्रधानधर्म पातिव्रत्यका रहस्य मनानेका विशेष पुण्य है, अत: शास्त्रीय विधि-विधानसे भरा पडा है। पातिव्रत्यपालनकी जो अक्षय महिमा शास्त्रोंमें इन पर्वोंको मनाना चाहिये। कही गयी है, वह 'रोचनार्थ फलश्रुति' नहीं, अक्षरश: सत्य नारीधर्म है। पातिव्रत्यकी पूर्ण निष्ठा प्राप्त कर लेनेपर नारीको भारतीय समाजमें नारी एक विशिष्ट गौरवपूर्ण जीवविकासकी पूर्णता अर्थात् कैवल्यपद मोक्षकी प्राप्तिके स्थानपर प्रतिष्ठित है। आर्यपुरुषने सदा ही उसे अपनी लिये पुरुषयोनिमें जन्म लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। अर्धांगिनी माना है। इतना ही नहीं व्यवहारमें पुरुषमर्यादासे स्त्रीयोनिसे ही वह मोक्ष प्राप्त कर लेती है। निष्ठाके नारीमर्यादा सदा ही उत्कृष्ट मानी गयी है। हिन्दू संस्कृति अनुसार ये पातिव्रत्य धर्मके आध्यात्मिक लाभ हैं। इस भावनासे परिपूर्ण है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र पातिव्रत्यके उचित पालनसे नारीमें स्वाभाविकरूपसे देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥' ही सिद्धियोंके रूपमें दैवीशक्तियोंका आविर्भाव होता है। १-नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्। यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्॥ २-कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्। न तेन किञ्चिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत्॥ ३-तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये। सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नरा: स्वर्गगामिन:॥

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− \* यह पातिव्रत्यधर्मपालनका आधिदैविक लाभ है। पुरुषशरीरमें भी कर्तव्य है कि वह कन्या, विवाहिता अथवा विधवा-सभी अवस्थाओंमें नारीको स्वधर्म-परिपालनकी पूरी सुविधा जो अलौकिक शक्तियाँ योग-तप आदि कठिन प्रयासपूर्ण उपायोंसे प्राप्त होती हैं, वे नारी-शरीरमें पातिव्रत्य-पालनसे प्रदान करे और उपयुक्त शिक्षासे उन्हें पूर्ण सती, पूर्ण माता, अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। उत्तम गृहिणी बनायें तथा प्रत्येक अवस्थामें उन्हें स्वधर्ममें पातिव्रत्यके आधिभौतिक लाभ—पूर्ण सुखमय गार्हस्थ्य प्रतिष्ठित रह सकनेके योग्य बनायें। इसीसे समाज एवं जीवन, उत्तम मेधावी धर्मनिष्ठ सन्तान आदि सहस्रों रूपोंमें राष्ट्रकी उन्नति सम्भव है। गोसेवा स्पष्ट अनुभव किये जाते हैं। नारीजातिके लिये सतीत्व धर्म ही उसके सर्वविध गाय हमारी माता है। इस संसारमें गाय-जैसा परम कल्याणका एकमात्र उपाय है। आधुनिक समयमें उसके उपयोगी प्राणी मनुष्यके लिये मिलना अति दुर्लभ है। परम कल्याणकारी नारीधर्मपर भी सामाजिक एवं राजकीय गायके दूधमें माँके दूधके समान सभी गुण विद्यमान हैं, आघात होने लगे हैं। सगोत्र-विवाह, असवर्ण-विवाह, जो अन्य किसी दूधमें नहीं प्राप्त होते—इस सत्यको विधवा-विवाह, तलाक आदि अवांछनीय कलुषित प्रथाके आजके भौतिक विज्ञानी भी स्वीकार करते हैं। यही कारण प्रवर्तक, वर्णसंकर सृष्टिके उत्पादक आदि कुटुम्ब एवं है कि माताके दुधके अभावमें या कमीमें गायका दुध ही समाजका विध्वंस करनेवाले, धर्ममर्यादा एवं अर्थमर्यादाके बालकोंको पिलाया जाता है। गायका दूध ही नहीं, गायका विरुद्ध राजकीय कानून बनाये जा रहे हैं और इन्हें गोबर तथा गोमूत्र भी इतना अधिक पवित्र है कि भोजन-समाजसुधार, नारीजागरण एवं समानाधिकार आदि रोचक भजनके स्थानको गोबर-गोमूत्रसे लीपकर पवित्र करनेकी नामोंसे पुकारा जा रहा है। विधि है। शारीरिक रोगनाशक, विषप्रकोपनाशक आदि अपने शास्त्रोंके अनुसार नारीके जीवनकालमें यदि गुणोंको तो आजके वैज्ञानिक भी गोबरमें मानने लग गये पतिका देहान्त हो जाय तो उसे साधु-जीवन व्यतीत करना हैं। हमारे आयुर्वेदमें सैकडों औषधियोंका शोधन गोमय चाहिये। पूर्ण सादगी और सरलतासे जीवन-निर्वाह करते और गोमूत्रसे ही किया जाता है। धर्मशास्त्रोंने तो शारीरिक हुए भगवन्नाम-जप, कीर्तन और सत्संगमें अपना अधिकाधिक शुद्धताके लिये नहीं, अपितु मानसिक शुद्धताके लिये भी समय व्यतीत करना चाहिये। एकमात्र भगवत्-शरणागतिको गायके गोबरसे युक्त पंचगव्यके पानका विधान किया है। कृषिप्रधान भारतवर्षमें गायके बछड़ोंकी बैलोंके रूपमें अवलम्बन मानकर अपने जीवनका निर्वाह करना उसके विशेष उपयोगिता है। लिये कल्याणकारी है। इस समय नारीजातिको सतर्क रहकर अपने इन सब दृष्टियोंसे माताके समान पालन करनेवाली कल्याणकारी धर्मका अवलम्बन नहीं छोड़ना चाहिये। गोमाताकी रक्षाके लिये शास्त्रकारोंने दो उपायोंका विधान नारीसमाजपर सृष्टि-उत्पादनका भार है। स्वतन्त्र भारतमें किया है—(१) एक तो गोवधको पाप घोषित किया, वीर, साहसी, मेधावी, पवित्र एवं सर्वतोभावेन उन्नतिशील जिससे गायोंका कोई विनाश न करे, (२) दूसरा गोरक्षाको सन्ततिका सुजन हो; इसीलिये प्रत्येक भारतीय नारीको महान् पुण्य बताया, जिससे उसकी रक्षामें लोगोंकी प्रवृत्ति अपने व्यावहारिक जीवनमें अन्तर्बाह्य पवित्रता बनाये हो। जैसे पुत्रका कर्तव्य है, वह अपनी माताकी सेवा करे, रखनेके लिये सतत सावधान रहना चाहिये। स्वधर्मप्रतिपादक उसी प्रकार मनुष्यमात्रका यह कर्तव्य है कि वह गोमाताकी रामायण, महाभारत, भागवत आदि धार्मिक, ऐतिहासिक सेवा और उसका पालन करे। गोसेवाका प्रत्यक्ष लाभ है, इससे भौतिक कामनाओंकी ग्रन्थोंका पाठ एवं मनन करना चाहिये। सिनेमा, सहशिक्षा (बालक-बालिकाओंका साथ-साथ पढ़ना) आदि कुप्रथाओंका पूर्ति होती है। यह अनुभव करनेकी आवश्यकता है। इसके बहिष्कार करना चाहिये। उपयुक्त समयपर सन्तानके साथ ही परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। अपने शास्त्र शास्त्रानुसार संस्कार किये जायँ, इसके लिये विशेष ध्यान तो कहते हैं-गायमें सभी देवी-देवताओंका निवास है। रखना चाहिये। साथ-ही-साथ प्रत्येक परिवार एवं समाजका केवल गायकी सेवा-पूजासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी

अङ्क ] * सफलता	के सोपान * ५३
***************	
सेवा-पूजा स्वाभाविक रूपसे सम्पन्न हो जाती है।	मृत प्राणियोंके निमित्त श्राद्ध करनेकी अनिवार्य आवश्यकता
पितृपूजा	बतायी गयी है। श्राद्धकर्मको पितृकर्म भी कहते हैं।
जीवनकी परिसमाप्ति मृत्युसे होती है, इस ध्रुव	पितृकर्मसे तात्पर्य पितृपूजासे है।
सत्यको सभीने स्वीकार किया है। यह प्रत्यक्ष भी दिखायी	पितृकार्यमें वाक्यकी शुद्धता तथा क्रियाकी शुद्धता
पड़ता है। जीवात्मा इतना सूक्ष्म होता है कि जब यह	मुख्यरूपसे आवश्यक है। श्राद्धकी क्रियाएँ अत्यन्त सूक्ष्म
शरीरसे निकलता है, उस समय कोई भी मनुष्य अपने	हैं, अत: इन्हें सम्पन्न करनेमें अत्यधिक सावधानीकी
चर्मचक्षुओंसे इसे देख नहीं सकता।	आवश्यकता है। अत: पितृकार्यको देवकार्यकी अपेक्षा
अपने शास्त्रों-पुराणोंमें मृत्युका स्वरूप, मरणासन्न	अधिक सावधानी और तत्परतासे करना चाहिये।
व्यक्तिकी अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम	धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि देवकार्यकी अपेक्षा पितृकार्यकी
समयमें किये जानेवाले कृत्यों तथा विविध प्रकारके दानों	विशेषता मानी गयी है, अतः देवकार्यसे पूर्व पितृकार्य
आदिका निरूपण हुआ है, साथ ही मृत्युके बादके	करना चाहिये। <sup>१</sup> श्राद्धसे बढ़कर और कोई कल्याणकारी
और्ध्वदैहिक संस्कार, पिण्डदान (दशगात्रविधिनरूपण),	कर्म नहीं होता, अत: प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करते रहना
एकादशाह, सपिण्डीकरण, अशौच आदि निर्णय, तर्पण,	चाहिये। <sup>२</sup> श्राद्धसे केवल अपनी तथा पितरोंकी ही संतृप्ति
श्राद्ध, कर्मविपाक, पापोंके प्रायश्चित्तोंका विधान वर्णित है।	नहीं होती (अपितु जो व्यक्ति) जिस प्रकार विधिपूर्वक
मनुष्य इस लोकसे जानेके बाद अपने पारलौकिक	अपने धनके अनुरूप श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मासे लेकर
जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्ध एवं शान्तिमय बना	घासतक समस्त प्राणियोंको सन्तुष्ट कर देता है। <sup>३</sup> यहाँतक
सकता है तथा उसकी मृत्युके बाद उस प्राणीके उद्धारके	लिखा है कि जो शान्त होकर विधिपूर्वक श्राद्ध करता है,
लिये पुत्र-पौत्रादिके क्या कर्तव्य हैं, इसकी जानकारी	वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर जन्म-मरणके बन्धनसे छूट
सबको होनी चाहिये।	जाता है—'योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद् वै शान्तमानसः।
<b>'पुं नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः।'</b> नरकसे जो	व्यपेतकल्मषो नित्यं याति नावर्तते पुनः॥' (हेमाद्रिमें
त्राण (रक्षा) करता है, वही पुत्र है। सामान्यत: जीवसे इस	कूर्मपुराणका वचन)
जीवनमें पाप और पुण्य दोनों होते हैं। पुण्यका फल है	जीवनचर्याके शास्त्रोक्त पालनीय नियम
स्वर्ग और पापका फल नरक। नरकमें पापीको घोर	१-प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। उठते ही
यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, स्वर्ग-नरक भोगनेके बाद जीव	भगवान्का स्मरण करना चाहिये।
पुनः अपने कर्मोंके अनुसार ८४ लाख योनियोंमें भटकने	२-शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्की उपासना,
लगता है, पुण्यात्मा मनुष्य-योनि अथवा देवयोनि प्राप्त	सन्ध्या, तर्पण आदि करने चाहिये।
करते हैं, पापात्मा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि तिर्यक्-	३-बलिवैश्वदेव करके समयपर सात्त्विक भोजन
योनि प्राप्त करते हैं, अतः अपने शास्त्रोंके अनुसार पुत्र-	करना चाहिये।
पौत्रादिका यह कर्तव्य होता है कि अपने माता-पिता तथा	४-प्रतिदिन प्रात:काल माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंको
पूर्वजोंके निमित्त श्रद्धापूर्वक कुछ ऐसे शास्त्रोक्त कर्म करें,	प्रणाम करना चाहिये।
जिससे उन प्राणियोंको परलोकमें अथवा अन्य योनियोंमें	५-इन्द्रियोंके वश न होकर उनको वशमें करके
भी सुखकी प्राप्ति हो सके।	उनसे यथायोग्य काम लेना चाहिये।
इसीलिये भारतीय संस्कृति तथा सनातन धर्ममें पितृ-	६–धन कमानेमें छल–कपट, चोरी, असत्य और
-	बेईमानीका त्याग कर देना चाहिये। अपनी कमाईके धनमें
२-श्राद्धात् परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्र	
३-एवं विधानत: श्राद्धं कुर्यातु स्वविभवोचितम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यः	न्तं जगत प्रीणाति मानवः॥ (ब्रह्मपराण)

५४ * आत्मनः प्रतिकृला	नि परेषा न समाचरेत्* [ जीवनचर्या-
********************************	**************************************
यथायोग्य सभीका अधिकार समझना चाहिये।	स्त्रियाँ ही जाती हों, उधर नहीं जाना चाहिये।
७–माता–पिता, भाई–भौजाई, बहन–फूआ, स्त्री–पुत्र	२३–भूलसे तुम्हारा पैर या धक्का किसीको लग जाय
आदि पारिवारिकजन सादर पालनीय हैं।	तो उससे क्षमा माँगनी चाहिये।
८–अतिथिका सच्चे मनसे सत्कार करना चाहिये।	२४-कोई आदमी रास्ता भूल जाय तो उसे ठीक
९–अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये।	रास्तेपर डाल देना चाहिये, चाहे ऐसा करनेमें स्वयंको कष्ट
पड़ोसियों तथा ग्रामवासियोंकी सदा सत्कारपूर्ण सेवा करनी	ही क्यों न हो।
चाहिये।	२५-दूसरोंको सेवा इस भावसे नहीं करनी चाहिये
१०–सभी कर्म बड़ी सुन्दरता, सफाई और नेकनीयतीसे	कि उसके बदलेमें कुछ इनाम मिलेगा, सेवा जब
करने चाहिये।	निष्कामभावसे की जायगी, तभी सेवाका सच्चा आनन्द
११–किसीका अपमान, तिरस्कार और अहित नहीं	प्राप्त हो सकेगा।
करना चाहिये।	२६-भगवत्प्रार्थनाके समय आँखें बन्द रखकर मनको
१२-अपने किसी कर्मसे समाजमें विच्छृंखलता और	स्थिर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये और उस समय
प्रमाद नहीं पैदा करना चाहिये।	भगवान्के चरणोंमें बैठा हूँ, ऐसी भावना अवश्य होनी
१३-मन, वचन और शरीरसे पवित्र, विनयशील एवं	चाहिये।
परोपकारी बनना चाहिये।	२७-किसी स्थानमें जायँ, जहाँ हमारा आदर-सत्कार
१४-सब कर्म नाटकके पात्रकी भाँति अपना नहीं	हो और हमारे साथ कोई मित्र या अतिथि हो तो हमें उसे
मानना चाहिये, परंतु करना चाहिये ठीक सावधानीके साथ।	भूल न जाना चाहिये, प्रत्युत उसे भी अपने आदर-
१५-विलासितासे बचकर रहना चाहिये। अपने लिये	सत्कारमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।
खर्च कम करना चाहिये। बचतके पैसे गरीबोंकी सेवामें	अन्तमें हम अपने पाठकोंसे यह निवेदन करते
लगाने चाहिये।	हैं—अनादि अपौरुषेय वेदोंद्वारा प्रतिपादित विधि-निषेधात्मक
१६-स्वावलम्बी बनकर रहना चाहिये, अपने जीवनका	व्यवस्था सर्वज्ञ, समदर्शी, सर्वहितैषी, मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके
भार दूसरेपर नहीं डालना चाहिये।	द्वारा धर्मशास्त्रोंमें की गयी है; जिसमें शारीरिक, मानसिक,
१७-अकर्मण्य कभी नहीं रहना चाहिये।	बौद्धिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, लौकिक और
१८-अन्यायका पैसा, दूसरेके हकका पैसा घरमें न	पारलौकिक—प्रत्येक समस्यापर गम्भीर विचार हुआ है।
आने पाये, इस बातपर पूरा ध्यान देना चाहिये।	ऋषि-महर्षियोंकी इस बहुमुखी, दूरदर्शी, वेदानुसारिणी,
१९-सब कर्मोंको भगवान्की सेवाके भावसे—	सर्विहितकारिणी विचारशैलीको हृदयंगम करते हुए अध्ययन
निष्कामभावसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।	करनेवाले पाठकोंके हृदयमें ऋषियोंके प्रति कृतज्ञताका
२०-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भोग नहीं—इस	सद्भाव उदय होना स्वाभाविक है और उनके प्रति अपने
निश्चयसे कभी डिगना नहीं चाहिये और सारे काम इसी	अज्ञानसे कल्पित कठोरता, पक्षपात आदि असद्भावका
लक्ष्यकी साधनाके लिये करने चाहिये।	अभाव भी होना ही चाहिये।
२१-किसीके घरमें जिधर स्त्रियाँ रहती हों (जनानेमें)	भगवदाज्ञाके रूपमें शास्त्रोक्त जीवनचर्याका सर्वसाधारण
नहीं जाना चाहिये। अपने घरमें भी स्त्रियोंको किसी	जन यथामित अपने जीवनमें उपयोगकर भगवत्कृपासे
प्रकारसे सूचना देकर जाना चाहिये।	लौकिक एवं पारलौकिक—दोनों रूपोंमें अधिक-से-
२२-जिस स्थानपर स्त्रियाँ नहाती हों या जिस रास्तेसे	अधिक सफलता प्राप्त करेंगे—यह हमारा विश्वास है।
	—राधेश्याम खेमका
<del></del>	<b>***</b>

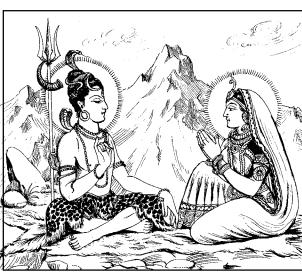
जावनचया-अङ्कः जीवनचर्या-अङ्कः जावनच्या-अङः जीवनचर्या-अङ्कः जीव जीवनचर्या-अङ्कु' 'जीवनचर्या-अङ्कु' 'जीवनच 3 वर्ग-अङ्कु''जीवनचर्या-अङ्कु''जीवनचर्या-अङ्क जीवनचर्या-अङ्क" 'जीवनचर्या-अङ्क" जीवनच वर्या-अङ्कः ' जीवनचर्या-अङ्कः ' जीवनचर्या-अङ्क जीवनचर्या-अङ्' 'जीवनचर्या अङ' जीवनचर्या-अङ' 'जीवनचर्या-अङ' 'जीवनचर्या-अङ' 'जीवनचर्या-अङ

# भगवान् श्रीउमामहेश्वरका जीवन-दर्शन

चाहिये।

मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च



नमस्कार है। कल्याणका विस्तार करनेवाले तथा सुखका विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मंगल-स्वरूप और मंगलमयताकी सीमा भगवान् शिवको

कल्याण एवं आनन्दके मूल स्रोत भगवान् शिवको

नमस्कार है।

साम्बसदाशिव भगवान् शिव और उनका नाम

समस्त मंगलोंका मूल एवं समस्त अमंगलोंका उन्मूलक है। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य करनेवाले, श्मशानवासी कहे जानेपर भी त्रैलोक्याधिपति, अनन्त राशियोंके अधिपति होते हुए भी

सदा कान्तासे समन्वित होते हुए भी मदनजित्, अज होते हुए भी अनेक रूपोंमें आविर्भूत, गुणहीन होते हुए

भस्मविभूषण, योगिराजाधिराज होते हुए भी अर्धनारीश्वर,

भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं। जहाँ वे द्वन्द्वोंकी प्रतिमूर्ति हैं, वहीं वे द्वन्द्वातीत हैं। एक ओर वे सभी

भोगमें योगकी प्रतिष्ठा देखनी हो या योगमें भोगका समन्वय देखना हो, अद्वैतमें द्वैत देखना हो या द्वैतमें अद्वैत. आसक्तिमें अनासक्ति देखनी हो या अनासक्तिमें

अतीत—गुणातीत हैं। सभी रूप उन्हींके हैं, किंतु वे

अरूप हैं, सभी नाम उन्हींके हैं, किंतु वे अनाम हैं।

आसक्ति, भेदमें अभेद देखना हो या अभेदमें भेद, मूर्तमें अमूर्त देखना हो या अमूर्तमें मूर्त, सर्वश्रेष्ठ गृहस्थकी चर्या देखनी हो या मुमुक्षुकी भैक्ष्यचर्या —सबका अद्भुत और विलक्षण समन्वय भगवान् उमामहेश्वरकी जीवनचर्यामें

विद्यमान है। वे सभीके आदर्श हैं। उनके उदात्त चरित्र लोकके लिये महान् कल्याणकारी हैं। यदि हमें अपनी जीवनचर्या और दैनिक चर्या मंगलमय बनानी हो तो

भगवान् भूतभावनके जीवनदर्शनका अवलोकन करना चाहिये। उन्हें अपना आदर्श मानकर अपनी रहनी-करनी बनानी चाहिये तथा उनके उपदेशोंको आचरणमें लाना

भगवान् शिव और जगज्जननी माता पार्वतीका सर्वथा अभेद है, किंतु लीलाका विस्तार करनेके लिये एवं कल्याणसम्पदाका वितरण करनेके लिये तथा अपने

आचरणोंसे लोकशिक्षा देनेके लिये वे शिव और शक्तिरूपमें

प्रकट हुए हैं। प्रत्येक गृहस्थको अपने दाम्पत्य-जीवनकी सफलताके लिये भगवान् शिव एवं माता पार्वतीके दुष्टान्तको अपने सामने रखना चाहिये। सीतामाताने तो

भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके लिये गौरीपूजन किया था और अखण्ड सौभाग्यका वर प्राप्त किया था। भगवान् शिवकी अन्तरंगा शक्ति हिमालयपुत्री पार्वतीने जब भगवान् शिवको

पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये अखण्ड तप प्रारम्भ किया तो भगवान् शिव लीलासे ब्राह्मणबटुका रूप बनाकर उपस्थित हुए और बोले-भला, देखो तो सही शिवका रूप

कितना कुरूप है, आँखें बन्दर-जैसी हैं, शरीरमें चिताभस्म कल्याणगुणगणोंके आकर हैं तो दूसरी ओर सभी गुणोंसे और साँप लपेटे हुए हैं; उनके कुल, खानदान, माता-पिता,

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− पितामह, जाति, गोत्र आदिका कोई पता नहीं है; खेती, भगवान् शिवकी नीतिमत्ता और भगवत्ताको झलकाती है-व्यापार, अन्न, धन, गृहसे भी वे शून्य हैं। एक दिनके लिये मूसेपर साँप राखै, साँपपर मोर राखै, भी उनके पास भोजन नहीं है, तुमने ऐसे व्यक्तिसे विवाह बैलपर सिंह राखै, वाकै कहा भीति है। करनेके लिये तप आरम्भ किया है तो भला तुमसे बढ़कर पूतनिकों भूत राखै, भूतकों बिभूति राखै, संसारमें और कौन मूर्ख हो सकता है? छमुखकों गजमुख यहै बड़ी नीति है॥ वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता कामपर बाम राखै, बिषकों पियूष राखै, दिगम्बरत्वेन निवेदितं आगपर पानी राखै सोई जग जीति है। वसु। वरेषु यद् बालमृगाक्षि मृग्यते 'देवीदास' देखौ ज्ञानी संकरकी सावधानी, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥ सब बिधि लायक पै राखै राजनीति है॥ इतना ही नहीं, एक भक्तने भगवान्के विवाहके (कुमारसम्भव ५।७२) इसपर पार्वतीजी उत्तर देती हैं-वे स्वयं अकिंचन समयका बड़ा ही मनोहर, भक्तिभावपूर्ण चित्रण किया है। हैं, किंतु ब्रह्माण्डकी सारी सम्पत्तियाँ उन्हींसे उत्पन्न हुई विवाहके समय भगवान् शिवसे जो प्रश्न किये गये और हैं, वे श्मशानमें रहते हैं, किंतु तीनों लोकोंके स्वामी हैं, उन्होंने जो उत्तर दिये, वे इस प्रकार हैं-वे भयंकर रूपवाले हैं तो भी शिव अर्थात् कल्याणकारी प्रश्न—आपके पिता कौन हैं? सौम्यमूर्ति कहे जाते हैं। शिवके वास्तविक स्वरूपको-उत्तर—ब्रह्मा। तत्त्वको समझनेवाला कोई है ही नहीं-प्रश्न—बाबा कौन हैं? अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां उत्तर—विष्णु। प्रश्न-परबाबा कौन हैं? त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः। उत्तर—सो तो सबके हम ही हैं। स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते बात भी ठीक ही है। सभीके परम पिता तो भगवान् न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥ भगवान् शिवका परिवार भी समस्त विरोधाभासों शिव ही हैं। उनकी महिमा अनन्त है। और द्वन्द्वोंका प्रतिमान है, किंतु वैसी सहजता, ऋजुता, द्ध-भातके दाता—सत्ययुगकी बात है व्याघ्रपाद परस्पर प्रेम, सद्भाव एवं सौजन्य भी अन्यत्र दुर्लभ ही नामक एक यशस्वी ऋषि हुए हैं, उनके दो पुत्र थे-बड़े थे उपमन्यु और छोटे थे धौम्य। एक बारकी बात है। पिता यदि चतुर्मुख हैं तो आप स्वयं पंचमुख हो गये और पुत्रको षण्मुख बना दिया। दूसरा पुत्र बनाया तो है, बालक उपमन्यु खेलते-खेलते ऋषियोंके आश्रमपर उसका सिर हाथीका बना दिया। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी जा पहुँचा, वहाँ एक दुधारू गाय दुही जा रही थी, दुध स्वामिनी साक्षात् अन्नपूर्णाजीको अपनी अर्धांगिनी बनाया देखकर उसके मनमें उसका स्वाद लेनेकी इच्छा जगी। तो आप स्वयं भस्मांगधारी श्मशानवासी हो गये। सवारीके घरमें आकर उसने अपनी मातासे कहा—माँ! मुझे भी लिये बूढ़ा बैल रख लिया तो शृंगारके लिये साँप, बिच्छू। खानेके लिये दूध-भात दो। घरमें दूधका अभाव था, पुत्र गणेशका वाहन मूषक बनाया तो कार्तिकेयजीको मोर इसलिये माँको बड़ा दु:ख हुआ, वह रोने लगी, फिर दे दिया और अपनी अर्धांगिनीको सिंह पकडा दिया। वह पानीमें आटा घोलकर ले आयी और दूध कहकर ऐसेमें दिगम्बर महादेव कैसे गृहस्थी सँभालें? किसी उसने दोनों भाइयोंको पीनेके लिये दिया, लेकिन पहले कविका कहना है कि यदि अन्नपूर्णा भवानी घरमें न कभी बालक उपमन्युने पिताजीके साथ किसी यज्ञमें होतीं तो बाबाकी गृहस्थी कैसे चलती— जाकर दूध पिया था, इसलिये उसको दूधका स्वाद मालूम था। उसने जैसे ही माँका लाया हुआ आटेका स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ। दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥ घोल पिया तो मातासे कहा-माता! यह तो दूध नहीं है। एक भक्तने तो भगवान् शिव कैसे अपनी गृहस्थी चलाते तब माता और भी दु:खी हो गयीं। वे उसका मस्तक हैं, इसपर रीझकर बड़ी ही विनोदपूर्ण बात लिखी है, जो सूँघती हुई बोलीं—बेटा! जो सदा वनमें रहकर कन्द,

अङ्क ] * भगवान् श्रीउमामहेऽ	ग्वरका जीवन-दर्शन∗ ५७
<b>%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%%</b>	*********************************
मूल और फल खाकर मुनिवृत्तिसे जीवन निर्वाहकर	हुआ। उन्होंने अपनी सभी पुत्रियोंको उसमें आमन्त्रित
भगवान्का भजन करते हैं, उन्हें दूध-भात कहाँसे मिल	किया, किंतु शिवजीसे द्वेष रखनेके कारण न तो पुत्री
सकता है? हमलोगोंका निर्वाह करनेवाले तो भगवान्	सतीको बुलाया और न शिवको ही बुलाया।
शंकर ही हैं, वे ही हमारे परम आश्रय हैं—	सतीको पिताके यज्ञमें जानेकी लालसा जगी, वे भगवान्से
तपसा जप्यनित्यानां शिवो नः परमा गतिः॥	निवेदन करने लगीं—प्रभो! पति, गुरु और माता-
(महा०, अनु० १४।१२६)	पिता आदि सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाया जा
इसलिये बेटा! सर्वतोभावसे उन्हीं भगवान् महादेवकी	सकता है, इसपर भगवान् शिवने लोकज्ञानके लिये बहुत
शरण ग्रहण करो, उनकी कृपासे ही तुम इच्छानुसार फल	ही उपयोगी और जीवनमें काममें लानेयोग्य बात बताते
पा सकोगे।	हुए कहा—हे देवि! बन्धुजनोंके यहाँ निमन्त्रणके बिना
माताकी यह बात सुनकर बालक उपमन्युने माताके	भी उत्सवमें जाया जा सकता है, सो तो तुम्हारी बात
चरणोंमें प्रणामकर पूछा—माँ! ये महादेव कौन हैं? और	ठीक है, किंतु ऐसा तभी करना चाहिये जब उन
कैसे प्रसन्न होते हैं, कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं तथा	बन्धुओंकी दृष्टि देहाभिमानसे उत्पन्न हुए मद और
कैसे उनका दर्शन किया जा सकता है? यह सुनकर	क्रोधके कारण द्वेष-दोषसे युक्त न हो। विद्या, तप, धन,
माताकी आँखोंमें आँसू आ गये, वह बोली—बेटा!	सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल—ये सत्पुरुषोंके
महादेव ही शिव हैं, वे बड़े ही दुर्विज्ञेय हैं, उनके	तो गुण हैं, किंतु नीच पुरुषोंमें ये ही अवगुण हो
तत्त्वको जानना बड़ा कठिन है तथापि वे बड़े ही उदार	जाते हैं—
हैं, बड़े ही दयालु हैं, थोड़ेमें ही प्रसन्न हो जाते हैं। वे	विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः
प्राणियोंके हृदयमें प्राण, मन एवं जीवात्मारूपसे विराजमान	सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः॥
रहते हैं। वे ही योगस्वरूप, योगी, ध्यान तथा परमात्मा	(श्रीमद्भा० ४।३।१६)
हैं। वे महेश्वर भक्तिभावसे ही गृहीत होते हैं—'भावग्राह्यो	संसारकी रक्षाके लिये नीलकण्ठने विषपान
महेश्वरः।' (महा०अनु० १४।१६४) शिव-शिव जपनेसे	कर लिया—समुद्रमन्थनके समयकी बात है, समुद्रमन्थनसे
वे दर्शन दे देते हैं। माताकी बातोंका बालकपर गहरा	कालकूट विष निकला, जिसकी ज्वालाओंसे तीनों लोक
प्रभाव पड़ा, अब तो वह शिव-शिवकी रट लगाने	जलने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। किसमें ऐसा
लगा। महेश्वरने उसके इस कठिन तपसे प्रसन्न होकर	सामर्थ्य कि विषकी ज्वाला शान्त कर सके। ऐसेमें सभी
दर्शन दिया और उसे अनेक वरदान दिये और यह भी	भगवान् शंकरकी शरणमें गये, उस समय भगवान् शंकरने
कहा—वत्स! तुम एक कल्पतक अपने भाई-बन्धुओंके	पार्वतीजीसे जो बात कही, वह बहुत ही शिक्षाप्रद तथा
साथ अमृतसहित दूध–भातका भोजन पाते रहो। तत्पश्चात्	जीवनमें आचरणमें लानेयोग्य है, भगवान् बोले—देवि!
मुझे प्राप्त हो जाओगे—	देखो तो सही, कालकूटविषके प्रभावसे ये सारे जीव
क्षीरोदनं च भुङ्क्ष्व त्वममृतेन समन्वितम्॥	कैसे दु:खी हो रहे हैं, इस समय मेरा कर्तव्य है कि मैं
बन्धुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि।	इनका दु:ख दूर करूँ; क्योंकि जो समर्थ हैं, साधनसम्पन्न
(महा०, अनु० १४।३५९-६०)	हैं, उन्हें अपने सामर्थ्यसे दूसरोंका दु:ख अवश्य दूर
मुझमें तुम्हारी अत्यन्त भक्ति होगी, मैं तुम्हारे साथ	करना चाहिये, इसीसे उनके जीवनकी सफलता है,
सदा अदृश्यरूपसे निवास करूँगा।	उनके शक्तिसामर्थ्यका साफल्य है—
उक्त कथामें निरूपित भगवान् उमामहेश्वरका	एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्।
वात्सल्यभाव बड़ा ही उदात्त है।	(श्रीमद्भा० ८।७।३८)
<b>लोकव्यवहारके ज्ञानकी बातें</b> —बात उस समयकी	सज्जनोंका यह स्वभाव ही होता है कि अपने प्राणोंका
है, जब प्रजापति दक्षके यहाँ एक यज्ञका आरम्भ	उत्सर्ग करके भी दीन-दु:खियोंकी रक्षा करते हैं। ऐसा

कहकर भगवान शिव वह हलाहल पी गये और नीलकण्ठ लिये विस्तारसे बातें बतलायीं, उनका कुछ अंश बहुत उपयोगी होनेसे यहाँ प्रस्तुत है-गृहस्थका धर्म तथा गृहस्थाश्रमकी श्रेष्ठता-

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

मनुष्योंके लिये सीखनेके लिये महान् शिक्षा है। दानी बनो, उदार बनो—देवोंमें बहुत-से दानी हैं,

कहलाये। यह संसारपर उनका महान् अनुग्रह तथा

किंतु भगवान् शिवकी तो महिमा ही अपार है, गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं-भगवान् शंकरके समान दानी और उदार कोई नहीं है, उन्हें तो बस देना ही भाता है और

याचक उन्हें बहुत प्रिय हैं, वे दीनदयाल कहलाते हैं— दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।

दीनदयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥

अत: उन्हें छोड़कर किससे याचना की जाय-'को जाँचिये संभू तजि आन।'

भगवान् अपने इस शीलस्वभावसे संसारके लोगोंको

यह शिक्षा देते हैं कि जिसके पास थोडा भी साधन है,

धन है, उससे वह दीन-दु:खियों, अनाथोंकी सेवा करे; परिग्रह, संचय, संग्रहसे सदा दूर रहे। धन-सम्पत्तिसे

अभिमान होता है, अतः उस धनको सबमें बाँट दे। दुःखमें

लोगोंकी सहायता करे और अपनी जीवनचर्याको उदार

बनानेकी चेष्टा करे। जीवनचर्या-सम्बन्धी उपदेश

पालनीय आचारके सम्बन्धमें निवेदनपूर्वक जिज्ञासा की।

एक बार माता पार्वतीने भगवान् शिवसे जीवनमें

(विनय-पत्रिका)

आत्मभावसे देखता है, सबसे सरलताका व्यवहार करता है, क्षमाशील है, जितेन्द्रिय है, धर्मनिष्ठ है, सन्मार्गपर

गृहस्थका परम धर्म है किसी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना। गृहस्थमें पति-पत्नीका स्वभाव एकसमान होना चाहिये। गृहस्थको चाहिये कि वह नित्य पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। जो लोग अपने माता-पिताकी सेवा करते हैं, जो नारी पतिकी सेवा करती है— उसपर सब देवता, ऋषि-महर्षि प्रसन्न रहते हैं। जो शील और सदाचारसे विनीत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर रखा है, जो सरलतापूर्वक व्यवहार करता है और समस्त प्राणियोंका हितैषी है, जिसको अतिथि प्रिय हैं, जो क्षमाशील है, जिसने धर्मपूर्वक धनका उपार्जन किया है—ऐसे गृहस्थके लिये अन्य

आश्रमोंकी क्या आवश्यकता है—'गृहस्थाश्रमपदस्थस्य

धर्मका फल किसे प्राप्त होता है?—भगवान्

किमन्यैः कृत्यमाश्रमैः॥' (महा०, अनु० अ० १४१)

महादेव कहते हैं कि जो हिंसासे सर्वथा विरत रहकर

सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देता है, समस्त भूतोंको

चलनेवाला है, सच्चरित्र है, उसे धर्मका फल प्राप्त होता है—'स वै धर्मेण युज्यते' (महा०, अनु० १४२।२७)। उत्तम लोकोंमें कौन जाते हैं — जीवनचर्यामें शील,

**ाजीवनचर्या**−

सदाचार, सत्य, शौच तथा तप आदिकी महिमाके विषयमें शंकरजी कहते हैं—जो दूसरोंके धनपर ममता नहीं रखते, परायी स्त्रीसे सदा दूर रहते और धर्ममार्गसे प्राप्त

अन्नका ही भोजन करते हैं। जो परिहासमें भी झुठ नहीं बोलते, स्वेच्छाचारसे दूर रहते हैं, चुगली नहीं करते, सौम्य वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं—'ते नरा:

स्वर्गगामिनः' (महा०, अनु० १४४।२५)। जो सबके प्रति मैत्रीभाव रखते हैं, शत्रु तथा मित्र—दोनोंको समानभावसे अपनाते हैं, जो सबके प्रति दयाभाव रखते हैं, वे

स्वर्गगामी होते हैं। दैनन्दिनजीवनमें धर्मपालनकी महत्ता—अनीति,

अधर्म तथा अनाचारसे दूर रहते हुए सदाचार एवं इसपर उन्होंने देवी पार्वतीको जीवनको सफल बनानेके

अङ्क ] * भगवान् श्रीउमामहे	श्वरका जीवन-दर्शन∗ ५९
***********************************	**************************************
धर्मपालनको ही दैनन्दिनचर्या तथा जीवनचर्याका मुख्य	अनुभव करता हूँ—'रमेऽहं सह गोभिश्च' (महा॰, अनु॰
उद्देश्य बताते हुए भगवान् शंकर कहते हैं कि हे देवि! धर्म	१३३।७)। इसीलिये वृषभ मेरी ध्वजामें विराजमान है। अत:
ही, यदि उसका हनन किया जाय तो मारता है और धर्म	गौओंकी सदा पूजा करनी चाहिये, प्रतिदिन उन्हें गोग्रास देना
ही सुरक्षित होनेपर रक्षा करता है, अत: प्रत्येक मनुष्यको	चाहिये, इससे गोसेवकका जीवन सफल हो जाता है। गौएँ
विशेषकर राजाको धर्मका हनन नहीं करना चाहिये—	सम्पूर्ण जगत्की माताएँ हैं—गावो लोकस्य मातरः (महा०,
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।	अनु० अ० १४५)।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यः पार्थिवेण विशेषतः॥	भगवान् शंकर माता पार्वतीजीसे कहते हैं—हे देवि! गौओंके
(महा०, अनु० अ० १४५)	मल–मूत्रसे कभी उद्विग्न नहीं होना चाहिये और उनका मांस
<b>प्रारब्ध सोता नहीं, सदा जागता रहता है—</b> भगवान्	कभी नहीं खाना चाहिये। सदा गौओंका भक्त होना चाहिये—
शंकर सभीको सावधान करते हुए कहते हैं कि जीवनमें सदा	गवां मूत्रपुरीषाणि नोद्विजेत कदाचन।
शुभ कर्म ही करना चाहिये। शुभ कर्मींसे शुभ प्रारब्ध बनता	न चासां मांसमश्नीयाद् गोषु भक्तः सदा भवेत्॥
है और शुभ प्रारब्धसे शुभ कर्म बनते हैं, शुभ कर्मोंका शुभ	(महा०, अनु० अ० १४५)
फल प्राप्त होता है। मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही प्रारब्ध	<b>बाह्य तथा आभ्यन्तर शौच</b> —दैनिक चर्यामें शौचकी
बनता है। प्रारब्ध अत्यन्त बलवान् होता है, उसीके अनुसार	महत्ता बताते हुए भगवान् कहते हैं—हे उमे! शौच दो
जीव भोग करता है, प्राणी भले ही प्रमादमें पड़कर सो जाय,	प्रकारका होता है—एक बाह्य तथा दूसरा आभ्यन्तर।
परंतु उसका प्रारब्ध या दैव प्रमादशून्य—सावधान होकर सदा	विशुद्ध आहार ग्रहण करना, शरीरको धो-पोंछकर स्वच्छ
जागता रहता है। उसका न कोई प्रिय है, न द्वेषपात्र है और	रखना तथा आचमन आदिके द्वारा शरीरको शुद्ध बनाये
न कोई मध्यस्थ ही है—	रखना, यह बाह्य शौच है। अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु विधिर्जागर्ति जन्तुषु।	तथा अहंकार)-की निर्मलता आन्तरिक शौच है। अर्थात्
न हि तस्य प्रियः कश्चिन्नद्वेष्यो न च मध्यमः॥	काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि आन्तरिक दोषोंसे बचना
(महा०, अनु० अ० १४५)	आभ्यन्तरिक शौच कहलाता है।
दिनचर्या कैसी हो?—उत्तम एवं आदर्श दिनचर्याके	तीर्थसेवनकी महिमा—जीवनचर्यामें तीर्थसेवनकी
विषयमें शंकरजी कहते हैं कि मनुष्यको प्रात:काल ही	महिमा बताते हुए भगवान् कहते हैं—जो बड़ी-बड़ी नदियाँ
उठकर शौच-स्नानसे निवृत्त हो जाना चाहिये। देवताओं	हैं, उनका नाम तीर्थ है, उनमें भी जिनका प्रवाह पूरबकी ओर
और गुरुजनोंकी नित्य सेवा करनी चाहिये, बड़े-बूढ़ोंके	है, वे श्रेष्ठ हैं, जहाँ दो निदयाँ मिलती हैं, वह स्थान उत्तम
आनेपर उठकर उनका सम्मान करना चाहिये। उनके	तीर्थ है। नदियोंका जहाँ समुद्रसे संगम हुआ है, वह स्थान तीर्थ
उपदेशोंको आचरणमें लाना चाहिये। अपनी वृत्ति न्यायमार्गसे	है। महर्षियोंद्वारा जो जलस्रोत और पर्वत सेवित हैं, वहाँ
चलानी चाहिये। भृत्यवर्गका पालन-पोषण करना चाहिये।	मुनियोंका प्रभाव रहता है, अत: वे स्थान तीर्थ हैं। तीर्थसेवनसे
अपनी स्त्रीके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये तथा अपने	तपस्या अर्जित होती है, पापका नाश होता है और बाहर-
कुलधर्म एवं शिष्टाचार एवं सदाचारका सदा पालन करना	भीतरकी पवित्रता प्राप्त होती है—'तपोऽर्थं पापनाशार्थं
चाहिये <b>'एवमादि शुभं सर्वं तस्य वृत्तमिति स्थितम्।</b> '	<b>शौचार्थं तीर्थगाहनम्'</b> (महा०, अनु० अ० १४५)।
(महा॰, अनु॰ अ॰ १४५)	<b>श्राद्ध-पितृकर्म अवश्यकरणीय है —</b> भगवान् शंकर
जीवनमें पालनीय नियम—महादेव शंकर जीवनमें	कहते हैं—हे देवि! जैसे भूमिपर रहनेवाले सभी प्राणी
क्या नित्य करणीय है, इसके विषयमें सर्वप्रथम गोसेवा	वर्षाकी बाट जोहते रहते हैं, उसी प्रकार पितृलोकमें
करनेका परामर्श देते हैं। उनका कहना है कि गौएँ परम	रहनेवाले पितर श्राद्धकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। हे शुभे!
सौभाग्यशालिनी और अत्यन्त पवित्र हैं। ये तीनों लोकोंको	पितर सभी लोकोंमें पूजनीय होते हैं, वे देवताओंके भी
धारण करनेवाली हैं, महान् प्रभाववाली ये उपासित होनेपर	देवता हैं, उनका स्वरूप शुद्ध, निर्मल एवं पवित्र है, वे
वर देनेवाली हैं। मैं सदा गौओंके साथ रहनेमें आनन्दका	दक्षिण दिशामें निवास करते हैं—

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− वहाँ वह दोषबुद्धि करे और उस वस्तुको अपने लिये लोकेषु पितरः पूज्या देवतानां च देवताः। अनिष्टकर समझे, ताकि उसकी ओरसे शीघ्र ही वैराग्य हो शुचयो निर्मलाः पुण्या दक्षिणां दिशमाश्रिताः॥ जाय। धनके उपार्जनमें दु:ख होता है, उपार्जित हुए धनकी (महा०, अनु० अ० १४५) रक्षामें दु:ख होता है, धनके नाश और व्ययमें भी दु:ख होता श्राद्धकर्ममें माघ और भाद्रपद मास प्रशंसित हैं, पक्षोंमें कृष्णपक्ष प्रशस्त है। अमावास्या, त्रयोदशी, नवमी और प्रतिपदा— है, इस प्रकार दु:खके भाजन बने हुए धनको धिक्कार है— इन तिथियोंमें श्राद्ध करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं। श्राद्धमें तीन अर्थानामार्जने दुःखमार्जितानां तु रक्षणे। वस्तुएँ प्रशस्त हैं—दौहित्र (लड़कीका पुत्र), कुतपकाल (दिनके नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम्॥ पन्द्रह भागमें आठवाँ भाग) तथा तिल—'त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि (महा०, अनु० अ० १४५) दौहित्रः कुतपस्तिलाः '(महा०, अनु० अ० १४५)। श्राद्धदेशमें हे देवि! तृष्णाके समान कोई दु:ख नहीं है, त्यागके तिल बिखेरनेसे वह शुद्ध तथा पवित्र हो जाता है। समान कोई सुख नहीं है, समस्त कामनाओंका परित्याग करके मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है-दो प्रकारका जीवन—भगवान् शंकर कहते हैं—हे देवि! संसारमें प्राणियोंका जीवन और उनकी जीवनचर्या दो नास्ति तृष्णासमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्। प्रकारकी होती है। एक है—दैवभावपर आश्रित और दूसरी सर्वान् कामान् परित्यज्य ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ है—आसुरभावपर आश्रित। जो मनुष्य अपने जीवनमें मन, (महा०, अनु० अ० १४५) वाणी और क्रियाद्वारा सदा ही सबके प्रतिकृल आचरण करते स्त्रीधर्म—इस प्रकार अन्य भी बहुत-सी कल्याणकारक हैं, वे आसुरीभावके मनुष्य हैं। अत: उनकी दिनचर्या तथा बातें बतानेपर महादेवजीने देवी पार्वतीसे कहा-हे देवि! जीवनचर्या भी आसुरीभावकी—निन्दित होती है। वे नरकगामी तुम धर्मका आचरण करनेवाली हो, तुममें ममता-अहंताका

होते हैं- 'तादुशानासुरान् विद्धि मर्त्यास्ते नरकालयाः' सर्वथा अभाव है और तुम मेरे ही शील-स्वभाववाली हो, तुमने बहुत-सी पतिव्रताओंका संग किया है। अत: मैं तुमसे (महा०, अनु० अ० १४५)। इसके विपरीत जो सदा मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा सबके अनुकूल आचरण करते हैं, ऐसे स्त्रीधर्मके विषयमें जानना चाहता हूँ; क्योंकि स्त्रियोंके मनकी मनुष्योंको अमर (देवता) ही समझना चाहिये। ये उत्तम बातें स्त्रियाँ ही अच्छी तरह जानती हैं, इसपर देवी पार्वतीने लोकोंको प्राप्त करते हैं—'तादृशानमरान् विद्धि ते नराः स्त्रीरूपधारी गंगादि पवित्र नदियोंको साक्षी बनाकर कहा—

स्वर्गगामिनः' (महा०, अनु० अ० १४५)। हे प्रभो! मेरे विचारसे जिस स्त्रीके स्वभाव, बातचीत और जीवनचर्याका तात्त्विक उपदेश—देवी पार्वतीने आचरण उत्तम हों, जिसको देखनेसे पतिको सुख मिलता हो, जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन न लगाती कहा—हे महेश्वर! आपने जीवनचर्यासम्बन्धी बहुत-सी बातें मुझे बतलायीं, जो मनुष्योंके लिये सर्वदा आचरणीय तथा हो, वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो स्त्री जीवनको सफल बनानेवाली हैं, अब आप कृपा करके सभी अपने हृदयको शुद्ध रखती हो, गृहकार्य करनेमें कुशल हो, उपदेशोंके साररूपमें उस अविनाशी सिद्धान्तको बतलायें, जो प्रतिदिन प्रात:काल उठती हो, घरको स्वच्छ रखती हो, जिसका अनुपालन परम कल्याणकारी है। इसपर महादेवजी सास-ससुरको सम्मान देती हो, दीनोंका पालन करती हो बोले-हे देवि! जीवनमें शोकके सहस्रों और भयके सैकड़ों तथा पतिके हितसाधनमें लगी हो, वह पातिव्रतधर्मका पालन स्थान हैं, वे मूर्ख मनुष्यपर ही प्रभाव डालते हैं, विद्वान्पर नहीं— करनेवाली होती है। पति ही नारियोंका देवता, पति ही बन्धु-शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। बान्धव और पित ही उनकी गित है। नारीके लिये पितके

> पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः। पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा गतिः॥

समान न दूसरा कोई सहारा है और न कोई दूसरा देवता—

(महा०, अनु० अ० १४५) कल्याणकामी मनुष्यको चाहिये कि दैनन्दिन चर्यामें (महा०, अनु० अ० १४५।५५)

जहाँ आसक्ति हो रही हो, ममता हो रही हो, राग हो रहा हो,

दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

\* गृहस्थजनों, विरक्तों तथा साधुओंकी जीवनचर्या कैसी हो ?\* गृहस्थजनों, विरक्तों तथा साधुओंकी जीवनचर्या कैसी हो ? [ संत श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सदुपदेश ] परम विरक्त तथा ब्रह्मनिष्ठ सन्त पूज्य उड़ियाबाबाजी महापाप है। महाराज अपने सत्संगमें, उपदेशोंमें सन्त-महात्माओं तथा भगवच्चिन्तनमें समयका सदुपयोग करना चाहिये। गृहस्थजनोंको अपना एक-एक क्षण भगवद्भिक्त तथा सर्वथा नियम-निष्ठामें तत्पर रहना चाहिये। भगवानुको सत्कर्मोंमें लगानेकी प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते सर्वव्यापक समझकर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, शत्रुता और

कुत्सित भावका त्याग करना चाहिये। 'भगवान् सर्वदा

थे कि मानव-योनि अनेक जन्मोंके संचित पुण्योंसे प्राप्त होती है। अत: मानवको एक-एक पल, एक-एक क्षण

शास्त्रानुसार व्यतीत करके अपने जीवनको सार्थक करना

चाहिये। देशके शीर्षस्थ सन्त-महात्मा समय-समयपर पूज्य

बाबाका सत्संग करने, उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने कर्णवास (बुलन्दशहर)-में श्रीगंगाजीके किनारे स्थित

उनकी कुटियामें पधारा करते थे। वे सन्तों अथवा गृहस्थजनोंके बीच प्रवचन करते थे और उनकी जिज्ञासाओंका समाधान करते थे।

पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी महाराज प्राय: कहा करते थे कि जो अभ्यासमय जीवन बिताता है, जिसकी जीवनचर्या शास्त्रोक्त है, उसका लोक-परलोकमें कल्याण

होता है। एक दिन उन्होंने प्रवचनमें कहा-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥ (गीता ८।८)

जिसने अभ्यासमय जीवन बिताया, उसीने परम दिव्य पुरुषकी प्राप्ति की है। अतः सन्त-महात्मा हो या गृहस्थ सभीको आदर्श

जीवन-यापन करनेका अभ्यास करना चाहिये। श्रद्धा, भक्ति, नम्रता, उत्साह, धैर्य, मिताहार, आचार,

शरीर, वस्त्र और गृह आदिकी पवित्रता, इन्द्रियसंयम और सदाचरणका सेवन तथा कुसंगका सर्वथा परित्याग—ये सब सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेवाले हैं। मानव-जीवन, जीवनका

तथा निन्दित कर्मोंसे बचना चाहिये। सरलता तथा श्रद्धा भक्तिमार्गका सोपान है तथा सन्देह और कपट अवनितका चिह्न है। प्रतिदिन सबेरे विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये-

'हे परमिपता! मेरी वाणी आपके गुण-कीर्तनमें, कर्ण महिमा-श्रवणमें, हाथ युगल चरण-सेवामें, चित्त चरण-चिन्तनमें, मस्तक प्रणाममें और दृष्टि आपके स्वरूपभूत साधुओंके दर्शनोंमें नियुक्त रहे।'

मेरे समीप हैं' ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर अनावश्यक

भगवान्का नित्य स्मरण ही ज्ञान, भक्ति और वैराग्यका उपाय है। मौन, चेष्टाहीनता और प्राणायामसे शरीर, मन और वाणी वशीभूत होते हैं। गार्हस्थ्य सम्बन्धी कार्य यथासमय

नियमानुकूल सम्पादन करनेसे भजनमें सहायता मिलती है। जबतक क्रोध, द्वेष, कपट, स्वार्थपरता एवं अभिमान हमारे हृदयमें विद्यमान रहेगा, तबतक कठोर तप करनेपर भी भक्तिलाभ करना दुष्कर है।

सद्भाषण, सद्विचार, सद्भावना और न्यायनिष्ठाका परित्यागकर बाह्य आडम्बरसे कोई भी धर्मात्मा नहीं बन

सकता। रसास्वादके लोभसे भोजन करनेसे तमोगुण बढता है। रसनेन्द्रिय वशीभूत न होनेसे अन्य इन्द्रियाँ वशीभूत नहीं

होतीं । सन्ध्या समय भोजन नहीं करना चाहिये। भोजनके समय बोलना नहीं चाहिये। भोजनसे पहले हाथ-पैर धोना

प्रत्येक पल भगवान्की सम्पत्ति है, ऐसा दृढ़ विश्वास चाहिये। पवित्र आसनपर बैठकर उत्तर अथवा पूर्वमुख रखना चाहिये। भगवान्की सम्पत्तिका अपव्यय करना होकर भगवान्को भोग लगाकर भोजन करना चाहिये।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− भोजनमें कोई भी तामसिक वस्तु जैसे—प्याज, लहसुन नशा—पतनका कारण आदि नहीं होनी चाहिये। शराब, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, भाँग आदि सत्य, दया, संयम, शिष्टाचार, सदाचार-ये गुण नशीली वस्तुएँ भजन तथा सदाचारमें सबसे बड़ी बाधाएँ भगवान्की भक्तिमें सहायक होते हैं। हास-परिहास करना, हैं। गृहस्थ ही नहीं साधुओंको भी नशेकी लत पड़ जाती मनोरंजनके नामपर तमाशा तथा सिनेमा देखना, अश्लील है। कुछ साधु तम्बाकू आदि पीने लगे हैं, अपने पास पैसे उपन्यास पढ़ना, अन्यायसे दूसरोंका धन हरण करना— भी रखने लगे हैं। अगर कोई कहता है कि साधु-सन्तोंको अभक्तोंका लक्षण है। समय-समयपर विधिवत् श्रद्धापूर्वक नशा नहीं करना चाहिये, धन नहीं रखना चाहिये तो झटसे तीर्थ-भ्रमण करनेसे चित्त-शुद्धि होती है। तीर्थोंमें रहकर अपनेको वेदान्ती, ब्रह्मज्ञानी बताने लगते हैं और 'अहं परिनन्दा करनेसे, कुभावनाके उदय होनेसे संचित पुण्य ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। यह कितना बुरा है। साधु-सन्त क्षीण होते हैं, पाप-संग्रह होता है। या सद्गृहस्थको यदि सच्चे नशेमें डूबनेकी इच्छा है तो काम, क्रोध, लोभपर नियन्त्रण करनेका अभ्यास भगवान्के नामके नशेमें डूबे। नानकदेवजीने ठीक कहा करना चाहिये। क्रोधादि मनकी तरंगें हैं। मन शान्त हो है—'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।' मांस, जानेसे हृदयमें भक्ति-भावना बलवती होती है। मदिरा तथा नशेके सेवनने बड़े-बड़े राजा-शासकोंका पतन भजन, भोजन और निद्रा प्रतिदिन नियत समयमें ही कर डाला। साधना तथा भक्तिकी कामना रखनेवालोंको होना चाहिये। आलस्य सबसे अधिक विघ्नकारक है। किसी भी तरहका नशा कदापि नहीं करना चाहिये। आलस्यसे प्रतिदिनकी जीवनचर्यामें विघ्न पड़ता है। मानवमात्रको नशेसे सर्वथा बचना चाहिये। साध्-संन्यासीकी जीवनचर्या कैसी हो? आलस्यसे शरीर और मन—दोनों ही दुर्बल होते हैं। समय अमूल्य तथा दुर्लभ होता है। समय व्यर्थ पूज्य उड़ियाबाबाजी महाराज प्राय: गंगाके पावन कदापि नहीं बिताना चाहिये। जिस समय कोई काम न हो, तटपर किसी कुटियामें रहकर साधना किया करते थे। उस उस समय जप, मानस-पूजा अथवा सद्ग्रन्थोंका पाठ युगके महान् सन्त स्वामी उग्रानन्दजी महाराज, हीरादासजी करना चाहिये। भगवान् तथा भक्तोंका जीवन-चरित्र पढ़ना महाराज, स्वामी शास्त्रानन्दजी महाराज, पूज्य श्रीहरिबाबाजी चाहिये। निद्रा, घृणा, द्वेष और अभिमान जीवके लिये महाराज आदि पूज्य बाबाके अनन्य श्रद्धालुजनोंमें थे। सन्त बन्धनकी शृंखला है। प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीपर उनकी अनूठी कृपा थी। स्वामी करपात्रीजी महाराज प्राय: नरवरमें पढ़ते समय पूज्य जो परमात्माके दर्शन करना चाहे, उसे शास्त्रानुसार बाबाका सत्संग किया करते थे। स्वामी अखण्डानन्द जीवन बिताना चाहिये। गो-ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तोंके प्रति श्रद्धा-भावना रखनी चाहिये। कामिनी और कांचनमें सरस्वतीजी प्राय: पूज्य बाबाके साथ महीनों-महीनों रहकर आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। जो सांसारिक सुख-सुविधाओंमें सत्संग किया करते थे। पूज्य स्वामी अखण्डानन्दजी मन लगाये रखते हैं —वे न मनकी शान्ति पा सकते हैं और महाराजने एक लेखमें लिखा है कि पूज्य उड़ियाबाबाने विरक्तों-सन्तोंकी जीवनचर्याके विषयमें कहा था-न भगवान्की कृपाके अधिकारी बन पाते हैं। जगत्का कोई पदार्थ नित्य नहीं है। धन, विद्या, बुद्धि, गुण, गौरव आदि रोटी के सिवा कुछ न माँगे, चाहे मर जाय। जितना सभी मृत्युके साथ धूलमें मिल जाते हैं। अपने जीवनमें हो सके तितिक्षा करे, सहन करे। कोई कितना ही दु:ख सांसारिक वस्तुओंको महत्त्व नहीं देना चाहिये। भगवान्का दे, आनन्दपूर्वक सहे। संसारसे वैराग्य और साधनसे प्रेम करे। किसीको औषध आदि न बताये। कितना भी भजन, असहायोंकी सेवा-सहायता करनेवाला तथा शास्त्रानुसार सरल सात्त्विक जीवन जीनेवाला ही अपना मानव-जीवन चमत्कार हो अपने लक्ष्यसे न हटे। कामिनी और कंचनका सफल कर पाता है। सम्बन्ध न करे। किसी प्रकारका नशा न करे। व्यर्थ

प्रलापका सर्वथा त्याग करे। वस्तुएँ कभी नहीं मिलेंगी। साधुके तीन लक्षण मुझे बहुत अच्छे लगते हैं-साधुको न तो भिक्षाकी चिन्ता करनी चाहिये और न संकल्प करके किसी खास दरवाजेपर ही जाना १-जीवनभर कामिनीको कभी स्वीकार न करे।

अजीवनचर्याका उपदेश-वचनामृत

चाहिये। भिक्षान्न सोम-अन्न है। इसके बराबर शृद्ध कोई अन्न नहीं है।

अङ्क ]

रुपया-पैसा लेनेसे साधुका तप क्षीण हो जाता है, तपका नाश हो जाता है। अगर रुपये-पैसेकी ही इच्छा है

तो गृहस्थमें क्यों न रहे तथा कार्य क्यों न करे?

माया. मंदिर, स्त्री, धरती और व्यौहार।

ये संतन को तब मिले. कोपे जब करतार॥

जब भगवानुका कोप होता है, तभी साधुको ये वस्तुएँ मिलती हैं। जिस साधुपर भगवानुकी कृपा हो तो ये संसारी

चाहिये। एक जगह न रहकर घुमते रहकर धर्म, भगवानुकी भक्ति. सदाचार तथा सेवा. परोपकारका उपदेश देते रहना

२-कंचनको स्वीकार न करे और रेलयात्राके लिये.

३-साधुको हर पल भगवानुका चिन्तन करते रहना

खानेके लिये, वस्त्रके लिये भी किसीसे कुछ न ले। साध्

यदि पैसा अपने पास रखेगा तो वह अपने साधू-धर्मसे गिर

चाहिये। किसी विशेषके प्रति मोह-ममता नहीं रखनी

चाहिये। [ गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी ]

जायगा।

\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* सार्ववर्णिक धर्म

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

( गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

वर्णोंपर सभी आश्रमोंपर यहाँतक मनुष्यमात्रपर एक से अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता। भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥\*

सत्य, अहिंसा शुद्ध चित्ततें मनमहँ धारैं।

कबहुँ न चोरी करें काम बड़ रिपुकूँ मारें॥

छप्पय

१४२

क्रोध लोभतें रहित होहिं प्रिय करहिं सबनिको।

प्राणिमात्रतें प्रेम करें हित सब जीवनिको॥

सुखी होहिं परसुख निरखि, पर संपति लखि नहिं जरैं। स्वयं न प्रिय व्यवहार जो, तिहि औरनि संग निहं करें॥

कुछ लोग धर्मको अलग मानते हैं और चरित्र तथा सदाचारको अलग। उनके मतमें उपासनागृहमें जाना, पूजा-

पाठ करना, परमात्माकी प्रार्थना करना यह तो धर्म है और सत्य, अहिंसा परोपकारादि सदाचार हैं। इनका मत है

सदाचारके लिये धर्मकी धार्मिक क्रियाओंकी कोई आवश्यकता नहीं। धार्मिक भी दुराचारी हो सकता है और अधार्मिक

भी सदाचारी हो सकता है। किंतु हमारे यहाँ सदाचार और धर्म दो वस्तु नहीं हैं। सदाचार धर्मका ही एक अंग है। हमारे यहाँ तो चरित्र, सदाचार ये सब धर्मके ही अन्तर्गत

हैं, जो सदाचारी नहीं, वह धार्मिक कैसे हो सकता है, धर्मका ढोंग भले ही बना ले। आजीविकाके लिये धार्मिक

क्रियाओंका आश्रय भले ही ले ले, पर वह धार्मिक नहीं। जो आचारहीन है, उसे तो वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। इसी प्रकार जो सदाचारी है, वह अधार्मिक बना रहे यह

असम्भव है। हमारे यहाँ धर्मकी व्याख्या विस्तृत है। वैयक्तिक धर्म, कौटुम्बिक धर्म, जाति धर्म, वर्ण धर्म,

आश्रम धर्म, देश धर्म तथा सार्ववर्णिक धर्म। सब पृथक्-पृथक् हैं। यह नहीं कि हम ब्राह्मण हैं और दूसरा शूद्र है, तो दोनोंके पृथक्-पृथक् धर्म होनेसे हम कभी मिल ही

लागू हैं। सूतजी शौनकादि मुनियोंसे कह रहे हैं- 'मुनियो! (श्रीमद्भा० ११।१७।२१) जब भगवान्ने सभी वर्णोंके धर्मका निरूपण कर दिया,

> तब उद्धवजीने उनसे सार्ववर्णिक धर्मके सम्बन्धमें प्रश्न किया।' उसका उत्तर देते हुए वे कह रहे हैं- 'उद्भव! कुछ धर्म ऐसे हैं, जिनका सभी लोग समान भावसे पालन

> कर सकते हैं।' वे ये हैं— (१) अहिंसा-अहिंसा कहते हैं, तनसे, मनसे और वाणीसे किसीको कष्ट न पहुँचाना। यों संसारमें

> हिंसाके बिना तो कोई जीवित रह ही नहीं सकता। जीव ही जीवोंका जीवन है। एक जीव दूसरे जीवको खाकर ही जी रहा है। अंडज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज्ज ये

> चार प्रकारके जीव हैं। एक-दूसरेको खाकर ही सबका जीवन है। स्वेद (पसीना)-से उत्पन्न होनेवाले खटमल, जूएँ मनुष्योंका रक्तपान करके ही जीते हैं। अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी एक-दूसरेको खाते हैं। मोर सर्पको खा

> जाता है। मेढ़क छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ोंको भक्षण कर जाता है। गाय-भैंस घासको खाकर जीती हैं। घासमें जीव है। मनुष्य अन्न-फल खाता है, इनमें भी जीव है। दुध

> पीता है, दूधमें भी जीव है। माताका रक्त ही सफेद होकर दूध बन जाता है। दूधको जलाइये तो चरबी-जैसी गन्ध आयेगी। ये सब हिंसाएँ स्वाभाविक हैं। जीव इनसे बच नहीं सकता। मनुष्य प्राणी पशु नहीं है, बुद्धिमान् है। उसे

> जहाँतक हो हिंसासे बचना चाहिये। बिना मांसके निर्वाह

होता हो, तो अपने मांसको बढ़ानेके लिये दूसरोंका मांस न खाना चाहिये। कर्तव्यबुद्धिसे धर्मकी रक्षाके लिये किसीको मारना हो यह दूसरी बात है, किंतु यों व्यर्थमें

**ाजीवनचर्या**−

किसीको कभी भी न मारना चाहिये। जब हम जीवन प्रदान नहीं कर सकते तो हमें किसीको मारनेका अधिकार ही क्या है। इसलिये कभी किसीको मारे नहीं। मनसे

नहीं सकते। अपने-अपने धर्मींका पालन करते हुए हम सामाजिक क्षेत्रमें एक होते हैं। कुछ धर्म ऐसे हैं, जो सभी \* भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी उद्धवजीसे कह रहे हैं—'उद्धव! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, काम, क्रोध और लोभसे रहित होना तथा प्राणियोंकी हितकारी और प्रिय चेष्टाओंमें संलग्न रहना—ये सामान्यतया सभी वर्णोंके धर्म हैं।'

\* सार्ववर्णिक धर्म \* अङ्क ] किसीका अनिष्ट न सोचे। मानसिक हिंसा भी बड़ी भारी ही अन्तर्गत हैं। कहना चाहिये सत्यके ही प्रकार हैं। हिंसा है। हम वाणीसे भले ही न बोलें, शरीरसे भी कोई (३) अस्तेय-जिस वस्तुको सबके सम्मुख छू कार्य न करें। किंतु मनसे किसीका अनिष्ट चिन्तन करते नहीं सकते, उसे छिपकर छुना, जिसका व्यवहार निन्दित माना जाता है, उसका छिपकर व्यवहार करना—ये सब रहे, तो यह बहुत बड़ी हिंसा है। अत: मनसे भी किसीका अनिष्ट चिन्तन न करे। किसीको वाणीसे भी कटु वचन चोरीके ही अन्तर्गत हैं। चोरी न करना यही अस्तेय है, न कहे। वाणीकी हिंसा शारीरिक हिंसासे बहुत बड़ी है। दूसरेकी भोग-वस्तुको न अपनाना-इसीका नाम चोरी न करना है। बाणका घाव तो पूरा भी हो जाता है, किंतु वाग्बाण सदा हृदयमें चुभता रहता है, इसलिये वाणी बहुत विचारकर (४) काम-क्रोध-लोभादिसे रहित होना-ये असद् बोले। जिस बातमें दूसरोंका हित होता है। जो सत्य हो, वृत्तियाँ हैं। जैसे समुद्रमें लहरें उठती रहती हैं, वैसे ही मधुर हो और निश्छल भावसे कही गयी हो, ऐसी वाणीको काम-क्रोधादि की ऊर्मियाँ हृदयमें उठती रहती हैं। बोले। इस प्रकार जो तन, मन और वाणीसे अहिंसाका अपनेको इनसे पृथक् समझकर इनके वशमें न होना। आचरण करता है, वह स्वर्गका अधिकारी होता है। इसमें (५) भूतप्रियहितेहा—प्राणियोंकी हितकारिणी वर्ण-आश्रमका कोई नियम नहीं। मनुष्यमात्र इस धर्मका तथा प्रिय लगनेवाली चेष्टाओंमें निरन्तर तत्पर रहना पालन कर सकता है। अर्थात् जो व्यवहार अपने लिये अच्छा लगे उसीका उद्धवजीने पूछा—'भगवन्! किसीको कष्ट न पहुँचाना व्यवहार दूसरोंके साथ करना, जो अपनेको अप्रिय लगे ही अहिंसा है।' उसे कभी किसीके साथ न करना अर्थात् सर्वभूतोंको भगवान्ने कहा—'नहीं, यह बात नहीं है। कभी-आत्मवत् मानना। कभी कष्ट न पहुँचाना भी हिंसा हो जाती है। कभी कष्ट ये सब ऐसे गुण हैं कि इन्हें चाण्डालसे लेकर पहुँचानेसे भी अहिंसा होती है, कोई आततायी है, श्रोत्रियतक समान भावसे कर सकते हैं। ये सब वर्णीं के सामान्य धर्म हैं। यहाँ उन्हें संक्षेपमें कहा है, नहीं तो सत्य, किसीकी बहन-बेटीपर बलात्कार कर रहा है, हम यह सोचें कि इसे रोकें तो इसको कष्ट होगा, तो हमारा यह दया, तप, शौच, तितिक्षा, युक्तायुक्त विचार, शम, दम, विचार हिंसायुक्त हुआ। हिंसा-अहिंसाका विशेष सम्बन्ध अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, भावसे है। शास्त्रोंमें इसका वृहद्रूपसे विवेचन है। अहिंसा समदर्शित्व, सन्त-सेवा, सांसारिक भोगोंसे शनै:-शनै: न मारनेसे ही नहीं होती। अर्जुनको भी यही भ्रम था, कि निवृत्ति, प्रारब्ध-निर्भरता, आत्मचिन्तन, मौन, प्राणियोंको में राज्यके लिये अपने सम्बन्धियोंकी हिंसा क्यों करूँ? अन्नादि बाँटकर खाना, प्राणिमात्रमें विशेषकर मनुष्योंमें इससे तो भीख माँगकर खाना अच्छा। तब मैंने उसे हिंसा-भगवद् भाव रखना, भगवत्-कथा-श्रवण, नामगुण-कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार, अपनेको भगवान्का दास अहिंसाका मरम समझाया। धर्मकी रक्षा करते हुए दूसरोंको मनसा-वाचा-कर्मणा कष्ट न देना-यही अहिंसा है। इस मानना, सख्यभाव तथा आत्मसमर्पण करना—ये तीस धर्मका पालन मनुष्यमात्र कर सकते हैं।' लक्षणवाला धर्म है। इनका आचरण सभी कर सकते हैं। (२) सत्य—दूसरा सार्ववर्णिक धर्म है—सत्य। किसी वर्णका हो, किसी आश्रमका हो, किसी देशका हो, यथार्थ भावोंको बिना छल-कपटके व्यक्त करना सत्य है। किसी पन्थ, सम्प्रदाय, मत-मतान्तरका व्यक्ति क्यों न हो-इन तीस धर्मींका पालन करनेसे वह सद्गतिको प्राप्त हो कभी-कभी सत्य-सा दीखनेवाला व्यवहार असत्य हो जाता है, कभी असत्य-सा दीखनेवाला व्यवहार सत्य हो सकता है। मान्यता तो अपनी है। ऐसा आग्रह नहीं है कि जाता है। सर्व भूतोंके हितकी भावनासे यथार्थ व्यवहार इस सम्प्रदायको छोड़कर इसमें जाओगे, तभी उद्धार होगा।

सत्य है। समता, दम, अमात्सर्य, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, त्याग, ध्यान, श्रेष्ठता, धैर्य और दया—ये सत्यके आपकी जो मान्यता हो, उसे ही मानो। इन धर्मोंका पालन

करो, तुम जहाँ हो वहाँ ही तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो जायगी।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− 888 मैं किसी सम्प्रदायविशेषका नहीं हूँ, जो मुझे जिस भावसे प्राणप्रियाकी भाँति प्यार करता हूँ। उन्हें अपने हृदयका हार भजते हैं मैं भी उन्हें उसी भावसे भजता हूँ, जो मुझमें बना लेता हूँ; सब समय स्रोते-जागते, उठते-बैठते उनका

वात्सल्य रखते हैं, मैं भी पिता-माताका भाव रखता हूँ, जो स्मरण करता हूँ। मैं भावका भूखा हूँ। यदि भाव नहीं तो

मुझे सखा मानते हैं, मैं उन्हें अपना सखा मानता हूँ, जो उच्च-से-उच्च वर्णका नीच है, यदि भाव है तो चाण्डाल मुझे स्वामी मानकर पूजते हैं, मैं भी उनकी सेवा-भावसे भी श्रेष्ठ है। सत्य-अहिंसादि धर्मींका पालन करनेके लिये

सब देख-रेख करता हूँ, उनके छोटे-से-छोटे कामको ही सब विधि-विधान हैं। यह मैंने अत्यन्त संक्षेपमें समस्त

स्वयं करता हूँ। जो मुझमें पतिभाव रखते हैं, उन्हें मैं अपनी वर्णोंके धर्म बताये। [ प्रेषक — श्रीश्यामलालजी पाण्डेय ]

\* जीवनका चरम लक्ष्य\* अङ्क ] 

### जीवनका चरम लक्ष्य ( महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

जाय, तबतक वास्तवमें बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिका प्रश्न ही मानव-जीवनका वास्तविक लक्ष्य क्या है? जीवात्मा

अनादिकालसे प्रकृतिके प्रवाहमें सिवारके समान अणुरूपमें नानाविध शरीर धारण करते हुए कालकी गतिसे बह रहा है। न जाने, किस जगह पहुँचनेपर इस अविरल प्रवाहसे छुटकारा प्राप्त होगा एवं सागर-संगममें पहुँचकर जैसे नदी कृतार्थ होती है, वैसे ही मनुष्यका आत्मा अपनी परम काम्य वस्तुको प्राप्तकर चिरकालके लिये शान्ति प्राप्त करेगा। नाना सम्प्रदायोंमें विविध भावोंद्वारा इस लक्ष्यके निर्धारणके लिये प्रयत्न हुए हैं एवं इन प्रयत्नोंद्वारा दार्शनिक साहित्यमें विविध प्रकारके मतवादोंकी सृष्टि हुई है। विचार करनेपर प्रतीत होगा कि इन सभी सिद्धान्तोंमें कोई सिद्धान्त कभी एकके सिवा दो नहीं होते। नहीं होती एवं अज्ञानकी निवृत्ति हुए बिना भ्रमका विनाश उससे हमलोगोंका थोड़ा-बहुत आंशिक रूपमें परिचय है। उसी ज्ञानके प्रभावसे बुद्धिके धर्म अज्ञानकी निवृत्ति होती

भी सिद्धान्त भ्रान्त नहीं है, तो भी यह सत्य है कि चरम जबतक ज्ञान प्राप्त न हो, तबतक अज्ञानकी निवृत्ति भी नहीं होता, किंतु इस ज्ञान-प्राप्तिके प्रसंगोंमें ज्ञानोंके भेद भी जान लेना आवश्यक है। जो ज्ञान बुद्धिका धर्म है, है। किंतु उस अज्ञानके निवृत्त होनेपर भी मूलमें ऐसा एक अज्ञान रह जाता है, जिसके निवृत्त हुए बिना जीवनका यथार्थ कल्याण आविर्भृत नहीं हो सकता। आकाशमें बादल रहनेपर बादलोंके मध्यमें स्थित सूर्यबिम्ब दिखायी नहीं देता। सूर्यका उदय होनेके बाद आकाशके मेघावृत रहनेपर मेघके हटनेके साथ ही सूर्यका दर्शन होता है एवं उसकी किरण और धूपकी भी प्राप्ति होती है किंतु अर्धरात्रिमें जब आकाशमें सूर्यका प्रकाश नहीं रहता, तब आकाशमें बादलोंके रहनेपर एवं उन बादलोंके हटनेपर

सूर्यविम्ब दुष्टिगोचर होगा, यह कहना सम्भव नहीं। ठीक उसी प्रकार बौद्ध ज्ञानके द्वारा बौद्ध अज्ञानके मिट जानेपर भी हृदयमें अन्धकार रहता ही है, यदि उसके पहले हृदयसे मूल अज्ञानकी निवृत्ति न हुई तो इसीलिये आगमवेत्ता योगी कहते हैं कि बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिका

ग्रहण करनेपर उस देहका अवलम्बनकर उसमें एक कृत्रिम अहं-प्रतीतिका उदय होता है; इस अहं-प्रतीतिका आधार है बुद्धि। इस बुद्धिमें जो अज्ञान धर्मरूपसे भासता है, वहीं बौद्ध अज्ञान है एवं उसमें जो ज्ञानका उदय होता

नहीं उठता। आत्माके प्राक्तन (पूर्वजन्मोंके) कर्मोंसे देह-

है, वही बौद्ध ज्ञान है। किंतु इसका मूल्य कितना है? जिस अज्ञानके प्रभावसे आत्मा मायाके अधीन होकर देह ग्रहण करनेके लिये बाध्य होता है, उस अज्ञानकी निवृत्ति न होनेतक आत्माका नैसर्गिक शिवत्वरूप धर्म अभिव्यक्त नहीं हो सकता। उस मूल अज्ञानको पौरुष अज्ञान कहा जा सकता है। इस अज्ञानकी निवृत्तिके लिये जो अत्यन्त

आवश्यक उपाय है, वह कर्म नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, यहाँतक कि भक्ति भी नहीं है। इन सबकी उपायरूपमें गणना होनेपर भी ये बुद्धिके व्यापार हैं। बुद्धिके पहले जो हो चुका, उसे दूर करनेकी क्षमता इनमेंसे किसीमें भी नहीं है। इसलिये, जबतक मनुष्यकी आत्मासे वह मूल अज्ञान न हट जाय तबतक मनुष्य-जीवनका परम आदर्श कदापि साक्षात् रूपसे प्राप्त नहीं हो सकता। वह मूल अज्ञान

आत्माद्वारा स्वेच्छासे गृहीत आत्मसंकोचके सिवा और कुछ

नहीं है। वास्तवमें, शिवरूपी आत्मा सब प्रकारसे संकोचरहित

है, उसमें कालका संकोच न होनेसे वह नित्य है, देशका संकोच न होनेसे वह विभु है, क्रियाका संकोच न होनेसे वह सर्वकर्ता है, ज्ञानका संकोच न होनेसे वह सर्वज्ञ है एवं आनन्दका संकोच न होनेसे वह नित्य-तृप्त है। वही आत्माका शिवत्व है, किंतु जब लीलाके बहाने स्वेच्छासे आत्मा अपनेको संकृचित करते हैं और अभिनयके लिये जीवभाव ग्रहण करते हैं, तब उनके स्वाभाविक सभी धर्म संकुचित होनेको बाध्य होते हैं। तब यह परिच्छिन्न शक्तिवाले क्षुद्र आत्मा मायाके अधीन होकर कर्ताका स्वाँग

धारण करते हैं, अर्थात् कर्मजगत्में प्रवेश करते हैं एवं कर्म करना और किये हुए कर्मोंका फलभोग करना-इन दो व्यापारोंमें लिप्त होकर एक योनिसे दूसरी योनिमें भिन्न-उतना मूल्य नहीं है, जितना कि पौरुष अज्ञानकी निवृत्तिका, भिन्न शरीर ग्रहण करते हैं और त्याग करते हैं। उनके अर्थात् जबतक पुरुषके स्वरूपगत अज्ञानकी निवृत्ति न हो संसारचक्रमें परिभ्रमणका यही संक्षिप्त इतिहास है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि आत्मशुद्धिके हेत् उपासना आदिसे बौद्ध ज्ञानका उदय होता है और बौद्ध सच्चारित्र्यका संग्रह करना अनिवार्य कर्तव्य है। इसे कदापि अज्ञानकी निवृत्ति होती है; तब उस मुक्त हृदयमें गुरु-भूलना नहीं चाहिये। देह-सम्पन्न आत्माकी अभिमान-कृपाका अर्थात् परमेश्वरके अनुग्रहका फल प्रत्यक्ष अनुभूत

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

**ाजीवनचर्या**−

होता है। इस अनुभवका रूप है अपनेको शिवरूपमें जानना।

यह अनुभव अमूलक नहीं है; क्योंकि शिवत्वके आचरणरूपी

मलकी निवृत्ति होनेके साथ ही जिस स्वरूपका प्रकाश होता

है, वह बौद्ध-ज्ञानजनित बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिके बाद

हृदयमें प्रकाशित हो उठता है। यही जीवन्मुक्तिकी सूचना

शिवरूपी है, विस्मृत हो गया था, विस्मृतिके हटनेपर

स्मृतिका पुन: उदय होनेसे आत्मा शिवरूपमें प्रतिष्ठित होता

है। यह उसका परमलाभ है। इसके लाभके बिना केवल

कैवल्य-अवस्थामें स्थित होकर कर्मके अतीत होनेपर भी

सच्चारित्र्यका वास्तविक लक्ष्य है। इसी चरम लक्ष्यकी

प्राप्तिके लिये सच्चारित्र्य उपजीव्य है। सच्चारित्र्यसे ही बौद्ध

एवं आनुभविक ज्ञानका मार्ग प्रशस्त होता है तथा मलमूलक

अज्ञान नष्ट होकर आत्म-साक्षात्कार फलीभृत होता है।

इसलिये, सबसे पहले, जिससे मूल अज्ञान मिट जाय और मानव-जीवनकी परिपूर्ण सार्थकता है। देहान्त होनेपर उसीपर विचार करना चाहिये। पहले यह कहा जा चुका बुद्धिरूपी घड़ेके फूट जानेपर आत्मा शिवरूपमें विराजमान है कि इस अज्ञानको मिटानेके मार्गमें कर्म, ज्ञान और भक्ति होता है, बुद्धिका प्रश्न तब फिर नहीं रहता। यह प्राप्ति किसीकी भी वैसी उपयोगिता नहीं है; क्योंकि ये सब मूलका किसी नूतन वस्तुकी प्राप्ति नहीं है। आत्मा जो स्वयं

होती है। कृपाके नित्य होनेपर भी जबतक जीवात्माका मूल पशुत्वके निवृत्त न होनेसे पूर्णत्व-लाभ शेष रह जाता है। आवरणरूप मल परिपक्व नहीं हो जाता, तबतक वह उसमें कालान्तरमें उस मलको हटाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता संचालित नहीं हो सकती। किंतु मल परिपक्व होनेपर है; क्योंकि जबतक वह मल नहीं हटाया जाता, तबतक मलपाकके तारतम्यके अनुसार कृपा संचारित हुए बिना नहीं आत्माका अपना स्वरूपभूत शिवत्व अप्राप्त ही रह जाता है। आत्मस्वरूपकी उपलब्धि ही जीवनकी साधना— रहती है। जिसे लौकिक जगत्में दीक्षा कहते हैं, वह उसीका

सामग्रीमें बुद्धि (समझ-शक्ति) एक प्रधान अंग है। ज्ञान और अज्ञान दोनों ही उसके धर्म हैं। बौद्ध ज्ञानसे बौद्ध

अज्ञान नष्ट हो जाता है, यह सत्य है, किंतु यह तो बहुत

नीचेकी बात है-इससे मूल अज्ञानके विनष्ट होनेकी कोई

स्पर्श ही नहीं करते। एकमात्र भगवानुकी कुपाशक्तिके द्वारा ही इस मूल अज्ञानकी निवृत्ति हो सकती है, अन्य उपायोंसे

नहीं। भगवत्कृपा स्वभावसिद्ध है एवं वह अहैतुक होनेपर

भी आधारकी योग्यताके अनुसार उसमें कार्यक्षमता प्रतिविम्बित

फल है। यह दीक्षा स्थूल भी हो सकती है और सूक्ष्म भी;

किंतु यह है अत्यन्त आवश्यक। इसके न होनेतक

साधनाका असर उतना अधिक नहीं होता, जितना होना

चाहिये; क्योंकि साधना बुद्धिका व्यापार है। साधना अथवा

सम्भावना नहीं है।

संयम-सदाचारसे युक्त जीवन ही कल्याणका साधन

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

नश्वर हैं। वे जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधिके चक्रमें फँसानेवाले हमारा प्राचीन समाज शास्त्रीय नियमोंपर ही निर्मित हुआ था। हिन्दुशास्त्र प्राय: प्रत्येक मानवको ब्रह्मचर्य, हैं। इन भोग-विलासोंके मोहमें पड़कर नारी और नर ऐसे

पाप-पंकमें निमग्न हो जाते हैं, जिससे उनका उद्धार होना सत्य, अहिंसा, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि तपका

ही आदेश देते हैं। ये परिणाममें मधुर और मंगलमय हैं।

कठिन हो जाता है। वे प्राय: सूकर-कूकर और कीट-पतंग

यही कारण था कि पूर्वकालके बड़े-बड़े वैभवशाली आदि योनियोंमें पड़नेकी स्थितिमें आ जाते हैं।

राजर्षि अपनी लौकिक सुख-समृद्धिपर लात मारकर सुख तो वही चाहनेयोग्य है, जो मिलकर फिर कभी

इनकी साधनाके लिये वनमें चले जाते थे। वे जानते थे खो न जाय, जो नित्य, सनातन और एकरस हो। ऐसे

कि इस संसारका जीवन क्षणिक है, यहाँके सुख-भोग सुखके निकेतन हैं—एकमात्र मंगलमय भगवान्। अत:

\* संयम-सदाचारसे युक्त जीवन ही कल्याणका साधन \* अङ्क ] प्रत्येक स्त्री-पुरुषका प्रयत्न उन्हीं परम प्रभुको प्राप्त हो। जिस कार्यसे दूसरोंकी उपेक्षा, हानि या विनाश होता करनेके लिये होना चाहिये। वे संयम और सदाचारपूर्वक है, उससे हमारा हित कभी नहीं हो सकता। भगवान् प्रेमनिष्ठासे ही प्राप्त होते हैं और उनसे शाश्वत सुखकी सम्पूर्ण विश्वके समस्त जीवोंके मूल हैं, भगवान् ही सबके प्राप्ति होती है। इसीलिये शास्त्र संयम और सदाचारपर आधार हैं, भगवानुकी सत्तासे ही सबकी सत्ता है, समस्त अधिक बल देते हैं; क्योंकि इन्हींमें जीवका कल्याण भरा जीवोंके जीवनरूपमें भगवानुकी ही भगवत्ता काम कर रही है। वह प्रारम्भिक अनुष्ठानमें कठिन और दु:खसाध्य है। इस तथ्य बातको ध्यानमें रखते हुए सबकी सेवाका, प्रतीत होनेपर भी परिणाममें परम कल्याणकारी है। अत: सबके हितका और सबकी प्रतिष्ठाका विचार रखकर इनकी साधनासे साध्य प्रभुकी संनिधि प्राप्तकर शाश्वत-अपने कुटुम्ब, जाति और देशसे प्रेम करना तथा उनकी सुखकी प्राप्तिका प्रयास करना चाहिये। सेवा करनी चाहिये। किसीको दु:ख पहुँचाकर अथवा कहा जाता है कि नयी अवस्थामें सुख-भोग और किसीको दु:खी देखकर सुखका अनुभव करना बहुत बड़ी उम्र ढलनेपर धर्मका सेवन करना चाहिये, किंतु यह कौन भूल है। कह सकता है कि किसकी आयु कब समाप्त हो जायगी? मनुष्यका शरीर इसलिये नहीं मिला है कि वह काल नयी और पुरानी अवस्थाका विचार करके नहीं अन्यायसे, पापसे और झूठ-कपटसे धन इकट्ठा करनेका प्रयत्न करके अपने भावी जीवनको नरककी प्रचण्ड आता। उसकी दृष्टि शिशु, तरुण, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध सबपर समानरूपसे पड़ती है। आयुके समाप्त होनेपर वह अग्निमें झोंक दे। दयासागर दीनबन्धु भगवान्ने जीवको किसीको एक क्षण भी अधिक जीनेका अवसर नहीं देता। मानव-जीवन देकर यह एक अवसर प्रदान किया है। जीव फिर धर्मका कब संचय होगा और कैसे नित्य-सुखकी मानव-शरीरको पाकर यदि सत्कर्ममें लगता और भगवानुका प्राप्ति होगी? जन्मान्तरमें पुन: मानवशरीर मिलेगा या नहीं, भजन करता है तो वह सदाके लिये भवबन्धनसे मुक्त हो कौन कह सकता है? दूसरे किसी शरीरसे आत्माके लिये परमानन्दमय प्रभुके नित्यधाममें चला जाता है। (और यही कल्याणकारी धर्मींका सम्पादन सम्भव नहीं है। अत: स्त्री-तो मानव-जीवनका वास्तविक लक्ष्य अथवा चारितार्थ्य पुरुष सभीको अपने, सबके परमपति परमेश्वरका स्मरण-है।) यदि भोगोंकी आसक्तिमें पड़कर वह सारा जीवन ध्यान करते हुए संयम एवं सदाचारपूर्ण जीवन बिताना पापमें बिता देता है तो नरकोंकी प्रचण्ड ज्वालामें चाहिये। इसके लिये वे सद्ग्रन्थका स्वाध्याय करें, गुरुजनोंकी झुलसनेके पश्चात् उसे चौरासी लाख योनियोंमें भटकना यथायोग्य और यथाशक्ति सेवा करें। उस सेवाको भगवान्की पड़ता है। यह मानवका महान् पतन है। क्षणिक विषय-सेवा मानें। घरके बालकोंका लालन-पालन करें और सदा सुखके लिये बहुत-बहुत जन्मोंतक दु:ख और कष्टमें भगवानुका चिन्तन करते रहें। उन्हें भोग-विलासके साधनों जलते रहना कहाँकी बुद्धिमानी है? परंतु हम इसके ऐसे भयंकर परिणामको जानते हुए भी ऐसी भूल क्यों करें? तथा भड़कीले वस्त्राभूषणोंसे सदा दूर रहना चाहिये। इन्द्रियके घोडोंपर लगाम कसे रहना चाहिये। मनोनिग्रहपर धर्मका पालन उस भूलका सुधार है। सदाचार और सदैव सतर्क रहना चाहिये। संयमका जीवन ही धर्मका पालन है। सदाचारमें सब कुछ घर-परिवारका पालन, कुल-जातिकी सेवा और आ जाता है—सत्य, अहिंसा, परोपकार, क्षमा, अस्तेय, स्वदेशप्रेम सभी आवश्यक हैं; यथायोग्य सबको इनका शौच आदि-आदि; और संयममें इन्द्रियमनोनिग्रह, धैर्य, आचरण अवश्य करना चाहिये, परंतु ऐसा न होना चाहिये दम, धी-विद्या आदि-आदि। कि अपने घर-परिवारके पालनमें दूसरोंके घर-परिवारकी सभी भोग नश्वर और क्षणिक हैं। यह दुर्लभ उपेक्षा, अपने कुल-जातिकी सेवामें दूसरे कुल-जातियोंकी मानव-शरीर भी पता नहीं, कब हाथसे चला जाय। यह हानि और स्वदेशके प्रेममें अन्य देशोंके प्रति घृणा हो। समझकर अब भी चेतना चाहिये। जो समय प्रमादमें बीत सच्चा पालन, सच्ची सेवा और सच्चा प्रेम तभी समझना गया, सो तो बीत गया, अब आगे नहीं बीतना चाहिये— चाहिये, जब अपने हितके साथ दूसरेका हित मिला हुआ 'अबलौं नसानी अब न नसेहों। राम-कृपा भव-निसा

१५२ * आत्मनः प्रतिकूलानि	न परेषां न समाचरेत्* [ जीवनचर्या-
*******************************	**************************************
<i>सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं॥</i> ' (विनयप०) ऐसा	आचरणसे जो कुछ प्रमाण कर देते हैं—जैसा आदर्श
निश्चय करके बुरे कर्मोंकी ओरसे मनको खींचे। इन्द्रियोंपर,	उपस्थित करते हैं, सारा जनसमुदाय उसीका अनुकरण
मनपर नियन्त्रण करे।	करने लगता है।'
अपने दोषोंको नित्य-निरन्तर बड़ी सावधानीसे	इससे पता लगता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंपर कितना बड़ा
देखते रहना चाहिये। ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि रखनी चाहिये कि	दायित्व है और उन्हें अपने दायित्वका निर्वाह करनेके
मन कभी धोखा न दे सके और क्षुद्र-से-क्षुद्र दोष भी	लिये कितनी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये एवं किस
छिपा न रह सके, साथ ही यह हो कि दोषको कभी सहन	प्रकारसे स्वयं आचरण करके लोगोंके सामने पवित्र आदर्श
न किया जाय, चाहे वह छोटासे छोटा ही क्यों न हो। इस	उपस्थित करना चाहिये। सत्पुरुषोंद्वारा आचरणीय सदाचार
प्रकार प्रयास करनेपर अपने दोष मिटते रहेंगे और दूसरोंके	इस प्रकार हैं—
दोषोंका दर्शन और चिन्तन क्रमशः बन्द हो जायगा। अपने	<b>मनका सदाचार—</b> (१) कभी किसीका बुरा न
दोष एक बार दीखने लगनेपर फिर वे इतने अधिक दीखेंगे	चाहे, बुरा होता देखकर प्रसन्न न हो। (२) व्यर्थ चिन्तन,
कि उनके सामने दूसरोंके दोष नगण्य प्रतीत होंगे और	दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, काम-क्रोध-लोभ आदिके निमित्तका
उन्हें देखते लज्जा आयगी। इसी बातको प्रकट करते हुए	चिन्तन न करे। (३) किसीकी कभी हिंसा न करे
कबीरजीने कहा है—	(किसीको किसी प्रकार कष्ट पहुँचाना हिंसा है)। (४)
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न पाया कोय।	विषयोंका चिन्तन न करके भगवान्का चिन्तन करे। (५)
जो तन देखा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय॥	भगवान्की कृपापर विश्वास रखे। उनकी लीलाका, उनके
अतएव प्रत्येक मनुष्यको आत्मसुधारके लिये प्रयत्न	नाम, गुण, तत्त्वका चिन्तन करे। सन्तोंके चरित्रोंका, उनके
करना चाहिये। उन लोगोंको तो विशेषरूपसे करना	उपदेशोंका चिन्तन करे। (६) पुरुष स्त्री-चिन्तन और स्त्री
चाहिये, जो समाज और देशकी सेवा करना चाहते हैं।	पुरुष-चिन्तन न करे (यह सदाचार नहीं है)। (७)
वाणीसे या लेखनीसे वह कार्य नहीं होता, जो स्वयं वैसा	नास्तिक, अधर्मी, अनाचारी, अत्याचारी तथा उनकी
ही कार्य करके आदर्श उपस्थित करनेसे होता है। स्वयंके	क्रियाओंका चिन्तन न करे। (उनकी आलोचनाओंसे भी
सदाचारका प्रभाव अतुलनीय होता है। यहाँतक कि फिर	सूक्ष्म चिन्तन हो जाता है, अत: उनसे भी बचे)।
उपदेशकी भी आवश्यकता नहीं होती। महापुरुषोंके	वाणीका सदाचार—(१) किसीकी निन्दा-चुगली
आचरण ही सबके लिये आदर्श और अनुकरणीय होते हैं।	न करे। यथासाध्य परचर्चा तो करे ही नहीं। किसीकी भी
इसीलिये महापुरुषोंको यह ध्यान भी रखना पड़ता है कि	व्यर्थ आलोचना न करे। आलोचक दूसरेको तो सुधारता
उनके द्वारा कोई ऐसा कार्य न हो जाय, जो नासमझीके	है, पर स्वयं दोष-दृष्टिका अभ्यासी बनकर बिगड़ता जाता
कारण जगत्के लिये हानिकर हो। इसलिये वे उन्हीं निर्दोष	है। (२) झूठ न बोले। असत्य पापोंका बाप है और
कर्मोंको करते हैं, जो उनके लिये आवश्यक न होनेपर	नरकका खुला द्वार है। (३) कटु शब्द, अपशब्द न बोले।
भी जगत्के लिये आदर्शरूप होते हैं और करते भी इस	किसीका अपमान न करे। किसीको शाप न दे। अश्लील
प्रकारसे हैं, जिनका लोग सहज ही अनुकरण करके लाभ	शब्दका उच्चारण न करे। अश्लील शब्दके उच्चारणसे
उठा सकें। स्वयं सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णने	सरस्वती कुपित होती हैं। (४) नम्रतायुक्त मधुर वचन
अर्जुनसे गीतामें इसी दृष्टिसे कहा है—	बोले। मीठा वचन वशीकरण मन्त्र कहा गया है। मधुर
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।	वचनसे चारों ओर सुख उपजता है। सुख ही तो मनुष्यका
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥	साध्य है न? (५) हितकारक वचन बोले। वाणीसे भी
(३।२१)	किसीका अहित न करे। बातसे ही बात बिगड़ती है। (६)
'श्रेष्ठ पुरुष जैसा–जैसा आचरण करता है, दूसरे	व्यर्थ न बोले। अभिमानके वाक्य न बोले। अनर्गल,
लोग भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वे अपने	अहंकारकी वाणी बोलनेवालेकी महिमा घटा देती है।

अङ्क ] $*$ संयम-सदाचारसे युक्त जीवन ही कल्याणका साधन $*$ १५३	
**************************************	***********************************
(७) भगवद्गुण-कथन, शास्त्रपठन, नामकीर्तन, नामजप	पेशाब न करे। खड़े होकर पेशाब करनेका स्वभाव
करे। पवित्र पद-गान करे। स्वस्तिवाचन, मंगलपाठ आदि	पशुओंका होता है। (१२) जहाँ-तहाँ थूके नहीं; अपवित्र,
सदा कल्याणदायक होते हैं। (८) अपनी प्रशंसा कभी न	दूषित पदार्थोंका स्पर्श न करे। (१३) रोगकी, जहाँतक हो,
करे। आत्मश्लाघा अपने-आपको तिनकेसे भी हल्का बना	आयुर्वेदिक चिकित्सा कराये। आयुर्वेद-चिकित्सा अपने
देती है। आत्मप्रशंसककी सर्वत्र निन्दा होने लगती है।	देशकी जल-वायु और संस्कार-संस्कृतिके अनुरूप है।
(९) जिससे गौ-ब्राह्मणकी, गरीबकी या किसीके भी	(१४) देशी दवाइयोंमें भी तथा आवश्यक होनेपर एलोपैथिक
हितकी हानि होती हो, ऐसी बात न बोले। यह प्रयत्न करे	आदि दवाका सेवन करना पड़े तो उनमें भी जिनमें कोई
कि जो हितकर और प्रिय हो उसे ही बोले। (१०)	जान्तव पदार्थ हो, उनका प्रयोग बिल्कुल ही न करे।
आवश्यकता होनेपर दूसरोंकी सच्ची प्रशंसा भले ही करे,	प्राकृतिक चिकित्सापर, खान-पानके संयम आदिपर विशेष
किसीकी भी व्यर्थ खुशामद न करे। प्रशंसा या स्तुति अच्छे	ध्यान रखे। रामनामकी दवा ले। जब नाम भवरोगका
गुणों और कार्योंमें प्रवृत्ति कराती है और खुशामद झूठी	नाशक है तो साधारण रोगकी तो बात ही क्या? पर इसके
महिमाको उत्पन्नकर दम्भको उभारती है। (११) गम्भीर	लिये नाम-प्रभावपर अटूट नैष्ठिक विश्वास होना चाहिये।
विषयोंपर विचारके समय विनोद न करे। ऐसा हँसी-	जो साधनसम्पन्न बड़भागी पुरुष अपने दोष देखने
मजाक न करे, जो दूसरोंको बुरा लगे या जिससे किसीका	लगते हैं, उनके दोष मिटते देर नहीं लगती। फिर यदि
अहित होता हो। व्यर्थ हँसी-मजाक तो करे ही नहीं।	उनको अपनेमें कहीं जरा-सा भी कोई दोष दीख जाता
हँसी-मजाकमें भी अशिष्ट एवं अश्लील शब्दोंका	है तो वे उसे सहन नहीं कर सकते और पुकार उठते हैं
प्रयोग न करे। हँसी-मजाक भयंकर अनर्थके कारणतक	कि 'मेरे समान पापी जगत्में दूसरा कोई नहीं है।' एक
बन जाते हैं।	बार महात्मा गांधीजीसे किसीने पूछा था कि 'जब सूरदास,
शरीरका सदाचार—(१) किसी प्राणीकी हिंसा न	तुलसीदास-सरीखे महात्मा अपनेको महापापी बतलाते हैं,
करे। किसीको किसी प्रकारका कष्ट न दे। (२)	तब हमलोग बड़े-बड़े पाप करनेपर भी अपनेको पापी
अनाचार-व्यभिचारसे बचे। ये दोनों समाजसे और स्वर्गसे	मानकर सकुचाते नहीं, इसमें क्या कारण है ?' महात्माजीने
गिरा देते हैं। (३) सबकी यथायोग्य सेवा करे। सेवा धर्म	इसके उत्तरमें कहा था कि 'पाप मापनेका उनका पैमाना
है और सेवासे मेवा (परम सुख) मिलता है।(४) अपना	दूसरा था और हमारा दूसरा है।' सारांश यह कि दूसरोंके
काम अपने हाथसे करे। स्वावलम्बित्व आत्मशक्तिका	दोष तो उनको दीखते न थे और अपना क्षुद्र-सा दोष वे
सदुपयोग है। (५) गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणाम करे।	सहन नहीं कर सकते थे। मान लीजिये, भक्त सूरदासजीको
अभिवादनसे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। (६)	कभी क्षणभरके लिये भगवान्की विस्मृति हो गयी और
पवित्र स्थानोंमें, तीर्थोंमें, सत्संगोंमें सन्तोंके दर्शन-हेतु	जगत्का कोई दृश्य मनमें आ गया, बस, इतनेसे ही उनका
जाय। इससे संयम और सदाचारका बल मिलता है। (७)	हृदय व्याकुल होकर पुकार उठा—
मिट्टी, जल आदिसे अपने शरीरको पवित्र रखे। शुद्ध	मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जलसे स्नान करे। (८) पाखानेमें नंगा होकर न जाय।	जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी॥
टबमें बैठकर अथवा नंगा होकर स्नान न करे। यह सब	x x
हमारे शिष्टाचारके विरुद्ध हैं। (९) मलत्यागके लिये बाहर	मनुष्यको चाहिये कि वह नित्य-निरन्तर आत्म-
जाय तो नदी या तालाब आदिके किनारे भूलकर भी	निरीक्षण करता रहे और घण्टे-घण्टेमें बड़ी सावधानीसे
मलत्याग न करे। मलपर मिट्टी, बालू आदि डाल दे,	यह देखता रहे कि इतने समयमें मन, वाणी, शरीरसे मेरे
जिससे दुर्गन्ध न फैले। शौचाचारकी यह भारतीय पद्धति	द्वारा कितने और कौन-कौनसे दोष बने हैं और भविष्यमें
अत्यन्त उत्तम है। (१०) मल-मूत्रका त्याग करके	दोष न बननेके लिये भगवान्के बलपर निश्चय करे तथा
भलीभाँति हाथ-पैर धोये, कुल्ला करे। (११) खड़ा होकर	भगवान्से प्रार्थना करे कि वे ऐसा बल दें।

\* आत्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समाचरेत् \* **ा जीवनचर्या**− १५४ यह हमेशा याद रखना चाहिये कि जिसमें दूसरेका मनपर संयमका नियन्त्रण रखकर सबके साथ साध-शिष्ट

अकल्याण है, उससे हमारा कल्याण कभी नहीं हो सकता! व्यवहार करना संयम और सदाचार है। इसीसे मानवका

अतः सबके कल्याणकी भावना करते हुए इन्द्रियों और कल्याण हो सकता है।

गीतोक्त सदाचार ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज ) भगवान्ने अर्जुनको निमित्त बनाकर मनुष्यमात्रको दयारूप सद्गुणके पश्चात् दानरूप सदाचार प्रकट होता है। सदाचारयुक्त जीवन बनाने तथा दुर्गुण-दुराचारोंका त्याग करनेकी इसी प्रकार पहले चोरपने (दुर्गुण)-का भाव अहंता (मैं)-अनेक युक्तियाँ श्रीमद्भगवद्गीतामें बतलायी हैं। वर्ण, में उत्पन्न होनेपर व्यक्ति चोरीरूप दुराचार करता है। अत: आश्रम, स्वभाव और परिस्थितिके अनुरूप विहित कर्तव्य मनुष्यको सद्गुणोंका संग्रह और दुर्गुणोंका त्याग दृढ्तासे कर्म करनेके लिये प्रेरणा करते हुए भगवान् कहते हैं-करना चाहिये। दृढ़ निश्चय होनेपर दुराचारी-से-दुराचारीको श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो भी भगवत्प्राप्तिरूप सदाचारके चरम लक्ष्यकी प्राप्ति हो यद्यदाचरति सकती है। भगवान् घोषणा करते हैं-(गीता ३।२१) श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं, अन्य पुरुष भी अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ वस्तुत: मनुष्यके आचरणसे ही उसकी वास्तविक (गीता ९।३०) स्थिति जानी जा सकती है। आचरण दो प्रकारके होते हैं-अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। १-अच्छे आचरण, जिन्हें सदाचार कहते हैं और २-ब्रे आचरण, जिन्हें दुराचार कहते हैं। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है। सदाचार और सद्गुणोंका परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध तात्पर्य है कि बाहरसे साधु न दीखनेपर भी उसको है। सद्गुणसे सदाचार प्रकट होता है और सदाचारसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने यह पक्का निश्चय सद्गुण दृढ़ होते हैं। इसी प्रकार दुर्गुण-दुराचारका भी कर लिया है कि अब मेरेको केवल भजन ही करना है। परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सद्गुण-सदाचार (सत् स्वयंका निश्चय होनेके कारण वह किसी प्रकारके होनेसे) प्रकट होते हैं, पैदा नहीं होते। 'प्रकट' वही तत्त्व प्रलोभनसे अथवा विपत्ति आनेपर भी अपने ध्येयसे विचलित नहीं किया जा सकता। होता है, जो पहलेसे (अदर्शनरूपसे) रहता है। दुर्ग्ण-दुराचार मूलमें हैं नहीं, वे केवल सांसारिक कामना और साधक तभी अपने ध्येय-लक्ष्यसे विचलित होता अभिमानसे उत्पन्न होते हैं। दुर्गुण-दुराचार स्वयं मनुष्यने है, जब वह असत्-संसार और शरीरको 'है' अर्थात् सदा ही उत्पन्न किये हैं। अत: इनको दूर करनेका उत्तरदायित्व रहनेवाला मान लेता है। असत्की स्वतन्त्र सत्ता न होनेपर भी मनुष्यपर ही है। सद्गुण-सदाचार कुसंगके प्रभावसे भी भूलसे मनुष्यने उसे सत् मान लिया और भोग-संग्रहकी दब सकते हैं, परंतु नष्ट नहीं हो सकते, जब कि दुर्गण-ओर आकृष्ट हो गया। अत: असत्—संसार, शरीर,

परिवार, रुपये-पैसे, जमीन, मान, बड़ाईसे विमुख होकर

(इनसे सुख न लेकर और सुख लेनेकी इच्छा न रखकर) इनका यथायोग्य सदुपयोग करना है तथा सत्–तत्त्व

(परमात्मा)-को ही अपना मानना है। श्रीमद्भगवद्गीताके

अनुसार असत् (संसार)-की सत्ता नहीं है और सत्-तत्त्व

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(२।१६)

(परमात्मा)-का अभाव नहीं है-

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् »

**ाजीवनचर्या**−

सकते हैं। सर्वथा दुर्गुण-दुराचाररिहत सभी हो सकते हैं, किंतु कोई भी व्यक्ति सर्वथा सद्गुण-सदाचारसे रिहत नहीं हो सकता।

यद्यपि लोकमें ऐसी प्रसिद्धि है कि मनुष्य सदाचारी होनेपर सद्गुणी और दुराचारी होनेपर दुर्गुणी बनता है, किंतु वास्तविकता यह है कि सद्गुणी होनेपर ही व्यक्ति

दुराचार सत्संगादि सदाचारके पालनसे सर्वथा नष्ट हो

सदाचारी और दुर्गुणी होनेपर ही दुराचारी बनता है। जैसे-

\* गीतोक्त सदाचार*\** अङ्क ] जिस वास्तविक तत्त्वका कभी अभाव अथवा नाश (परमात्मा)-का है, जिससे नहीं होते हुए भी संसार 'है' नहीं होता, उसका अनुभव हम सबको हो सकता है। हमारा दीखता है। परमात्माके होनेपनका भाव दृढ़ होनेपर ध्यान उस तत्त्वकी ओर न होनेसे ही वह अप्राप्त-सा हो सदाचारका पालन स्वतः होने लगता है। भगवान् हैं-ऐसा दृढ़तासे माननेपर न पाप, अन्याय, रहा है। उस सत्-तत्त्वका विवेचन गीतामें भगवान्ने पाँच दुराचार होंगे और न चिन्ता, भय आदि ही। जो सच्चे प्रकारसे किया है-हृदयसे सर्वत्र परमात्माकी सत्ता मानते हैं, उनसे पाप हो **(१) सद्धावे।** (१७।२६) ही कैसे सकते हैं?\* परम दयालु, परम सुहृद् परमात्मा (२) साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते। (१७। २६) सर्वत्र हैं, ऐसा माननेपर न भय होगा और न चिन्ता होगी। (३) प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥ भय लगने अथवा चिन्ता होनेपर मैंने भगवान्को नहीं (१७।२६) (४) यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते। माना-इस प्रकार विपरीत धारणा नहीं करनी चाहिये, किंतु भगवान्के रहते चिन्ता, भय कैसे आ सकते हैं-ऐसा (१७।२७) माने। दैवी सम्पत्ति (सदाचार)-के छब्बीस लक्षणोंमें प्रथम (५) कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते। 'अभय' है (गीता १६।१)। (१७।२७) यह सत्-तत्त्व ही सद्गुणों और सदाचारका मूल अच्छे आचरण करनेवालेको कोई यह नहीं कहता कि आधार है। अत: उपर्युक्त सत् शब्दका थोड़ा विस्तारसे तुम अच्छे आचरण क्यों करते हो, पर बुरे आचरण करनेवालेको विचार करें। सब कहते हैं कि तुम बुरे आचरण क्यों करते हो? प्रसन्न (१) 'सद्भावे'--सद्भाव कहते हैं--परमात्माके रहनेवालेको कोई यह नहीं कहता कि तुम प्रसन्न क्यों रहते अस्तित्व या होनेपनको। प्राय: सभी आस्तिक यह बात तो हो, पर दु:खी रहनेवालेको सब कहते हैं कि तुम दु:खी क्यों मानते ही हैं कि सर्वोपिर सर्वनियन्ता कोई विलक्षण शक्ति रहते हो ? तात्पर्य है कि भगवान्का ही अंश होनेसे जीवमें दैवी सम्पत्ति स्वाभाविक है—'*ईस्वर अंस जीव अबिनासी।* सदासे है और वह अपरिवर्तनशील है। जो संसार प्रत्यक्ष प्रतिक्षण बदल रहा है, उसे 'है' अर्थात् स्थिर कैसे कहा चेतन अमल सहज सुखरासी॥' (मानस ७।११७।१)। जाय? यह तो नदीके जलके प्रवाहकी तरह निरन्तर बह आसुरी सम्पत्ति स्वाभाविक नहीं है, प्रत्युत आगन्तुक है और रहा है। जो बदलता है, वह 'है' कैसे कहा जा सकता है? नाशवान्के संगसे आती है। जब जीव भगवान्से विमुख होकर क्योंकि इन्द्रियों, बुद्धि आदिसे जिसको जानते, देखते हैं, नाशवान् (असत्)-का संग कर लेता है अर्थात् शरीरमें वह संसार पहले नहीं था, आगे भी नहीं रहेगा और अहंता-ममता कर लेता है, तब उसमें आसुरी सम्पत्ति आ वर्तमानमें भी जा रहा है—यह सभीका अनुभव है। फिर जाती है और दैवी सम्पत्ति दब जाती है। नाशवान्का संग छूटते भी आश्चर्य यह है कि 'नहीं' होते हुए भी वह 'है' के ही सद्गुण-सदाचार स्वत: प्रकट हो जाते हैं। रूपमें स्थिर दिखायी दे रहा है। ये दोनों बातें परस्पर सर्वथा (२) 'साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते'— विरुद्ध हैं। वह होता, तब तो बदलता नहीं और बदलता अन्त:करणके श्रेष्ठ भावोंको 'साधुभाव' कहते हैं। परमात्माकी है तो 'है' अर्थात् स्थिर नहीं। इससे सिद्ध होता है कि यह प्राप्ति करानेवाले होनेसे श्रेष्ठ भावोंके लिये 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। श्रेष्ठ भाव अर्थात् सद्गुण-सदाचार होनापन संसार-शरीरादिका नहीं है, प्रत्युत सत्-तत्त्व \* जो व्यक्ति भगवान्को भी मानता हो और असत्–आचरण (दुराचार) भी करता हो, उसके द्वारा असत्–आचरणोंका विशेष प्रचार होता है, जिससे समाजका बड़ा नुकसान होता है। कारण कि जो व्यक्ति भीतरसे भी बुरा हो और बाहरसे भी बुरा हो, उससे बचना बड़ा सुगम होता है; क्योंकि उससे दूसरे लोग सावधान हो जाते हैं। परंतु जो व्यक्ति भीतरसे बुरा हो और बाहरसे भला बना हो, उससे बचना बड़ा कठिन होता है। जैसे, सीताजीके सामने रावण और हनुमान्जीके सामने कालनेमि राक्षस आये तो उनको सीताजी और हनुमान्जी पहचान नहीं सके; क्योंकि उनका वेश साधुओंका था।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− दैवी सम्पत्ति है। 'देव' नाम भगवान्का है और उनकी शास्त्रविहित शुभकर्म हैं, वे स्वयं ही प्रशंसनीय होनेसे सम्पत्ति 'दैवी सम्पत्ति' कहलाती है। भगवान्की सम्पत्तिको सत्कर्म हैं, किंतु इन प्रशस्त कर्मोंका भगवान्के साथ सम्बन्ध नहीं रखनेसे वे 'सत्' न कहलाकर केवल अपनी माननेसे अथवा अपने बलसे उपार्जित माननेसे अभिमान आ जाता है, जो आसुरी सम्पत्तिका मूल है। शास्त्रविहित कर्ममात्रमें रह जाते हैं। यद्यपि दैत्य-दानव भी अभिमानकी छायामें सभी दुर्गुण-दुराचार रहते हैं। प्रशंसनीय कर्म तपस्यादि करते हैं, परंतु असद् भाव-सद्गुण-सदाचार किसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं दुरुपयोग करनेसे इसका परिणाम विपरीत हो जाता है— है। अगर ये व्यक्तिगत होते तो एक व्यक्तिमें जो सद्गुण-मृढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः। सदाचार हैं, वे दूसरे व्यक्तियोंमें नहीं आते। वास्तवमें ये परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥ सामान्य धर्म हैं, जिनको मनुष्यमात्र धारण कर सकता है। (गीता १७।१९) जैसे पिताकी सम्पत्तिपर सन्तानमात्रका अधिकार होता है, जो तप मूढतापूर्वक हठसे, मन, वाणी और शरीरकी ऐसे ही भगवान्की सम्पत्ति (सद्गुण-सदाचार)-पर पीड़ाके सहित अथवा दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये प्राणिमात्रका समान अधिकार है। किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है। वस्तुत: अपनेमें सद्गुण-सदाचार होनेका जो अभिमान आता प्रशंसनीय कर्म वे होते हैं, जो स्वार्थ और अभिमानके है, वह वास्तवमें सद्गुण-सदाचारकी कमीसे अर्थात् उसके त्यागपूर्वक 'सर्वभूतिहते रताः' भावसे किये जाते हैं। साथ आंशिकरूपसे रहनेवाले दुर्गुण-दुराचारसे ही पैदा होता शास्त्रविहित सत्कर्म भी यदि अपने लिये किये जायँ तो है। जैसे, सत्य बोलनेका अभिमान तभी आता है जब वे असत्कर्म हो जाते हैं, बाँधनेवाले हो जाते हैं। उनसे सत्यके साथ आंशिक असत्य रहता है। सत्यकी पूर्णतामें यदि ब्रह्मलोककी प्राप्ति भी हो जाय तो वहाँसे लौटकर अभिमान आ ही नहीं सकता। असत्य साथमें रहनेसे ही आना पड़ता है—'**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्ति**-सत्यकी महिमा दीखती है और उसका अभिमान आता है। नोऽर्जुन।' (गीता ८।१६) जैसे, किसी गाँवमें सब निर्धन हों और एक लखपित हो भगवान्के लिये कर्म करनेवाले सदाचारी पुरुषका तो उस लखपितकी महिमा दीखती है और उसका कभी नाश नहीं होता— अभिमान आता है। परंतु जिस गाँवमें सब-के-सब पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। करोड़पति हों, वहाँ लखपतिकी महिमा नहीं दीखती और न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥ उसका अभिमान नहीं आता। तात्पर्य यह है कि अपनेमें (गीता ६।४०) विशेषता दीखनेसे ही अभिमान आता है। अपनेमें विशेषता 'हे पार्थ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश होता दीखना परिच्छिन्नताको पुष्ट करता है। है और न परलोकमें ही। क्योंकि हे प्यारे! कल्याणकारी सद्गुण-सदाचारकी स्वतन्त्र सत्ता है, पर दुर्गुण-(भगवत्प्राप्तिके लिये) कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुराचारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। कारण कि असत्को तो दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।' सत्की जरूरत है, पर सत्को असत्की जरूरत नहीं है। (४) 'यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति झुठ बोलनेवाला व्यक्ति थोडे-से पैसोंके लोभमें सत्य बोल चोच्यते'—(गीता १७।२७)। 'यज्ञ, तप और दानमें जो सकता है, पर सत्य बोलनेवाला व्यक्ति कभी झूठ नहीं स्थिति है, वह भी 'सत्'—कही जाती है।' सदाचारमें यज्ञ, दान और तप-ये तीनों प्रधान हैं, किंतु इनका सम्बन्ध बोल सकता। (३) 'प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ भगवान्से होना चाहिये। यदि इन (यज्ञादि)-में मनुष्यकी युज्यते'—तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका दृढ़ स्थिति (निष्ठा) हो जाय तो स्वप्नमें भी उसके द्वारा प्रयोग किया जाता है। दान, पूजा, पाठादि जितने भी दुराचार नहीं हो सकता। ऐसे दृढ़निश्चयी सदाचारी पुरुषके

अङ्क ] * गीतोक्त * गातोक्त	सदाचार <b>*</b> १५९
	(परिवार)-की सेवा करता हूँ। इस प्रकार शास्त्र-विहित
निष्पीडितोऽपि मधु ह्युद्गमतीक्षुदण्डः।	कर्म करनेपर सदाचार स्वतः पुष्ट होगा। श्रीमद्भगवद्गीता
ईखको पेरनेपर भी उसमेंसे मीठा रस ही प्राप्त होता	(९।२७)-में भगवान् आज्ञा देते हैं—
है।	यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
(५) 'कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते'—	यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
(गीता १७।२७) 'उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म	'हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो
निश्चयपूर्वक सत्—ऐसे कहा जाता है।' अपना कल्याण	यज्ञ करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह
चाहनेवाला निषिद्ध आचरण कर ही नहीं सकता। जबतक	सब मेरे अर्पण कर।' यहाँ यज्ञ, दान और तपके अतिरिक्त
अपने जाननेमें आनेवाले दुर्गुण-दुराचारका त्याग नहीं	<b>'यत्करोषि'</b> और <b>'यदश्नासि'</b> —ये दो क्रियाएँ और आयी
करता, तबतक वह चाहे कितनी ज्ञान-ध्यानकी ऊँची-ऊँची	हैं। तात्पर्य यह है कि यज्ञ, दान और तपके अतिरिक्त हम
बातें बनाता रहे, उसे सत्-तत्त्वका अनुभव नहीं हो सकता।	जो कुछ भी शास्त्रविहित कर्म करते हैं और शरीर-
निषिद्ध और विहित कर्मोंके त्याग-ग्रहणके विषयमें भगवान्	निर्वाहके लिये खाना, पीना, सोना आदि जो भी क्रियाएँ
कहते हैं—	करते हैं, वे सब भगवान्के अर्पण करनेसे 'सत्' हो जाती
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।	हैं। साधारण-से-साधारण स्वाभाविक-व्यावहारिक कर्म
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥	भी यदि भगवान्के लिये किया जाय तो वह भी सत् हो
(गीता १६। २४)	जाता है। भगवान् कहते हैं—
'इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी	स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:॥
व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर शास्त्रविधिसे	(गीता १८।४६)
नियत कर्म ही करनेयोग्य है।' विहित कर्म करनेकी	'अपने स्वाभाविक कर्मोंके द्वारा उस परमात्माकी
अपेक्षा निषिद्धका त्याग श्रेष्ठ है। निषिद्ध आचरणके	पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।' जैसे,
त्यागके बाद जो भी क्रियाएँ होंगी, वे सब भगवदर्थ होनेपर	एक व्यक्ति प्राणियोंकी साधारण सेवा केवल भगवान्के
सत्-आचार (सदाचार) ही कहलायेंगी। भगवदर्थ कर्म	लिये ही करता है और दूसरा व्यक्ति केवल भगवान्के
करनेवालेसे एक बड़ी भूल यह होती है कि वे कर्मोंके	लिये ही जप करता है। यद्यपि स्वरूपसे दो प्रकारकी
दो विभाग कर लेते हैं। (१) संसार और शरीरके लिये	छोटी-बड़ी क्रियाएँ दीखती हैं, परंतु दोनों (साधकों)-का
किये जानेवाले कर्म अपने लिये और (२) पूजा-पाठ,	उद्देश्य परमात्मा होनेसे वस्तुत: उनमें किंचिन्मात्र भी अन्तर
जप-ध्यान, सत्संगादि सात्त्विक कर्म भगवान्के लिये मानते	नहीं है; क्योंकि परमात्मा सर्वत्र समानरूपसे परिपूर्ण हैं।
हैं; वास्तवमें जैसे पतिव्रता स्त्री घरका काम, शरीरकी	वे जैसे जप-क्रियामें हैं, वैसे ही साधारण सेवा-क्रियामें
क्रिया, पूजा-पाठादि सब कुछ पतिके लिये ही करती है,	भी हैं।
वैसे ही साधकको भी सब कुछ केवल भगवदर्थ करना	भगवान् 'सत्' स्वरूप हैं। अत: उनसे जिस किसीका
चाहिये। भगवदर्थ कर्म सुगमतापूर्वक करनेके लिये पाँच	भी सम्बन्ध होगा, वह सब 'सत्' हो जायगा। जिस प्रकार
बातें (पंचामृत) सदैव याद रखनी चाहिये—(१) मैं	अग्निसे सम्बन्ध होनेपर लोहा, लकड़ी, ईंट, पत्थर,
भगवान्का हूँ, (२) भगवान्के घर (दरबार)-में रहता हूँ,	कोयला—ये सभी एक-से चमकने लगते हैं, वैसे ही
(३) भगवान्के घरका काम करता हूँ, (४) भगवान्का	भगवान्के लिये (भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे) किये गये
दिया हुआ प्रसाद पाता हूँ और (५) भगवान्के जनों	छोटे-बड़े सब-के-सब कर्म 'सत्' हो जाते हैं, अर्थात्

\* आत्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समाचरेत् **\*** [ जीवनचर्या− १६० सदाचार बन जाते हैं। अर्थात् सदाचार-स्वरूप ही हो जायँगे। अतएव सत्स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीतामें सदाचार-सूत्र\* यही बतलाया गया एवं सर्वत्र परिपूर्ण सच्चिदानन्दघन परमात्माकी ओर ही

है कि यदि मनुष्यका लक्ष्य (उद्देश्य) केवल सत् अपनी वृत्ति रखनी चाहिये, फिर सद्गुण, सदाचार स्वत: (परमात्मा) हो जाय तो उसके समस्त कर्म भी 'सत्' प्रकट होने लगेंगे।

गृहस्थमें साधुतामय जीवनचर्या [ व्रजभाषामें ]

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

### ( गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज ) पापसे बचें काहू सन्तमें दृढ़ श्रद्धा होयवेपै सन्त-कृपासौं ही मायाके

## (१) गृहस्थमें रहते भये अपने प्रारब्धवश दु:ख आवें

तौ दु:ख सह लें, अभाव एवं कष्ट भोग लें, किंतु अधर्म, अन्याय, असत्य, चोरी, छल, कपट, दम्भसौं सर्वथा बचैं।

कबहूँ, कैसी हू परिस्थितिमें पाप न करैं।

यह कलिकाल है। अत्यन्त दुस्तर समय है। भविष्य

अच्छौ नहीं है। सर्वत्र कुसंगकी भरमार है। बहिर्मुखता बढ

रहीं है। सबको ध्यान भौतिकताकी ओर है। ऐसे समयमें

उत्तम पुरुषनकी वृत्ति हू पापमय बनवेकी सम्भावना रहै है, अतः बहुत ही सावधानीसौं चलवेकी आवश्यकता है।

जो पापसौं डरते भये श्रीभगवद्भजन एवं सत्संग करते रहेंगे, वही या दुस्तर समयकूँ पार कर पावेंगें। अन्यथा,

मनुष्यनकौ पतन ही विशेष होयगौ।

(२) पाप न बनै और धर्मपै चलै तौ आगे उठवेकौ मार्ग अपने आप बन जायगौ। पाप करकें पाप काटवेके

लिये दान-पुण्य, व्रतादिक धर्मनकौ आचरण करनौ, परन्तु पापवृत्तिकुँ न त्यागनौ, यह तौ और अधिक पाप

बढ़ानौ है। (३) पाप कर्म तत्काल ही मानसिक अशान्ति उत्पन्न करें हैं। शरीरकौ कष्ट भोग लेय, किंतु वह काम

न करै जाके परिणाममें मनमें अशान्ति और क्लेश होय।

शरीरको कष्ट इतनौ दु:खद नहीं होय है, जितनौ भयंकर कष्ट मानसिक अशान्तिसौं होय है।

(४) अज्ञानवश अपनेसौं पाप कर्म कबहुँ बन चुके हौंय तौ जब उन खोटे कर्मनके फल-भोगकौ समय आवै,

तब श्रीभगवान्कौ मंगल विधान मानकैं चुपकेसौं भोग लेय, श्रीभगवान्सों कुछ न कहै। श्रीभगवान् जीवमात्रकी

हितके लिये ही होय है। हाँ, आगे पाप न बनै। यह सावधानी रहै। दूसरी बात यह है कि जब पापके फल-भोगकौ

अम्मा हैं। अम्माद्वारा कियौ गयौ दण्डविधान शिशुके

समय आवै है तब तम बढ जाय है। वह उत्तम विचार नहीं आवन देय है। या समय वृत्ति गिरवेकी आशंका रहै है। शरीर, संसारमें आसक्ति बढवे लगै है। ऐसे समयपै जाल—पाप, प्रपंच, कामना एवं आसक्तिसौं बच सकै है। ऊँचे कर्म ही करे

**Г जीवनचर्या**−

यह संसार कर्मके अधीन है। हमने कर्म करते भये देखे हैं, भोगते भये हू देखे हैं, दूसरी जन्म हू देखी है। उत्तम कर्म करोगे तौ यहाँ सुख पाओगे और परलोक हू

बनेगौ। जीव कर्म करवेमें स्वतन्त्र है-पानीमें हाथ डारेगौ तौ ठण्डौ होयगौ, आँचमें हाथ डारेगौ तौ जरेगौ। जल और

अग्नि दोनों परमात्माके बनाये भये हैं। यह मनुष्यके

विवेकपै निर्भर है कि वह काहेमें हाथ डारै। संसारमें सत्, असत् दोऊ हैं, सत्की ओर बढ़ोगे, सत्कर्म करोगै तौ परिणाममें सुख-शान्ति, स्वर्ग, मोक्ष और श्रीभगवद्धामकी प्राप्तितक है सकै है। असत्कर्मकौ परिणाम—अशान्ति,

नीच पश्-पक्षी, तिर्यक् योनि और नरककी प्राप्ति है। मनुष्यजन्म पायकैं हू बुरे कर्म क्यों किये जायँ? बुरे कर्म सर्वथा त्याग देने चाहिये। असत् संसारके प्राणी-पदार्थनकी

चाह एवं आसक्ति ही पापमें कारण है। कामासक्तकूँ कुत्ता, सूअर बननौ परै है। धनासक्त लोभी प्राणीकूँ सर्प बननौं परै है। ऊँचे कर्म ही करौ। श्रीभगवान्की प्राप्तिके लिये ही समस्त कर्म करनौ यही सबसौं ऊँचे कर्म हैं। श्रीभगवान

एकमात्र उद्देश्यक्ँ ही देखें हैं कि यह काहेके लिये कार्य कर रह्यौ है। यदि उद्देश्यमें श्रीभगवान् हैं तौ क्रिया बिगड़ जायवेपै हू भावग्राही श्रीभगवान् वाकूँ अपनाय लेय हैं।

सतयुगी रहनी गृहस्थीमें रहते भये हू ऊँचे महात्मा बन सकें हैं। महात्मा कैसे बन सकें हैं? याके लिये आवश्यक है कि

जो काम करें संसारकूँ दिखायवेके लिये नहीं, सत्यतासौं ईश्वरकुँ रिझायवेके लिये बनै। आपलोग कलियुगमें रहते

भये हू सतयुगी रहनीसौं रहैं। हमने ऐसे सद्गृहस्थ देखे हैं जिनकौ जीवन कलियुगमें रहते भये हू सतयुगी रह्यौ। सतयुगी रहनी है-

> (१) शास्त्रसम्मत सदाचारकौ पूरौ पालन करै। (२) सात्त्विक आहार, सात्त्विक आचरण एवं

ामय जीवनचर्या <b>∗</b> १६५
******************************
शान्ति एवं आनन्दकी बाढ़ आ जाय है। घरमें रहते भये
ही लोक-परलोक दोऊ बन जायँ हैं।
गृहस्थमें साधुतामय व्यवहार
(१) सबसौं प्रेमकौ बर्ताव करै। सदैव यही ध्यान
राखै कि हमसौं कोई दु:ख न पावै।
(२) जहाँ ताँई है सकै सबकूँ सुख पहुँचायवे कौ,
सबकी सेवा, सहायता करवेकौ ही प्रयत्न रहै। अपने सुख
एवं अपनी सेवा, सहायता लैवे कौ कम विचार राखै।
(३) सन्त श्रीकबीरदासजीकौ एक दोहा है—
चार वेद छह शास्त्रमें बात सुनी है दोय।
सुख दीन्हे सुख होत है दुःख दीन्हे दुःख होय॥
(४) सबकौ हित ही सोचै, हित ही करै, हितभरी
बात ही कहै। काहूकौ अनिष्ट न सोचै, न करै, न
अनुमोदन ही करै।
(५) दूसरेकौ अनिष्ट सोचवेसौं, अनिष्ट करवेसौं
और अनिष्टकौ अनुमोदन करवेसौं दूसरेकौ अनिष्ट
होयगौ कि नहीं, यह तौ वाके प्रारब्धपै निर्भर है, किंतु
हमने अपने अनिष्टकूँ आमन्त्रण दै दियौ। वह शीघ्र ही
हमारे समीप आयवे वारौ है।
(६) जहाँ ताँई बनै सबकौ सम्मान ही करै। अपनौ
सम्मान न चाहै। जहाँ ताँई बन सकै काहूकौ अपमान न
करै। अपनौ अपमान होयवेपै असन्तुष्ट न हो, दीनता
धारण करै।
(७) अपनी उन्नति सोचनौ उचित है, किंतु काहूकी
अवनित न सोचै। काहूकी उन्नितसौं ईर्ष्या न कर बैठे,
अपितु दूसरेनकी उन्नतिकूँ देखकैं सदैव प्रसन्न रहै।
(८) काहूके दोष न देखै, न सुनै और न कहै।
जो बुरे व्यक्तिमें हू अच्छाई देखे है, वही सबसौं
उत्तम व्यक्ति है और जो उत्तम व्यक्ति में हू बुराई ढूढ़ै है,
वही सबसौं बुरौ है।
(९) संसारमें कहूँ राग अथवा द्वेष न रहै।
(१०) मित्र भले ही अनेकन होंय, किंतु या
भगवत्सृष्टिमें अपनौं एक हू शत्रु न बनावै।
(११) दो बातनकूँ सदा भूलातौ रहै—
(अ) अपनेसौं काहूकौ उपकार बन गयौ होय।
(ब) अपने साथ काहूने अपकार कियौ होय।
(१२) दो बातनकूँ कबहूँ न भूलै—
(अ) अपने साथ यदि काहूने उपकार कियौ होय।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− १६६ जइयौं। कौन जाने भविष्यमें कैसौ समय आवै। पूर्ण (ब) दुर्भाग्यवश अपनेसौं काहूकौ अपकार बन गयौ तत्परता, पूरी लगन, पूरौ उत्साह तथा पूर्ण उल्लासके साथ होय। (१३) प्राणिमात्रके प्रति हित, सुख, सम्मानकी जुट परौ जीवनकी सफलतामें। भावना तथा सहानुभृति, सेवा एवं प्रेम अन्त:करणकी शीघ्र हमारे कहवेकौ यह तात्पर्य कबहूँ नहीं है कि घरके शुद्धि एवं श्रीभगवत्कृपा-प्राप्तिकौ अचूक साधन है। प्राणीनकौ पालन-पोषण न करौ। यद्वा घर त्यागकैं सद्गृहस्थ साधकके लिये उपदेश दिखाऊ विरक्त बन जाऔ। नहीं, कदापि नहीं। जब ताँई (१) ऐसौ अभ्यास बढाऔ कि निरन्तर श्रीनाम-जप भोग्य है-रहौ गृहस्थमें ही किंतु अपने पूर्वजन्मनकी कमाई संसारी कामनमें ही मत खोय दीजौ। होयवे लगै। (२) परधन, परस्त्रीके परित्यागकी बात तुमसौं (७) परदोषदर्शन, परनिन्दा, द्रोह, कठोरता तथा कहवेकी आवश्यकता नहीं है। ये दुर्गुण तौ तुममें है ही हिंसा इनकौ सर्वथा परित्याग कर देव। नहीं। हाँ, या बातको बहुत ही ख्याल रहै कि हमसों (८) जब संसारी काम करी हो तो पूरी लगनसों जुट काहूकौ अनिष्ट न होन पावै। परौ हौ। ऐसे ही जब भजनमें लगौ तब पूरे उल्लाससौं यामें जुट परौ। ईमानदारी तौ तब है जब भजनमें सौ गुनौ (३) जब तुम गृहस्थ हौ, तब गृहके समस्त प्राणीनकौ पालन-पोषण, सन्मार्गमें लगानौ तथा श्रीभगवद्भक्त उत्साह अधिक होय। बनानौ यह कर्तव्य है। (९) श्रद्धावान्, गम्भीर, सरल, पूर्ण सदाचारी, सत्प्रयत्नद्वारा द्रव्य-संचय करनौ यहू कर्तव्य है। सुशील, नम्र, गुरुजनसेवी, दीन-सहायक, परोपकारी, हाँ, यह सब करते भये हू इनमें ही आसक्त न है उदार, एवं क्षमाशील बनवेकौ अभ्यास बढ़ाऔ। (१०) श्रीजीवनधनमें प्रेम बढ़ायवेकौ पूर्ण प्रयत्न सन्त श्रीकबीरदासजीको यह पद सदैव ध्यान राखनो करते रहौ। इनसौं कबहूँ कछु काम मत करइयौं। ये तौ केवल आत्मीयता तथा प्रियताके पात्र हैं। कि— (११) परम कल्याणके लिये जीवनमें दो बातें परम 'रहना नहिं देश विराना है।' योग्य डॉक्टर अपने अस्पतालमें आये भये रोगीकी कर्तव्य हैं-आरोग्यताको जैसे पूरौ ख्याल राखै है, अपनौ पूर्ण (अ) सुख-दु:ख, हानि-लाभ, मान-अपमान तथा संयोग-वियोग आदिक द्वन्द जो आ जायँ, उनकूँ सहतौ कर्तव्यपालन करै है, किंतु काहू रोगीमें आसक्त नहीं होय, एवमेव रहनी बनाऔ। जाय। जानै इतनौ बडौ संसार रचौ है, वह याके पालन-(ब) हाँ, आगेके लिये अपनौ मार्ग परिमार्जित तथा पोषणमें पूर्ण समर्थ है। तुम तौ निमित्तमात्र हो। उज्ज्वल बनातौ जाय। (४) उचित यह है कि संसारी वस्तुनकूँ प्रारब्धकी (१२) जहाँ ताँई है सकै परिश्रम तथा यथासाध्य देन समझकें इनके यथालाभमें ही सन्तोष करै। हाँ, पूर्ण सत्यताके साथ व्यापार करते रहियौं। कैसी हू परिस्थिति प्रयत्न करै अपने सच्चे घरके ताँई सामान जुटायवेमें। आ जाय, अपनी सत्यताकौ त्याग मत करियौं। श्रीभगवद्-विधानकी मंगलमयतापै पूर्ण विश्वास बनाये रहियौं। मनमें सच्चौ घर तौ सदैव एक ही है-परलोक। जो समस्त जीवन अपने समय, विद्या, चातुर्य, शरीर तथा सबरे अशान्ति न होन पावै। अन्त:करणकुँ संसारी कामनमें ही जुटायकैं थकाय डारै हैं, (१३) यदि नेकह् अवकाश मिलै तौ भजन करवेमें वे परलोकके सुधारसौं वंचित रह जायँ हैं। यह मूर्खता तुम मत चुकियौ। मत कर बैठियौं। या जीवनकूँ अधिक झंझटनमें मत फॉॅंसियों। (५) सबके प्यारे, सबसौं न्यारे, ऐसी रहनी रहिये। यही विचारते रहियौं तथा पूर्ण प्रयत्न करते रहियौं (६) परलोकके सुधारकूँ आगेके लिये मत टालते कि याही जीवनमें भजन बन जाय।

भारतीय जीवनचर्याके अमृत-सूत्र ( पंचखण्डपीठाधीश्वर आचार्य स्वामी श्रीधर्मेन्द्रजी महाराज )

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

### हिन्दुत्वके पंचप्राण एवं गोमाता भारतीय जीवनचर्याका आधार भारतकी सनातन

संस्कृति है और भारतीय संस्कृतिका मूल सत्य सनातन हिन्दुधर्म है। हिन्दुधर्म एवं संस्कृतिके पंच-प्राण हैं-गीता,

गंगा, गायत्री, गाय और गोविन्द।

१८२

इन पाँचोंके केन्द्ररूपमें गोमाता प्रतिष्ठित हैं-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीभोंक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

उपनिषद् कामधेनु हैं, दुहनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं, अर्जुन बछड़ा अर्थात् निमित्त हैं, पीनेवाले संसारके

समस्त विवेकीजन हैं और दूध श्रीमद्भगवद्गीता है। गीताको कामधेनुके दुग्धामृतकी उपमा देनेका निहितार्थ है

कि गोदुग्ध गीताके समान और गीता गोदुग्धके समान है। इसी प्रकार गंगा गोमूत्रमें समाहित हैं। कलियुगमें गंगाजल प्रदूषित हो जाय तो भी गोमूत्र गंगोदकका कार्य

करता रहेगा। गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमय और गोमृत्रके पंचगव्यको ग्रहण किये बिना यज्ञोपवीत सम्भव नहीं और यज्ञोपवीतके

बिना गायत्री-ग्रहण करनेका अधिकार नहीं मिलता। अत: गोमाता ही गायत्री-सिद्धिका अधिकारी बनाती हैं। पाँचवें प्राण गोविन्द हैं, जो गोमाता और उसके

वंशकी सेवा एवं रक्षाका मानवताको पाठ पढ़ानेके लिये ही पृथ्वीपर अवतरित होते हैं। इस प्रकार हिन्दुत्वके पंच-प्राणोंमें गोमाताकी महत्ता सर्वोपरि और असंदिग्ध है।

संस्कारोंकी महत्ता

अबोध शिशुको जैसे संस्कार प्राप्त होंगे, उन्हींके

अनुसार उसकी वृत्ति, स्वभाव, चरित्र, व्यवहार और जीवन विकसित और व्यक्त होंगे। दुर्भाग्यवश स्वाधीनताके

पश्चात् स्वतन्त्र भारतमें भारत-सन्तानोंको भारतीयताके संस्कार दिये जानेकी कोई व्यवस्था नहीं की गयी। शिक्षाको संस्कारोन्मुखी न बनाकर रोजगारोन्मुखी बना दिया

गया, इसी कारण भारतकी नयी पीढ़ी भारतीय जीवन-

दर्शन एवं भारतीय जीवनचर्यासे सर्वथा अनिभज्ञ है।

भारतीय जीवनकी सुगन्ध ढूँढ्ना व्यर्थ है। इसलिये अपनी सन्तानोंको भारतीयताके सुसंस्कार देनेका कार्य माता-पिता, दादा-दादी अर्थात् वरिष्ठ

अभिभावकोंको तत्परतापूर्वक करना चाहिये। पर्व, उत्सव एवं परम्परा माता-पिताका प्राथमिक कर्तव्य है कि वे अपने

शिशुओंको भारतीय पर्वीं, उत्सवों तथा धर्म-संस्कृतिकी

'कान्वेण्ट कल्चर' में पले और ढले युवक-युवितयोंमें

**Г जीवनचर्या**−

परम्पराका परिचय करायें। वरिष्ठजन, गुरुजन एवं अतिथियोंके प्रति सम्मानका व्यवहार सिखायें और यदि वे स्वयं असमर्थ हैं तो ऐसे विद्यालयोंमें उन्हें भेजें, जहाँ सुसंस्कारोंको

ही महत्त्व दिया जाता हो। प्रणाम कल्पवृक्ष है प्रतिदिन प्रात:कालीन दिनचर्याका प्रारम्भ पृथ्वीमाता,

गोमाता, भगवान्की प्रतिमा, माता-पिता, वरिष्ठजन एवं भगवान् सूर्यको प्रणाम करनेसे होना चाहिये। प्रणाम भक्ति-भावसे किया जाय, अनिच्छापूर्वक नहीं, औपचारिकतावश भी नहीं। प्रणाम करनेसे आशीर्वाद मिलता है। आशीर्वादोंसे

दिन आरम्भ करना परम सौभाग्यकी बात है। इसी प्रकार रातमें सोनेके पूर्व परिवारके सभी वरिष्ठ सदस्योंको प्रणाम करके उनकी अनुमित लेकर सोनेसे बुरे स्वप्न नहीं आते, तनाव नष्ट होता है और आयुकी वृद्धि होती है। निस्सन्देह

सम्बन्धोंकी रक्षा करता है एवं उन्हें सुदृढ़ बनाता है। गुड मार्निंग बोलेनेसे क्या होगा? गुड मार्निंग, गुड नून, गुड ऑफ्टर नून, गुड डे, गुड इवनिंग या गुड नाइट बोलेनेसे कुछ भी 'गुड' उसी प्रकार

नहीं होता, जैसे स्वादिष्ट व्यंजनों, मिष्टान्नों अथवा फलोंका स्मरण करनेसे वे मुँहमें नहीं आ जाते। जिन्हें मंगलमय प्रभात, मध्याहन, अपराह्न, दिवस या रात्रिकी कामना हो,

प्रणाम कल्पवृक्ष है, जो परिवारकी, पारिवारिकताकी एवं

उन्हें सदा और सर्वत्र केवल भगवान्को ही स्मरण करना चाहिये; क्योंकि सभी अमंगलोंका नाश एवं मंगलोंकी

सृष्टि करनेवाले केवल भगवान् हैं।

\* भारतीय जीवनचर्याके अमृत-सूत्र \* अङ्क ] \* अतएव अपनी ओरसे 'गुडनेस' का 'मैनेजमेण्ट' दीपक जलाकर, स्वस्तिवाचन कराकर, प्रसाद-मोदक करनेके अहंकारको छोड़कर 'जय श्रीराम', 'जय श्रीकृष्ण', वितरण करके जन्म-दिवसका उल्लास व्यक्त करें और 'जय रामजीकी', 'जय सियाराम', 'राम-राम' या 'वन्दे मधुर स्वरसे बधाई दे—'जन्म-जयन्ती मंगलमय हो।' वर्षारम्भ चैत्रसे ही होता है मातरम्' कहकर ही सामान्य अभिवादन करना चाहिये। मूर्खतापूर्ण है 'बर्थ-डे सैलिब्रेशन' हिमाच्छादित ठिठुरती धरतीपर पतझड्के मौसममें रातके १२ बजे, अन्धकारके साम्राज्यमें, सूर्यकी ३१ दिसम्बरकी रात १२ बजे, शोर मचाकर, शराब पीकर, अनुपस्थितिमें नये दिनके प्रारम्भकी कल्पना अविवेककी परपुरुषों या परस्त्रियोंके साथ नाच-गाकर वर्षारम्भ भारतीय पराकाष्ठा है। एक अरब हैलोजन लाइटें भगवान् सूर्यके जीवनचर्या तथा वैज्ञानिकताके विपरीत है। एक प्रतिशत प्रकाशकी बराबरी नहीं कर सकतीं। भगवान् वर्षारम्भ वसन्त ऋतुमें नवपल्लवित वृक्षों और सूर्य केवल प्रकाश ही नहीं देते; वे ऊष्मा, ऊर्जा, उत्साह, नवरागपूर्ण पुष्पोंके प्राकृतिक उल्लासमें चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे होता है। भारतीय मास-पक्ष सर्वथा वैज्ञानिक हैं। शुक्लपक्ष बल, स्फूर्ति, बुद्धि, प्रसन्नता और जीवन भी देते हैं। वे ही पर्यावरणको जीवनके अनुकूल बनाते हैं। वे विकासका तथा कृष्णपक्ष क्षयका प्रतीक है। सातों वार ऋतुकर्ता हैं, वे ही जलदाता हैं; समस्त अन्नों, फलों, वृक्षों, ग्रहोंपर एवं बारह मास चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़, वनस्पतियों, औषधियों और धातुओं तथा खनिजोंका सृजन श्रवण, भद्रा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा और एवं विकास उन्हींकी कृपासे होता है। भगवान् सूर्यके उत्तराफाल्गुनी-जैसे नक्षत्रोंपर आधारित हैं। अस्तके छ: घंटे पश्चात् एवं उनके उदय के छ: घंटे पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके दिन सृष्टिका, पृथ्वीका सृजन नये दिनका प्रारम्भ हुआ मान लेना पश्चिमकी अवैज्ञानिक, भगवान्ने किया था; इसलिये भगवती पृथ्वीके जन्ममहोत्सवके अप्राकृतिक मनमानीका ज्वलन्त प्रमाण है। सारे संसारमें रूपमें नवदिवसीय मातृपूजनका अनुष्ठान करते हुए भारतीय कालगणना-पद्धति ही वैज्ञानिक है और विश्वसनीय नववर्षका स्वागत करना ही तर्कसंगत और प्रकृति-है, वही तर्कसम्मत एवं तर्कसंगत है और उसके अनुसार सम्मत है। दिनका शुभारम्भ भगवान् सूर्यके उदय तथा समापन उनके लक्ष्मी-पूजन अस्तसे होता है, इसलिये जन्मदिन या अन्य संस्कारोंको भारतीय प्रज्ञाने सर्वत्र मातृ-सत्ताके दर्शन किये हैं। सम्पन्न करनेकी भारतीय परम्परा दिनमें ही है, परंतु पृथ्वीमें, नदियोंमें, वृक्षोंमें, गीता, श्रुति आदि ग्रन्थोंमें, पश्चिमकी रात्रिप्रधान निशाचरी कल्चरका अन्धानुकरण गायत्री-जैसे मन्त्रोंमें मातृदर्शन करना, धनमें लक्ष्मीमाता, करके रातके बारह बजे केक कटवाकर, मोमबत्तियाँ ज्ञानमें सरस्वतीमाता तथा शस्त्रोंमें शक्ति या दुर्गा-कालीमाताके दर्शन करना हिन्दूदर्शनकी अद्वितीय विशेषता है। इसलिये बुझाकर 'बर्थ-डे' सैलिब्रेट करना और स्वस्तिवाचनके स्थानपर 'हैप्पी बर्थ-डे' चीखना मूढ़ताकी पराकाष्ठा ही वसन्तपंचमीपर सरस्वती-पूजन, विजयादशमीपर दुर्गापूजन तो है। एवं दीपावलीपर लक्ष्मी-पूजनका आयोजन भारतीय प्रात:स्नान करके भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर मन्दिरमें जीवनचर्याके महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। भगवानुकी पूजा करके सभी गुरुजनोंके आशीर्वाद ग्रहण सम्पूर्ण सुष्टिके विशेषतया मानवीय सुष्टिके संचालनकी प्रक्रियामें धनकी भूमिका सर्वोपिर है, किंतु उसके निरंकुश करके, हवन करके, दीनों-दुखितों, वंचितों, पीड़ितों एवं संग्रह और दुरुपयोगसे केवल वैषम्य और विषाद ही

करके, हवन करके, दीनों-दुखितों, वंचितों, पीड़ितों एवं प्रक्रियामें धनकी भूमिका सर्वोपिर है, किंतु उसके निरंकुश गोमाताकी सेवा-सहायता करके महोत्सवपूर्वक जन्मिदवस संग्रह और दुरुपयोगसे केवल वैषम्य और विषाद ही मनाना चाहिये। उत्पन्न होता है, इसिलिये भारतीय महर्षियोंने कहा—धन उत्सव मनाना हो तो सन्ध्यामें गणपित-प्रतिमाके लक्ष्मी है और लक्ष्मी माँ है, माँ सबका पालन करती है, सम्मुख अपने जीवनके विगत वर्षोंकी संख्याके बराबर पोषण करती है, सबको विकसित करती है, वह प्रणम्या

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− है, उससे प्रसाद ग्रहण करोगे ओर उसे सबतक पहुँचाओगे आदमी)-में कहाँसे आयेगी? 'श्रीमान्' या 'श्रीमन्' के तो सुखी रहोगे, किंतु यह ध्यानमें रखो कि वह भोग्या नहीं सामने 'सर' फटीचर नहीं लगता? 'महोदया' में क्या कमी है, उसे भोगनेकी लालसा मत रखना, अन्यथा नष्ट हो है, जो 'मैडम' बोला जाय? 'महिला' का मुकाबला 'लेडी' कैसे करेगी? 'देवियो' और 'सज्जनो' की भावना जाओगे। कर्तव्यपालनके विशिष्ट दिन 'लेडीज़ एण्ड जेण्टिलमैन' में कैसे व्यक्त होगी? 'मदर्स-डे', 'फादर्स-डे', 'वर्कर्स-डे' या 'वैलेण्टाइन-इसलिये जो लोग अपने परिवारको बाजार नहीं डे' इसी प्रकारकी मूर्खताएँ हैं। जीवनका प्रत्येक दिन बनाना चाहते, उन्हें परिवारके प्रत्येक शिशु, बालक, माता-पिता, गुरुजन, मित्र, अतिथि, अध्यापक, श्रमिक, किशोर और युवा सदस्यको भारतीय सम्बन्धों एवं सम्बोधनोंका कर्मचारी या ग्राहकजनके प्रति निरन्तर सद्व्यवहार एवं तन्त्र समझाना और उसीके अनुसार सम्बन्धितोंको सम्बोधित करने तथा आदर देनेके संस्कार देने चाहिये। सम्मान व्यक्त करनेका, उनकी यथोचित सेवा-सहायता वेशभूषा, भोजन और भावना करनेका दिन होना चाहिये। भारतीय जीवनचर्या जन्मसे मृत्युपर्यन्त सतत एवं भारतीय वेशभूषा भारतकी जलवायु एवं प्राकृतिक निरन्तर मन-वचन और कर्मसे सबके प्रति सदा सद्व्यवहार पर्यावरणके अनुरूप हमारे पूर्वजोंने निर्धारित की थी। करनेके संस्कारोंसे प्रेरित, प्रोत्साहित और अनुप्राणित होती उसकी व्यावहारिकता, उपयोगिता एवं सौन्दर्यके प्रति अपने बच्चोंके मनमें आकर्षण और अनुराग उत्पन्न न है। औपचारिकता-पूर्तिहेतु यन्त्रवत् प्रदर्शनकी प्रवृत्ति 'वेस्टर्न कल्चर' की देन है। करके उन्हें शैशवसे ही जीन्स, पैंट और सिंथेटिक रेडिमेड एकनिष्ठ प्रेम और परिवार-संस्कृति टाइट कपड़ोंसे लादे रखना और असंगत, अप्रासंगिक भारतीय जीवन-दर्शन या भारतीय संस्कृतिका मूल अंग्रेजी वाक्यों, अक्षरों एवं डिजाइनोंसे भरपूर गारमेण्ट्स परिवार है। जबकि पश्चिमी सभ्यताका आधार बाजार है। पहनाना अत्यन्त शर्मनाक बात है। यही बात भोजनके परिवारमें सब कुछ टिकाऊ और बाजारमें सब कुछ विषयमें समझी जानी चाहिये। बिकाऊ होता है। पश्चिमका बाजारवाद भारतीय जीवनचर्याको संसारका सर्वश्रेष्ठ भोजन भारतीय भोजन है। स्वादमें, सुरुचिमें, पौष्टिकतामें, सात्त्विकता और सुपाच्यतामें भारतके नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये कटिबद्ध है। बाजारमें किसीका किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं। वहाँ भोजनों, व्यंजनों एवं मिष्टान्नोंकी कहीं कोई तुलना नहीं सब कुछ पैसा है। परिवारमें सबसे सबके अटूट सम्बन्ध है। अपनी सन्तानोंमें भारतीय भोजन और व्यंजनोंके प्रति होते हैं और उनका आधार नि:स्वार्थ स्नेह एवं प्यार होता है। अट्ट रुचि और निष्ठा उत्पन्न करना प्रत्येक माता-पिता भारतीयताकी भावनात्मक आत्मीयताके द्योतक हमारे और अभिभावकका कर्तव्य है। भोजन भी हाथ-पैर धोकर यहाँ प्रचलित सम्बन्धसूचक सम्बोधन हैं। माँ, अम्मा, पवित्र आसनपर बैठकर ही होना चाहिये। पिताजी, बाबूजी, दादाजी, दादीजी, नानाजी, नानीजी, भाई-भारतीय भावना भोगोंपर नहीं भक्तिपर केन्द्रित है। बहन-जैसे सम्बन्धसूचक नाम और सम्बोधनोंकी तुलनामें प्रत्येक प्राणी और पदार्थमें भगवान्की या भगवत्कृपाकी पश्चिम और अंग्रेजी—दोनों कितने दरिद्र हैं? केवल झलक पाना भारतीय भावनाका मूल है। अन्नमें भी यही अंकल एवं आंटीसे वहाँका काम चल जाता है। भाव रहना चाहिये। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश क्या पश्चिमी जीवनमें समधी, समधिन, जेठ, भगवद्रूप हैं। वृक्ष, वनस्पति, अन्न, फल, शाक, पशु, जेठानी, देवर, देवरानी, आचार्यश्री, आचार्यपत्नी, गुरुदेव, पक्षी, जीव, जन्तु, पर्वत, सर, सागर एवं सरिताएँ—सभी गुरुमाता-जैसे सम्बन्धों और सम्बोधनोंकी सुगन्ध किसीने भगवत् स्वरूप हैं, यह भावना ही भारत-भारती है, इसे अनुभव की है? अध्यक्षकी गरिमा 'चेयरमैन' (कुर्सी-विकसित करोगे तो जग और जीवन दोनों धन्य हो जायँगे।

\* भारतीय जीवनचर्याके अमृत-सूत्र \* अङ्क ] करके यज्ञके यजनका अधिकारी बनना चाहिये। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते भारतीय भावना नारीके सर्वोच्च सम्मानकी भावना है। महिलाएँ एवं शूद्र ऋणी नहीं हैं, ये दोनों समाजकी भारतीय समाज पुत्रीको भी जगज्जननी माता दुर्गा अथवा इतनी अधिक सेवा करते हैं कि समाज ही इनका ऋणी लक्ष्मीके रूपमें देखता है। हमारे द्वारपर हमारी बेटीको ले है; अत: इन्हें ऋण-सूचक यज्ञोपवीत धारण करनेकी जानेके लिये सुसंस्कारसम्पन्न कुलका वर बारात लेकर आवश्यकता नहीं होती। विवाहिता महिलाओंको मंगलसूत्र आये—यह कामना परम पावन कामना है। इसी प्रकार और सिन्दूर तथा शूद्रोंको तुलसीकी कंठी या माला धारण अपने वंशके विस्तार तथा कुलके गौरवको बढ़ानेवाली करना चाहिये। वधुका हमारे कुलमें पदार्पण हो-यह अभिलाषा अपने तिलक प्रत्येक भारतीय सन्तानके ललाटकी शोभा तथा सम्पूर्ण समाजके लिये मंगलमयी है। है। उससे भाग्य चमकता है और दुर्भाग्यका प्रभाव क्षीण इसलिये प्रत्येक विवेकी भारतीय परिवारको भावी होता है। कुलवधूके पिताके द्वारपर विनम्रतापूर्वक उपस्थित होकर पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके द्वार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, वहीं पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न करके वधूको ससम्मान गन्धको ग्रहण करनेवाले कान, नेत्र, जिह्वा (मुख) एवं अपने घर लाना चाहिये। वधूका अपने घरमें आगमन नासिका तथा त्वचाके कोटिश: रोमकूप ललाटके नीचे ही लक्ष्मीका आगमन है और लक्ष्मीको उसके घर जाकर रहते हैं। इन सबके शीर्षपर पुरुषोंद्वारा शिखा एवं तिलक आदर-सम्मानपूर्वक अपने घरमें लाना-यही शिष्ट और तथा महिलाओंद्वारा सिन्द्र और बिन्दीको यदि यथोचित सज्जनोचित आचरण है। स्थानपर स्थापित किया जाता है तो किसी भी देहद्वारसे दहेजकी वसूली और कन्याको उपहार अनिष्ट, अमंगल और अशुभ अन्त:करणमें उसी प्रकार अपनी बेटीको प्रसन्नतापूर्वक अधिक-से-अधिक प्रवेश नहीं कर पाते, जिस प्रकार निवास-स्थानके द्वारपर उपहार देना भारतीय माता-पिताका कर्तव्य है, किंतु अपने स्थापित गणपितके नीचेसे कोई अनिष्ट-अमंगल भीतर समधीसे दहेज माँगना, अपने पुत्रके पालन-पोषण या शिक्षा-प्रविष्ट नहीं हो पाते। दीक्षापर व्यय किये गये एक-एक पैसेको वसूल करना यह सदा स्मरण रखा जाना चाहिये कि सुहाग-सिन्दूर अशिष्टता, अकुलीनता तथा अभद्रताका ही परिचायक है। मस्तकके बीचोंबीच निकाली गयी सीधी माँगमें भरा जाना पिताकी सम्पदामें विवाहिता बेटियोंका समान अधिकार चाहिये और बिन्दी लाल ही होनी चाहिये। सुहागसिन्दूर घोषित करके शासनने सनातन स्नेह, आत्मीयता और निष्काम एवं सुहागबिन्दी आस्था तथा मंगलका प्रतीक है। सम्बन्धोंमें विष घोल दिया है; भारतीय समाजको नष्ट होनेसे भगवान्के श्रीविग्रह एवं चित्र कहाँ हों? बचानेके लिये बेटियोंको आजीवन देते रहने और उन्हें अखबारोंमें बेरोकटोक भगवानुके चित्र छापना, लेने-सँभालते रहनेकी सनातन परम्पराकी रक्षा की जानी चाहिये। देनेके लिफाफोंपर गणपतिके चित्र छापना प्रतिबन्धित शिखा, सूत्र और तिलक किया जाना चाहिये; क्योंकि अखबारोंकी रद्दी एवं उपयोगमें मस्तकपर रखी गयी शिखा अन्तरिक्षमें व्याप्त लिये गये गिफ्ट कवर्सको फाड़ा जाना तथा उनका जैसा-ऊर्जादायिनी विद्युत् तरंगोंको ग्रहण करके मस्तिष्कको तैसा उपयोग होना स्वाभाविक है। उस स्थितिमें भगवानुके आरोग्य और ऊर्जा प्रदान करती है। चित्रोंका अपमान होता है। दूकानों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानोंके नामकरणमें भी यज्ञोपवीतके तीन सूत्र देव-ऋण, ऋषि-ऋण और

भगवानुका अपमान न हो—यह ध्यान रखा जाना चाहिये।

बजरंगबली श्रृ हाउस, दुर्गा मीट शॉप, बालाजी पोल्ट्री

फॉर्म, विष्णु वाइन स्टोर, तुलसी जाफरानी जर्दा, हनुमान्

पित-ऋणको चुकानेके लिये यज्ञकर्म, परोपकार, स्वाध्याय,

ज्ञानार्जन एवं सत्कर्म करते रहनेकी प्रेरणा देते हैं। प्रत्येक

ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य-बालकको यज्ञोपवीत धारण

वनस्पति, छत्रपति शिवाजी छाप सिलर बीड़ी, गोपाल छाप यह नहीं भूलना चाहिये कि भगवान् कृष्णने राजसूय जर्दा-जैसे ब्राण्ड हिन्दुओंकी पतित मनोवृत्तिके ही परिचायक यज्ञमें भोजन करनेवाले अतिथियोंकी जुठी पत्तलें उठायी हैं। थीं । स्वरुचिभोज या कुरुचिभोज? स्थिरतापूर्वक हाथ-पैर धोकर जमीनपर आसन बिछाकर, जन्मदिवसों, विवाहों अथवा उद्घाटनों-जैसे अवसरोंपर बैठकर भोजन करना तथा कराना संसारकी सर्वश्रेष्ठ स्वरुचिभोजके नामसे कुरुचिभोजों, गिद्धभोजों या पशुभोजोंका भोजनपद्धति है।

\* आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत् \*

आयोजन भारतीय संस्कृतिकी कपालक्रिया है। खडे-खडे भोजन करना केवल पशुओंका लक्षण है। आदरपूर्वक अच्छे आसनोंपर बैठाकर सम्मानजनक ढंगसे जो आयोजक

निमन्त्रणको स्वीकार करना भी पडे तो वहाँ भोजन कदापि

नियम हैं।

ऐसे आयोजक तर्क देते हैं कि इतने जन-समृहको

किसी भी स्थितिमें मांस, मछली, अण्डा, शराब, गाँजा, भाँग, अफीम और हिंसासे प्राप्त चमडेकी वस्तुओंका

महत्त्वपूर्ण नियम

दर्शन करना, गोग्रास एवं अतिथिको भोजन कराकर भोजन

करना, तुलसीके सम्मुख सन्ध्यामें दीपक जलाना, प्रभात

एवं सन्ध्यावेलामें विषयभोगोंसे दूर रहना-ये सब मंगलमय

प्रतिदिन प्रात: भगवान् सूर्यको जल चढ़ाना, देवमन्दिरमें

**ाजीवनचर्या**−

उपयोग न करनेवाला सद्गृहस्थ सत्पुरुष ही भगवान्की विशेष कृपाका पात्र बनता है।

परोसनेके लिये लोग कहाँसे लायें, इसका उत्तर यही है तो कोई तुम्हारे यहाँ सहयोगके लिये आयेगा।

नहीं करना चाहिये।

१८६

कि तुम किसीके यहाँ सेवा-सहयोगके लिये जाओगे तभी

अपने अतिथियोंको भोजन नहीं करा सकता, उसके

गृहस्थोचित शिष्टाचार

\* गृहस्थोचित शिष्टाचार \*

# ( आचार्य श्रीरामदत्तजी शास्त्री )

ही कर्मयोगका भी आचरण करना चाहिये। क्षमा, दम

(इन्द्रिय-निग्रह), दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव

(मन-वाणी आदिकी सरलता), अनसूया, तीर्थानुसरण

अर्थात् गुरु एवं शास्त्रका अनुगमन या तीर्थसेवन, सत्य सन्तोष, आस्तिकता (वेद-शास्त्रोंमें श्रद्धा), जितेन्द्रियत्व,

देवताओंका अर्चन, विशेषरूपसे ब्राह्मणोंकी पूजा, अहिंसा,

मधुर भाषण, अपिशुनता तथा पापसे राहित्य-मनुने चारों

वर्णींके लिये ये सामान्य धर्म कहे हैं। स्वधर्मका पालन करनेवाले क्रियानिष्ठ ब्राह्मण प्राजापत्यलोक तथा स्वधर्मरत

संग्राममें पलायन न करनेवाले क्षत्रियके लिये इन्द्रलोक

सुरक्षित है। स्वधर्मरत वैश्यको मारुत-स्थान (वायुलोक)

और परिचर्यारूप स्वधर्मका पालन करनेवालोंके लिये

२. साधक—'उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।' जो कुटुम्बके भरण-पोषणमें लगा रहता है,

उसका नाम साधक है। जो देव-ऋण, पितृ-ऋण एवं ऋषि-ऋणोंसे उऋण होकर स्त्री, धन आदिका परित्याग

कर देता है तथा एकाकी विचरण करता है, वह

मोक्षप्राप्तिको इच्छावाला गृहस्थ उदासीन कहलाता है।

है, वैसा दूसरे आश्रममें नहीं। अत: विद्याध्ययन पूर्ण करके अन्तमें गृहस्थ-आश्रमकी शरण लेनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें

आकर सर्वप्रथम अपने ही वर्णकी शुभलक्षणा स्त्रीके साथ विवाह करे। वह स्त्री अपने पिताके गोत्रकी न हो और

माताकी सपिण्ड न हो। यदि स्त्री शुभलक्षणा हो तो गृहस्थ

पुरुष सदा सुख भोगता है। शरीर, आवर्त, गन्ध, छाया

(कान्ति), सत्त्व, स्वर, गति और वर्ण-विद्वानोंद्वारा स्त्रीके

गृहस्थ-आश्रममें जिस प्रकार सदाचारका पालन होता

गृहस्थाश्रमी दो प्रकारके होते हैं-१. उदासीन और

गन्धर्वलोक सुनिश्चित है।

जगत्के कल्याण करनेवाले ब्रह्माजीने धर्मकी रक्षाके

अङ्क ]

भोगकर मृत्युके उपरान्त सद्गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता

है। धर्मके द्वारा ही स्थावर-जंगमात्मक सारा विश्व धारण

लिये चार आश्रमोंका उपदेश किया था, (१) ब्रह्मचर्याश्रम,

(२) गृहस्थाश्रम, (३) वानप्रस्थाश्रम और (४) संन्यासाश्रम।

किया जाता है। कर्म एवं ज्ञान—दोनोंके द्वारा धर्मकी प्राप्ति

होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं, इसलिये धर्मज्ञानके साथ

इनमें गृहस्थाश्रम द्वितीय आश्रम बतलाया गया है। प्रथम

(दक्षस्मृति २।४८)

आश्रममें सदाचारका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी विद्या

पढ़कर गुरुकुलमें रहनेकी अवधि पूरी कर ले और

समावर्तन-संस्कारके पश्चात् स्नातक हो जाय, उस समय

यदि उसे पत्नीके साथ रहकर धर्मका आचरण करने तथा

पुत्रादिरूप फल पानेकी इच्छा हो तो उसके लिये गृहस्थाश्रममें प्रवेशका विधान है। इसमें धर्म, अर्थ, काम

'त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते।'

संन्यास)-का बीज कहा गया है। गुरुकुलमें वास करनेवाले

ब्रह्मचारी, वनमें रहकर संकल्पके अनुसार व्रत, नियम,

धर्मोंका पालन करनेवाले वानप्रस्थी और सर्वस्व त्यागकर विचरनेवाले संन्यासीको भी गृहस्थ-आश्रमसे ही भिक्षा

आदिकी प्राप्ति होती है। वेदोंका अभिमत है कि केवल

गृहस्थाश्रममें ही अन्य तीनों आश्रमोंका समावेश है। अत: एकमात्र गार्हस्थ्यको ही धर्मका साधक जानना चाहिये।

सेवा तथा देवताओंकी पूजा—यह गृहस्थका श्रेष्ठ धर्म है।

धर्मसे रहित जो अर्थ एवं काम नामक पुरुषार्थ है, उसका

परित्याग करना चाहिये। जो सभी प्रकारसे लोकविरुद्ध हो,

उस धर्मका भी आचरण नहीं करना चाहिये। धर्मसे

अर्थकी प्राप्ति होती है, धर्मसे ही कामकी सिद्धि होती है, धर्मसे ही मोक्ष प्राप्त होता है, अत: धर्मका ही आश्रय लेना

चाहिये। धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग क्रमश: सत्त्व, रज और तमरूपी त्रिगुणसे युक्त है, इसलिये धर्मका आश्रय

ग्रहण करना चाहिये। जिस गृहस्थमें धर्मसे समन्वित अर्थ

एवं काम प्रतिष्ठित रहते हैं, वह इस लोकमें सुखोंको

प्रतिदिन यथाशक्ति वेदका स्वाध्याय, श्राद्ध, अतिथि-

गृहस्थाश्रमको तीनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ,

तीनोंकी प्राप्ति होती है।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− बॉंटता-परोसता है तथा जो आज्ञा देकर जीवहिंसा कराता लक्षणोंकी परीक्षाके लिये ये आठ प्रकारके आधार बताये

पहलेके न रहनेपर दूसरे-दूसरे कन्यादान कर सकते हैं। स्त्रियोंके सत्कारका अवसर आनेपर तथा उत्सवोंमें उन्हें वस्त्र, आभूषण और उत्तम अन्न आदि देकर सदा

माता—ये क्रमशः कन्यादानके अधिकारी हैं। इनमें पहले-

गये हैं। उक्त लक्षणों एवं सामुद्रिक शास्त्रीय उत्तम

पिता, पितामह, भ्राता, कुल का कोई भी पुरुष तथा

लक्षणोंसे युक्त स्त्रीसे विवाह करना चाहिये।



आदिसे सम्मानित होकर स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं, वहाँ सब देवता सुखपूर्वक निवास करते हैं—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' तथा उस गृहमें किये हुए समस्त सत्कर्म सफल होते हैं। जिस घरमें पतिसे पत्नी और

पत्नीसे पति सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ पग-पगपर कल्याणकी प्राप्ति होती है-यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति।

# तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे॥

(स्क०पु०का०पू० ४०।६०) निषिद्ध कर्मोंके सेवनसे और विहित कर्मोंके त्यागसे

किल और काल छिद्र देखकर सद्गृहस्थको नष्ट कर

देते हैं। आयु तथा स्वर्गकी इच्छा करनेवाले गृहस्थको

माँसका त्याग करना चाहिये। जो अज्ञानी अपने शरीरकी पुष्टिके लिये दूसरे जीवोंकी हत्या करते हैं, उन

दुराचारियोंको न तो इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। जो मांस खाता है, जो जीवोंको मारनेकी अनुमति देता है, जो मांस पकाता है, जो उसको

खरीदता और बेचता है, जो अपने हाथसे मारता है, जो

होती है।

करना चाहिये।

१. अहुत, २. हुत, ३. प्रहुत, ४. प्राशित तथा ५.

ब्राह्महुत-ये पाँच यज्ञ शुभ बताये गये हैं। इनमें जपको

है—ये आठ प्रकारके मनुष्य हिंसक माने गये हैं।

(स्क॰पु॰का॰पु॰ ४०।२१-२२) जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक

वर्ष अश्वमेधयज्ञ करता है तथा जो मांसभक्षण नहीं

करता है, इन दोनोंमें परस्पर तुलना की जाय तो

जैसे अपने-आपको सुखी देखना चाहता है, उसी प्रकार दूसरेको भी देखे। अपने और दूसरेमें बराबर सुख और दु:ख होते हैं। दूसरे किसी जीवको सुख या दु:ख दिया जाता है, वह सब पीछे चलकर अपनेपर ही संघटित होता है। जो कर्म नहीं कर सकता, उसके द्वारा धर्मका अनुष्ठान कैसे सम्भव है और जो धर्महीन है, उसे सुख कहाँसे मिलेगा? सुखकी अभिलाषा सभी रखते हैं, परंतु सुख धर्मसे ही प्राप्त होता है। अत: चारों वर्णोंके मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने धर्मका पालन करना

चाहिये। न्यायोपार्जित द्रव्यसे पारलौकिक कर्म करना

चाहिये और उसीसे उत्तम देश, काल और पात्रमें विधि

एवं श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। जो अपने धनसे

माता-पितासे हीन बालकोंका यज्ञोपवीत और विवाह

आदि संस्कार करवाता है, उसे अक्षय कल्याणकी प्राप्ति

पक्षीकी चोंच पवित्र मानी गयी है। बकरे और घोड़ेका

मुख पवित्र है। गौएँ पीठकी ओरसे पवित्र हैं, इसलिये

उनका मूत्र, गोमय, दूध एवं दूधसे निर्मित पदार्थ—सभी

पवित्र हैं। ब्राह्मणोंके चरण पवित्र हैं, अत: उनका स्पर्श

गाय दुहनेमें बछड़ेका मुख पवित्र और फल गिरानेमें

सुखकी इच्छा रखनेवाले गृहस्थको चाहिये कि वह

माँसका त्याग करनेवाला ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

अहुत यज्ञ कहते हैं। होम करनेको हुत यज्ञ कहते हैं।

बिल वैश्वदेवको प्रहुत नामक यज्ञ कहते हैं। पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध आदि करना प्राशित यज्ञ है और

ब्राह्मणोंका सत्कार करके उनको भोजन कराना ब्राह्महत यज्ञ कहलाता है। इन पाँचों यज्ञोंका करनेवाला सद्गृहस्थ

\* गृहस्थोचित शिष्टाचार \* २०९ अङ्क ] \* \* कभी दु:खी नहीं होता और इनके न करनेपर वह पाँच पितृ-तर्पण। गृहस्थके लिये नौ धर्मसाधन हैं—१. सत्य, प्रकारकी हिंसाका भागी होता है। आचारादर्श आदिमें २. शौच, ३. अहिंसा, ४. क्षमा, ५. दान, ६. दया, ७. वर्णित पंचमहायज्ञ गृहस्थके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले दम (इन्द्रिय-निग्रह), ८. अस्तेय (चोरीसे दूर रहना), हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. ब्रह्मयज्ञ, २. पितृयज्ञ, ९. प्रत्याहार (इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर अपने भीतर स्थापित करना)। ३. देवयज्ञ, ४. भूतयज्ञ और ५. मनुष्ययज्ञ। वेद और शास्त्रोंके पठन-पाठनका नाम ब्रह्मयज्ञ है। तर्पणको पितृयज्ञ जिस गृहस्थको जिह्वा, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक कहते हैं। होम करनेको देवयज्ञ और बलिवैश्वदेवको और आश्रित मनुष्य—ये सभी विनयशील हों, उसका भूतयज्ञ तथा अतिथि-सत्कारको मनुष्ययज्ञ कहते हैं। सर्वत्र गौरव है। मदिरापान, दुष्टोंका संग, पतिसे अलग जो अपनेद्वारा पोषण करनेयोग्य कुटुम्बीजन और रहना, स्वच्छन्द घूमना, अधिक सोना, दूसरेके घरमें निवास सेवक आदि हैं, उनका पालन-पोषण लौकिक और करना-ये छः बातें स्त्रियोंको दूषित करनेवाली हैं-पारलौकिक दोनों फलोंको देनेवाला है। १. माता, २. पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्॥ पिता, ३. गुरु, ४. पत्नी, ५. सन्तान, ६. शरणागत व्यक्ति, ७. अभ्यागत, ८. अतिथि और ९. अग्नि—ये नौ (स्क०पु०का०पू० ४०।८९) पोष्य वर्गके अन्तर्गत हैं, अत: इनका भरण-पोषण देवताके धनको बाँटकर लेने, ब्राह्मणका धन अपहरण करना चाहिये। जो गृहस्थ इस जीवनमें अनेक व्यक्तियोंकी करने तथा ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे समूचे कुलका शीघ्र जीविका चलाता है, उसका जीवन सफल है। जो विनाश हो जाता है। जो वाणीसे प्रतिज्ञा करके क्रियाद्वारा देवता, पितर आदिको उनका यथायोग्य भाग अर्पण पूर्ण नहीं किया जाता, वह धर्मयुक्त ऋण इहलोक तथा करता है, दयावान्, सुशील, क्षमाशील और देवता एवं परलोकमें भी बढ़ता है। श्रेष्ठ द्विज स्नान करके जलद्वारा अतिथियोंका भक्त है, वह गृहस्थ धार्मिक माना गया है। जो पितरोंका तर्पण करता है, उसीसे पितृयज्ञका सारा फल अभ्यागतके आनेपर गृहस्थको सदा ये नौ बातें करनी पा लेता है। अग्निशाला, गोशाला, देवता और ब्राह्मणके चाहिये, जो अमृतके समान मंगलकारक हैं-१. सौम्य समीप तथा स्वाध्याय एवं जलपानके समय खड़ाऊँ वचन, २. सौम्य दृष्टि, ३. सौम्य मन, ४. सौम्य मुख, (चप्पल-जूते) उतार देने चाहिये। गृहस्थको नीलमें रँगा ५. उठकर स्वागत करना, ६. 'आइये बैठिये' ऐसा वस्त्र कभी भी नहीं पहनना चाहिये। जो गृहस्थ नीलसे रँगा कहना, ७. स्नेहपूर्वक वार्तालाप करना, ८. अतिथिके हुआ वस्त्र पहनता है, तो उसके स्नान, ध्यान, पूजन, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण एवं पंचमहायज्ञ—ये सभी व्यर्थ समीप बैठकर उसकी सेवा करना, ९. जब वह जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे पहुँचानेके लिये कुछ दूरतक हो जाते हैं। बलिवैश्वदेव, होम, पूजा, जप तथा ऋग्वेद, जाना—ये नौ बातें गृहस्थकी उन्नति करनेवाली हैं। १. यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत होनेसे द्विजका चुगली, २. परस्त्रीसेवन, ३. द्रोह, ४. क्रोध, ५. अन्न अमृत कहा गया है। असत्यभाषण, ६. अप्रिय वचन बोलना, ७. द्वेष, ८. श्रेष्ठ मनुष्य छोटी-छोटी बातोंके लिये शपथ न दम्भ (पाखण्ड), ९. माया (छल-कपट)—ये नौ दुर्गुण ले। व्यर्थ शपथ करनेवाला मनुष्य इहलोक एवं परलोकमें भी नष्ट होता है। माता, पिता एवं गुरुमें सद्गृहस्थको स्वर्गके मार्गके बाधक हैं। अत: इन दुर्गुणोंका त्याग करना चाहिये। अब नौ आवश्यक कर्म बतलाये जाते देवभावना रखनी चाहिये। ये तीनों ही प्रत्यक्ष देवता हैं हैं, जो सद्-गृहस्थियोंको प्रतिदिन करनेयोग्य हैं-१. तथा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इनकी आज्ञाका पालन, सेवा-स्नान, २. सन्ध्या, ३. जप, ४. होम, ५. स्वाध्याय, ६. शुश्रुषा तथा पालन-पोषण यत्नपूर्वक करना चाहिये। जो देवपूजा, ७. बलिवैश्वदेव, ८. अतिथि-सत्कार और ९. सदा एकान्तमें रहनेवाला, देवताकी आराधनामें तत्पर,

सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी प्रीतिसे दूर रहनेवाला तथा स्वाध्याययोगमें और सत्यवादी है, वह गृहस्थ होकर भी इस जगत्में मनको लगानेवाला और कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं मुक्त हो जाता है। गृहस्थ पुरुष दीनों, अन्धों, दिरद्रों एवं

\* आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत् \*

करता, ऐसे पुरुष निश्चय ही मोक्षके भागी हैं। जो याचकोंको विशेष रूपसे अन्नदान करके गृह-कर्मींका गृहस्थ यज्ञके द्वारा देव-ऋणसे, अध्ययनके द्वारा ऋषि- अनुष्ठान करता रहे, तो वह सद्गृहस्थ कल्याणका भागी

280

ऋणसे और तर्पण-श्राद्धादिद्वारा पितृ-ऋणसे उऋण हो होता है। इस प्रकार सदाचारका पालन करनेवाले

गया है, जो न्यायसे धनका उपार्जन करता है, तत्त्वज्ञानमें सद्गृहस्थपर भगवान सदाशिव प्रसन्न होते हैं एवं उसका

स्थित है, अतिथियोंको प्यार करनेवाला है तथा श्राद्धकर्ता कल्याण करते हैं।

**ा जीवनचर्या**−

#### जीवनचर्याके करणीय और अकरणीय कर्म

(डॉ० श्रीचन्द्रपालजी शर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०)

मूल अंकोंमें नौ जहाँ सबसे बडा है, वहाँ सबसे हैं। जन्मके साथ ही मनुष्यका सम्बन्ध पृथ्वीसे जुडता है।

अधिक शुभ भी है। यह मूल अंकोंका बडा भाई है। शुभ

दस-बारह वर्षकी आयुतक बाल्यावस्था रहती है। इसके

बाद पन्द्रह-सोलह सालकी उम्रतक किशोरावस्था या कुमारावस्था रहती है। इसके बाद यौवनका प्रवेश दिखायी

देने लगता है, जो प्राय: पैंतीससे चालीस वर्षतक चलता

पडाव है।

अन्य अवस्थाओंमें परिवर्तन आता है, परंतु वृद्धत्व

अपरिवर्तनीय है। मृत्यु शरीरयात्राका अन्तिम अथवा नौवाँ

सामान्य धर्मके नौ भेद-महाभारतमें पितामह

भीष्मने व्यक्तिके पालनके लिये सामान्य धर्मके नौ भेद

आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः।

अक्रोधः सत्यवचनं सविभागः क्षमा तथा। प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च॥

कार्य शरीरके द्वारा ही होते हैं। शरीरकी भी नौ अवस्थाएँ हैं—(१) गर्भाधान, (२) गर्भवृद्धि, (३) जन्म, (४) बताये हैं-बाल्यावस्था, (५) कुमारावस्था, (६) यौवन, (७) प्रौढावस्था, (८) वृद्धावस्था एवं (९) मृत्यु। इन नौ अवस्थाओंमें-से पहली दो गर्भाधान एवं गर्भवृद्धि माताके उदरमें होती

नवीनता ही मिलेगी। यह परिवर्तनकी सूचना लेकर आता है। इसके बाद लगभग पचपन-साठतक प्रौढावस्था रहती है। वृद्धावस्था आनेके बाद मृत्युपर्यन्त बनी रहती है।

है। धर्मप्रधान भारतमें करणीय-अकरणीय, सफल-असफल, गोपनीय-प्रकाश्य, आवश्यक अथवा निन्दित आदि धार्मिक

शरीरकी नौ अवस्थाएँ — धर्मका आधार शरीर

है—'शरीरमाद्यं खल् धर्मसाधनम्।' सभी प्रकारके धार्मिक

बातोंमें नौका विशेष महत्त्व है।

संख्याके लिये सात या नौ ही मान्य हैं। नौ संस्कृतके 'नव'

शब्दसे बना है, जिसका अर्थ नवीन या नृतन अथवा नया

है। अंकोंकी गणनामें नौ जहाँ भी अन्तमें होगा, उसके बाद

on -	$\mathbf{z}$ और अकरणीय कर्म $*$
अर्थात् (१) किसीपर क्रोध न करना, (२) सत्य	चाहिये—(१) अतिथिको बैठनेके लिये स्थान देना, (२)
बोलना, (३) धनको बाँटकर भोगना, (४) समभाव	पीनेके लिये जल देना, (३) बैठनेके लिये आसन देना,
रखना, (५) अपनी ही पत्नीसे सन्तान पैदा करना, (६)	(४) पैर धोनेके लिये जल देना या स्वयं पैर धोना—यदि
बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, (७) किसीसे द्रोह न करना,	अतिथि पूज्यवर्गका है तो गृहस्थ स्वयं पैर धोते हैं और
(८) सरल स्वभाव रखना एवं (९) भरण-पोषणयोग्य	अतिथि यदि अपनेसे छोटा या कम महत्त्वपूर्ण है, तो उसे
व्यक्तियोंका पालन करना—ये सभी मानवजातिके लिये	पैर धोनेके लिये जल देना चाहिये, (५) अभ्यंग देना—
पालनयोग्य सामान्य धर्म हैं। किसी भी पूजा-पद्धति	तेल या उबटन देना, जिससे अतिथि अपने शरीरपर
अथवा धर्मग्रन्थमें विश्वास रखनेवाले व्यक्तिको इन नौ	मालिस कर ले, (६) आश्रय—अतिथिको आवासीय
सामान्य धर्म-लक्षणोंको मानना मानव-कल्याणके लिये	सुविधा प्रदान करना, (७) शय्या—रात्रिको सोनेकी
आवश्यक है।	व्यवस्था करना, (८) यथाशक्ति भोजन—अपनी स्थितिके
<b>नौ आवश्यक कर्म</b> —सामान्य धार्मिक जनोंके लिये	अनुसार सुरुचिपूर्ण भोजन, (९) मिट्टी, जल तथा अन्न—
नौ ऐसे आवश्यक कर्म हैं, जो प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन	प्रक्षालन एवं शुद्धताके लिये मिट्टी एवं जल तथा मार्गके
करने अपेक्षित हैं। इनको नौ करणीय कर्म कह सकते	लिये अन्न।
हैं—(१) संध्या—प्रात:-सायं ईशवन्दना, (२) स्नान—	<b>नौ अकरणीय कर्म</b> —इनको विकर्म या निन्दित
शारीरिक पवित्रता एवं स्वच्छताके लिये स्नान आवश्यक	कर्म भी कहते हैं—(१) असत्य भाषण—वाणीकी शुद्धिके
है, (३) जप—िकसी मन्त्रविशेष या पवित्र वचनोंका	लिये सदैव सत्य वचन ही बोलने चाहिये, (२) परदारसेवन—
स्नानके बाद जप, (४) होम—देव-ऋणसे मुक्ति एवं	यह करणीय कर्मोंके एकदम विपरीत है। अत: निन्दित
पर्यावरणकी शुद्धताके लिये हवन अथवा यज्ञ करना, (५)	कर्म है, (३) अभक्ष्य-भक्षण—विधाताने मनुष्यको शाकाहारी
स्वाध्याय—ऋषि–ऋणसे मुक्ति या ज्ञानार्जनके लिये धर्मग्रन्थोंका	लक्षण दिये हैं। अतः माँसादिका खाना अभक्ष्यभक्षण है,
अध्ययन, (६) देवपूजन—अपने आराध्यदेवकी पूजा,	(४) अगम्यागमन—शास्त्र एवं समाजद्वारा वर्जित व्यक्तियोंसे
(७) बलिवैश्वदेव—एक ऐसा यज्ञ जिसमें खाद्य पदार्थ	यौन-सम्बन्ध जोड़ना विकर्म है, (५) अपेयपान—शराब
(भात-रोटी आदि)-के कुछ भाग करके संक्षिप्त हवन	आदि पेयोंका पान निन्दित कर्म है, (६) हिंसा—मनसा,
तथा सबके निमित्त ग्रास पृथ्वीपर उनके प्राप्तकर्ताओंके	वाचा, कर्मणा हिंसा बुरी बात है, (७) चोरी—यह
निमित्त रखते हैं। इसके साथ ही पंचबलि निकाली जाती	महापातक है, (८) वेदबाह्य कर्मोंका आचरण—वेद या
है, जिसमें गौ, श्वान, काक, देवादि एवं पिपीलिकाके	शास्त्रविरुद्ध कर्म वर्जित कोटिमें होते हैं तथा (९) मैत्री-
निमित्त अन्न निकाला जाता है। बलिवैश्वदेव यज्ञका भाग	धर्मका निर्वाह न करना—िमत्र अपना ही स्वरूप होता है।
निकालते समय यदि कोई अतिथि आ जाय तो पहले उसे	दो मित्रोंमें एक-दूसरेपर परम विश्वास रहता है। अतः
भोजन देना चाहिये। आशय यह है कि भोजनका सर्वप्रथम	यदि संकटके समय मित्रका साथ नहीं दिया तो व्यक्ति
हकदार व्यक्ति है। यदि अभावग्रस्त व्यक्ति सम्मुख नहीं	निन्दितकर्मा माना जाता है। एक उक्ति देखें—
है तो अन्यको मिलना चाहिये, (८) अतिथि सेवा—	गुरु से कपट मित्र से चोरी । या हो निर्धन या हो कोढ़ी॥
'अतिथिदेवो भव' की उक्ति इसी आवश्यक कर्मकी	गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—
पुष्टि करती है, (९) पोष्यवर्गका भरण—माता-पिता,	जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हिह बिलोकत पातक भारी॥
गुरु, दीन, अनाथ, सेवक आदिको भोजन आदिसे सन्तुष्ट	करणीय नौ मंगल बातें—अतिथिके घर आनेपर
करना चाहिये।	नौ करणीय कर्मोंकी चर्चा हम कर चुके हैं, किंतु भारतीय
अतिथिके घर आनेपर भी नौ करणीय कर्म करने	परम्परामें अतिथिको देवता माना गया है। अत: अतिथिके

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− घर आनेपर गृहस्थको नौ मंगलकारक करणीय बातोंका दिनका समय नवरात्रके रूपमें निश्चित किया गया है। ध्यान रखना अपेक्षित होता है—(१) सौम्य मन, (२) जिनमें दो नवरात्र विशेष प्रचलनमें हैं-विक्रम संवत्का सौम्य दृष्टि, (३) सौम्य मुख, (४) सौम्य वचन, (५) प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होता है। अत: वर्षके उठकर स्वागत, (६) कुशल पूछना, (७) प्रेमपूर्ण वार्तालाप, प्रारम्भके नौ दिन और ठीक छह मास बाद आश्विन (८) सेवा तथा (९) जानेपर कुछ दूरतक साथ जाना मासके शुक्लपक्षके नौ दिन नवदुर्गाओंके व्रत, पूजन, अर्थात् सौम्य मन, सौम्य दृष्टि एवं सौम्यमुखसे सौम्य अर्चनके निमित्त हैं। नवकुमारियोंमें कुमारिका, त्रिमूर्ति वचन कहते हुए उठकर अतिथिका स्वागत करे तथा कल्याणी, रोहिणी, काली, चिण्डका, शाम्भवी, दुर्गा और उसके बाद कुशलक्षेम पूछकर स्नेहपूर्वक वार्तालाप करे। सुभद्रा नामकी नौ देवियाँ हैं। (शाक्तप्रमोद, कुमारीतन्त्र) चैत्र एवं आश्विनके नवरात्रमें नौ दुर्गाओंकी पूजा समीप बैठा हुआ अतिथि जब जाने लगे तो कुछ दूरतक अतिथिके पीछे-पीछे जाय। की जाती है, उनके नाम शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, नौ अविश्वसनीय—इन नौ-का विश्वास नहीं कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायिनी, कालरात्रि, महागौरी करना चाहिये— एवं सिद्धिदात्री हैं। पुराणोंमें इन देवियोंको प्रभा, माया जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया और स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि। सर्वसिद्धिदा नामसे नौ शक्तियोंके रूपमें वर्णित किया चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके॥ (१) स्त्री, (२) लम्पट, (३) आलसी, (४) गया है। देवी मूलत: भगवान् शिवकी शक्ति हैं, जिनका डरपोक, (५) क्रोधी, (६) पुरुषत्वके अभिमानी, (७) कोमल एवं भयंकर दो रूपोंमें वर्णन है। कोमल रूपमें चोर, (८) कृतघ्न और (९) नास्तिकका विश्वास करना कुमारिका, महागौरी, सिद्धिदा, जगन्माता, भवानी, पार्वती अच्छा नहीं है। नारीके पेटमें गोपनीय बात छिप नहीं पाती। आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं और उग्र रूपमें अतः विश्वास करके धोखा खाना पडेगा। लम्पट या धूर्त काली, दुर्गा, चण्डी या चण्डिका, भैरवी आदि नाम तो सदैव उलटा-सीधा ही बकते हैं। आलसीका क्या प्रचलित हैं। वस्तुत: नवदेवी या नवदुर्गा शिव-पत्नीके ही विविध रूप हैं। कुछ नाम उनके कार्योंके आधारपर भरोसा, वह विश्वास देनेके बाद भी आलस्यमें डूबा रहे, डरपोकका क्या भरोसा, कब भाग खड़ा हो, क्रोधी कब पड़े हैं और कुछ नाम उनको अपने पतिके परिवेशकी विभिन्नताके कारण मिले हैं। काम बिगाड़ दे, पुरुषत्वके अभिमानी वास्तविकताको नहीं पहचान सकते, चोर तो स्वयं निकृष्ट जीव है, कृतघ्न तो वे हिमालयकी पुत्री हैं, अतः शैलपुत्री हैं। भगवान् अपने उपकारीका भी नहीं होता, वह अन्यकी क्या शिवको तपस्या एवं ब्रह्मचर्यके बलपर प्राप्त करनेके सहायता करेगा और नास्तिकका विश्वास करनेका अर्थ कारण ब्रह्मचारिणी हैं। कण्ठमें चन्द्रमा स्थित होनेके है—ईश्वरपर विश्वास न करना। कारण चन्द्रघण्टा हैं तथा त्रिविध तापयुक्त संसारको नवकुमारी, नवदुर्गा या नवशक्ति—भारतीय परम्परामें अपने उदरमें धारण करनेके कारण कृष्माण्डा हैं। स्कन्दकी जब-जब पुरुषने अपनेको असहाय, निराश या हताश पाया माता होनेके कारण स्कन्दमाता हैं और जो कालके लिये है, तब-तब वह नारीकी शरणमें गया है। भले ही अपने भी कालके समान हैं, वे कालरात्रि हैं। देवताओं के अहंके कारण उसे अबला कहता रहा हो। अपनी असहाय कार्योंको भी सिद्ध करनेके कारण कात्यायिनी हैं और अवस्थामें पुरुषने जिन देवियोंकी शरण ली है, उनको तपस्या एवं कान्तियुक्त गौरवर्णके कारण महागौरी हैं। नवकुमारी, नवदुर्गा या नवशक्तिके नामसे जाना जाता है। सिद्धि एवं मोक्षको देनेवाली होनेके कारण सिद्धिदात्री इनकी पूजा-आराधनाके लिये वर्षमें चार बार नौ-नौ हैं। वस्तुत: भगवानुकी शक्ति ही उनकी पत्नीरूपमें

अङ्क ] * जीवनचर्याके करणीय इस्हरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूहरूह	। और अकरणीय कर्म * २१७
विविधसंख्यक बन गयी है।	प्रति भक्ति इसी भावकी है। व्रजके ग्वाल एवं गोपियाँ
<b>नवधा भक्ति—</b> परलोक-सुधार, ब्रह्मसामीप्य अथवा	कृष्णको अपना सखा मानते हैं—
आवागमनसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्य विविध प्रकारके	जाति-पाँति हम ते बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
साधना-पथ अपनाते हैं, किंतु उनमें भक्ति-भावनाका पथ	अति अधिकार जनावत यातैं, जातैं अधिक तुम्हारैं गैयाँ!
अपनी सरलताके कारण अधिक आकृष्ट करता है। यह	भगवान्के प्रति माधुर्यभावकी भक्तिमें उनसे पति–
भक्ति भी नवधा है—	रूपमें भी सम्बन्ध जोड़ा जाता है। राधाकी कृष्णके प्रति
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।	भक्ति इसी भावकी है। कौसल्या एवं यशोदाकी भक्ति
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥	वात्सल्यभावकी है, किंतु ये सब भक्ति-भावनाएँ सख्यके
भगवान्के नाम गुणोंका श्रवण, धर्मग्रन्थोंका पढ़ना	अन्तर्गत ही समाहित रहती हैं। ईश्वरके सम्मुख अपनी
एवं सुनना ही श्रवणभक्ति है। ईश्वरके नामों, लीलाओं	पीड़ा निवेदन करना ही आत्मनिवेदन है। कबीर, सूर,
एवं गुणोंका कीर्तन दूसरी भक्ति है। ईश्वरके नाम, गुण	तुलसी, मीराने बार-बार भगवान्के सामने अपनी पीड़ा
एवं लीलाओंका स्मरण तृतीय और उनके चरणोंका	व्यक्त की है।
ध्यान, चिन्तन, पूजनादि चौथे प्रकारकी पादसेवनकी	भक्तिमें मन, कर्म एवं वाणीका सहयोग लिया जाता
भक्ति है। अर्चनमें भगवान्के श्रीविग्रहका विधि-विधानसे	है। आत्मनिवेदन, सख्य, दास्य एवं स्मरण प्रकारकी भक्ति
श्रद्धापूर्वक पूजन किया जाता है। जीवमात्रको भगवान्का	मनसे होती है जबिक वन्दन, अर्चन, श्रवण एवं पादसेवन
स्वरूप मानकर सबको प्रणाम करना वन्दन कोटिकी	कर्मसे होनेवाली भक्ति है। कीर्तन वाणीसे होनेवाली भक्ति
भक्ति है। ये छ: भेद साधन-भक्तिके हैं। इनके आचरण	है। परमात्माकी निकटता पाना ही नवधा भक्तिका साध्य
या पालनसे भक्तिका उदय होता है। इसके बाद उत्पन्न	है।
भक्तिका स्वरूप दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदनके द्वारा	<b>नवग्रह-पूजन—</b> भारतीय परम्परामें किसी भी शुभ
व्यक्त होता है। भगवान्को अपना स्वामी मानकर स्तुति	कार्यके प्रारम्भमें नवग्रहका पूजन किया जाता है। ज्योतिषकी
करना दास्यभावकी भक्ति है। हनुमान्, भरत, लक्ष्मण,	मान्यता है कि सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि,
निषाद, शबरी आदिकी भक्ति इसी प्रकारकी है। गोस्वामी	राहु और केतुकी गतिसे पृथ्वीनिवासी प्रभावित होते हैं।
तुलसीदास तो अपनेको रामका गुलाम या चाकर ही	इन ग्रहोंकी पूजाके लिये उनकी मूर्तियाँ बनानेके भी नियम
मानते हैं। वस्तुत: भक्त भगवान्से अपना कोई न कोई	हैं। सूर्यको ताम्रको, चन्द्रमाको स्फटिकको, मंगलको लाल
सम्बन्ध बनाता है। कबीरदास अपनेको <i>'रा<b>मकी बहुरिया</b>'</i>	चन्दनकी, बुध एवं वृहस्पतिकी सोनेकी, शुक्रकी चाँदीकी,
बताते हैं। दास्यभावके आवेगमें कभी-कभी इतनी तीव्रता	शनिकी लोहेकी, राहुकी सीसेकी एवं केतुकी काँसेकी
आ जाती है कि कबीर अपने–आपको ' <i>रा<b>मका कुत्ता</b>'</i>	प्रतिमा बनायी जाती है।
तक कहते हैं—	<b>शरीरके नवद्वार</b> —मनुष्यके शरीरमें नवद्वार या
कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ।	नवछिद्र हैं। शरीरमें दो नेत्र-गोलक, दो कर्णगह्वर, दो
राम नाम की जेवड़ी जित खैंचै तित जाउँ॥	नासिकाछिद्र, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ—ये
मीरा सांसारिक पति होनेके बाद भी अपने उस	नौ इन्द्रियद्वार या नव छिद्र हैं। साधना-पथके पथिक सदैव
परमात्मा पतिको पानेके लिये लोकलाजतककी चिन्ता नहीं	इन इन्द्रियद्वारोंकी पहरेदारीकी आवश्यकता बताते हैं।
करती। भगवान्से मित्रताका भाव रखना सख्यभावकी	रूप, शब्द, गन्ध, स्वाद एवं स्पर्शकी आकांक्षा इनके द्वारा
भक्ति है। गोप-गोपियाँ, सुदामा एवं द्रौपदीकी श्रीकृष्णके	ही होती है और यह आकांक्षा ही मनको विचलित

रसमें-से एक आकर्षणके प्रति आसक्त होकर क्रमश: मृग, सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि किब भानस गुनी॥ हाथी, कीट-पतंग, भ्रमर और मत्स्य या तो बन्धनमें पड़ शस्त्रधारी न जाने कब प्रहार कर दे, मर्मी हमारे जाते हैं या मृत्युके ग्रास बनते हैं किंतु मनुष्यको तो ये किस गोपनीय रहस्यको खोल दे, स्वामी कब दण्डित कर दे, मूर्ख क्या अज्ञानता कर बैठे, धनवान्से कब सरोकार पाँचों ही आकर्षित करते हैं। वह पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचोंका सेवन करता है, वह तो मारा ही जायगा— पड़ जाय, वैद्यसे शत्रुता तो प्राणघातक हो सकती है। कवि एवं भाट विरुदावली भी गा सकते हैं; किंतु कब कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

मीना हताः पञ्चिभरेव पञ्च। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते

२१८

### यः सेवते पञ्चिभरेव पञ्च॥

वस्तृत: ये नवद्वार शरीरकी विभिन्न प्रकारकी स्थूल

गन्दगीको बाहर निकालनेके माध्यम हैं और शरीरस्थ

पंचप्राण भी मृत्युके समय इन छिद्रोंसे ही बाहर निकलते

हैं। इसी कारण योगीजन इन नवद्वारोंपर पहरेदारीकी बात

करनेका मूल कारण है। शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध और

करते हैं। इन नवद्वारोंको वशवर्ती बना लेना ही साधनाका मुख्य सोपान है। नौसे विरोध उचित नहीं — समझदार व्यक्तिको नौ-का विरोध नहीं करना चाहिये। सीताहरणमें रावणका सहयोग करनेमें आना-कानी करनेवाले मारीचको जब



#### है कि शिष्य बनाते समय गुरुओंको उनके गुणोंके परीक्षणका अवसर नहीं मिलता। भारतीय परम्परामें नौ

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दुढसौहृदः।

अहित-चिन्तन न करनेवाला, (३) कार्यमें निपुण, (४)

निन्दापुराण लिख-बाँच दें, क्या पता तथा रसोइया विरोधी

यदा-कदा कट्ता देखनेको मिलती है, जिसका कारण यह

शिष्यके नौ गुण-आज गुरु-शिष्य सम्बन्धोंमें

होकर कब क्या खिला दे?

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥

**Г जीवनचर्या**−

असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् शिष्यको (१) अभिमानसे रहित, (२) किसीका

गुणोंके होनेपर ही शिष्यत्व मिलना चाहिये-

#### ममतारहित, (५) गुरुप्रेममें दृढ़, (६) कार्यमें जल्दबाजी न करनेवाला, (७) परमार्थज्ञानका इच्छुक, (८) दूसरेमें दोष न निकालनेवाला तथा (९) व्यर्थकी बात न करनेवाला-नौ गुणोंसे युक्त होना चाहिये। तभी अर्जुन, एकलव्य, शिवाजी-जैसे शिष्य पैदा हो सकते हैं।

गोपनीय बातें हैं, जिनका प्रकट करना हितकर नहीं है-(१) अपनी आयु, (२) धन, (३) घरका कोई रहस्य, (४) मन्त्र, (५) मैथुन, (६) औषधि, (७) तप, (८) दान तथा (९) अपमान, इनका प्रकट होना अपमान-जनक, हानिकारक, पीड़ादायक अथवा अनर्थकारी हो

नौ गोपनीय एवं नौ प्रकाश्य बातें—नौ ऐसी

सकता है। नौ ऐसी बातें हैं जिनको प्रकट करना ही हितकर है-(१) ऋण लेनेकी बात, (२) ऋण चुकानेकी बात, (३) दानमें प्राप्त वस्तु, (४) विक्रय की गयी वस्तु,

(५) कन्यादान, (६) अध्ययन, (७) वृषोत्सर्ग, (८) मन ही मन सोचता है-एकान्तमें किया गया पाप तथा (९) अनिन्दित कर्म, इन्हें अङ्क ] प्रकट कर देना ही उचित है। वृष साँड़को कहते हैं। जनताकी सम्पत्ति, (२) चन्देकी राशि, (३) धरोहरकी मृत पुरुषके नामपर दागकर साँडको छोड देना ही सम्पत्ति, (४) बन्धनकी वस्तु, (५) अपनी पत्नी, (६) वृषोत्सर्ग है। पत्नीका धन. (७) जमानतकी सम्पत्ति. (८) अमानतकी दानके लिये उपयुक्त एवं अनुपयुक्त नौ पात्र— वस्तु और (९) सन्तानके होनेपर भी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति—

\* संयमित जीवनशैली और स्वास्थ्य \*

कुपात्रको नहीं। नौ प्रकारके व्यक्तियोंको जो कुछ भी दिया जाता है, वह सफल एवं अक्षय हो जाता है। (१) माता, (२) पिता, (३) गुरु, (४) मित्र, (५) विनयी, (६) उपकारी, (७) दीन, (८) अनाथ तथा (९) साधू-

सज्जनको जो भी दिया जाय, वह उत्तम है। साथ ही नौ प्रकारके व्यक्तियोंको जो भी दिया जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। (१) धूर्त, (२) बन्दी, (३) मूर्ख, (४) अयोग्य वैद्य, (५) जुआरी, (६) शठ, (७) चाटुकार, (८) चारण

मरीचि, (२) अत्रि, (३) अंगिरा, (४) पुलस्त्य, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) भृगु, (८) वसिष्ठ और (९) प्रचेता—ये नौ ऐसे प्रजापित हैं, जिनको ब्रह्माजीने योगिवद्याके द्वारा मानस-संकल्पसे पैदा किया था। इनसे सृष्टिका विस्तार और रक्षण होता है। नौ पवित्र निदयाँ पवित्र करें, ऐसी कामना सभीकी होती है-गंगा सिन्धुश्च कावेरी यमुना च सरस्वती।

नौ ऐसी वस्तएँ हैं कि ये अधिकारी पात्रको ही मिलनी

चाहिये। यदि कोई व्यक्ति इन अदेय वस्तुओंको भी देता है,

स्मरण करते हुए आलेखको पूरा किया जाता है। (१)

रेवा महानदी गोदा ब्रह्मपुत्रः पुनातु माम्॥

अन्तमें नौ प्रजापतियों एवं नौ पवित्र निदयोंका

तो वह प्रायश्चित करनेके बाद ही शुद्ध हो सकता है।

286

तथा (९) चोरको कुछ भी दिया जाय, निष्फल ही रहता है। नौ अदेय वस्तुएँ — नौ ऐसी अदेय वस्तुएँ हैं, जो आपत्तिकालमें भी किसीको नहीं देनी चाहिये—(१)

सामान्य उक्ति है कि दान सुपात्रको ही देना चाहिये,

# उत्तम स्वास्थ्य कैसे पायें?

च पशुभिर्नराणाम्।

हर इन्सान जब मन्दिर जाता है या भगवान्की पूजा

करता है तो प्राय: यह प्रार्थना करता है कि मुझे तन, मन

और धनसे सुखी करो भगवान्! इस तन, मन, धनके सुखी

होनेमें सभी कुछ आ जाता है, पर कुछ पानेके लिये कुछ

करना पड़ता है। धनसे सुखी होनेके लिये इन्सान काम करता है, चाहे नौकरी करे या निजी व्यवसाय। मनसे सुखी

होनेके लिये उसमें सहनशीलता, दया, सिहण्णुताके साथ-

साथ क्रोध, ईर्घ्या, नफरत, बदलेकी भावना इत्यादिपर काबू पाना जरूरी है, जिन्हें मानवधर्मका लक्षण माना गया

है एवं जिसके कारण इन्सान पशुसे भिन्न होता है; क्योंकि आहार, निद्रा, भय और मैथुनकी आवश्यकता तो पशुमें

( डॉ० मधुजी पोद्दार, एम०डी० )

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अत: मानसिक सुख मिलता है आत्मसंयमसे,

योगसे, प्राणायामसे, वेदोंके ज्ञानसे तथा धर्मका पालन

करनेसे; जो आजके युगमें थोड़ा कठिन है, पर अगर हम

चाहें तो कोशिश करके पा सकते हैं। सबसे ज्यादा जरूरी

है एवं आसान भी है तनसे सुखी रहना; क्योंकि यह

इन्सानके स्वयंके हाथमें है और कुछ सावधानियोंसे ही

तनको स्वस्थ रखा जा सकता है तथा बीमारियोंको आनेसे

रोका जा सकता है। ये सावधानियाँ मुश्किल नहीं हैं, इसके

लिये सिर्फ अपने रोजमर्राके जीवनमें कुछ बदलावकी

जरूरत है और यह बदलाव किया जा सकता है खान-

पान एवं रहन-सहनमें बदलावसे; क्योंकि अगर शरीर

स्वस्थ रहता है तो मन भी स्वस्थ रहता है, परिवार सुखी

ही हमारा पूरा देश तथा संसार सुखी रहता है। जब

रहता है, समाज सुखी रहता है एवं समाजके सुखी रहनेसे

हि तेषामधिको विशेषो धर्मो धर्मेण हीनाः पश्भिः समानाः॥

सामान्यमेतत्

आहारनिद्राभयमैथुनं

भी पायी जाती है—

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− २३८ बीमारियाँ आयेंगी ही नहीं तो बीमारियोंपर होनेवाले खर्चेमें रहनेके लिये बहुत जरूरी है, जैसे कि कहा भी गया है कमी आयेगी, जिससे देशकी अर्थव्यवस्थामें स्वयं ही 'जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन।' सुधार आ जाता है। यह जानना जरूरी है कि शरीरको सुबह हल्का नाश्ता, दोपहर तथा रातको सही स्वस्थ रखनेके लिये क्या-क्या करना चाहिये। सुबह समयपर भोजन करना चाहिये। जैसे कि सुबह ९ बजेतक जागनेसे रात सोनेतक, यानी पूरे दिनकी दिनचर्यामें क्या नाश्ता, दो बजेतक दोपहरका भोजन एवं रात ८ बजेतक बदलाव लाने चाहिये— रातका भोजन करना चाहिये ताकि दो समयके भोजनके सुबह सूर्योदयसे पहले उठकर घूमने अवश्य जाना बीचमें खाना पचनेका सही समय मिल जाय। चाहिये। सूर्योदयसे पहले शुद्ध तथा शीतल वायुके प्रवेशसे खानेमें अगर भारतीय परम्परा तथा संस्कृतिके शरीरमें ताजगी तथा स्फूर्ति आती है एवं सारा दिन मन आधारपर दाल, चावल, रोटी, सब्जी, सलाद, दही एवं फलोंका सेवन करते हैं तो आधुनिक विज्ञानके आधारपर प्रसन्न रहता है। सुबह सोकर उठनेके बाद, शौचके पश्चात् मंजन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, मिनरल एवं विटामिनयुक्त ब्रश या नीमसे दाँत जरूर साफ करने चाहिये। पूरी रातकी सन्तुलित आहार मिल जाता है। हमें अलगसे विटामिनकी गन्दगी दाँतों एवं मसुढोंपर जमा रहती है, अगर उसे साफ गोलियाँ लेनेकी जरूरत ही नहीं रहती है। नहीं करेंगे तो उनमें कीटाण पनपते हैं तथा जडें कमजोर सुबह नाश्तेमें तथा रातको सोनेसे पहले दुधका सेवन हो जाती हैं। रातको सोनेसे पहले भी दाँत साफ कर लेना अवश्य करें, खास तौरसे महिलाएँ, जिन्हें कैल्शियमकी ज्यादा जरूरत होती है, इससे हड्डियाँ मजबूत रहती हैं। चाहिये। शौचके बाद साफ मिट्टीसे हाथ अवश्य धोने चाहिये, कच्ची सब्जियाँ, सलाद एवं फलोंमें मिनरल एवं अन्यथा हाथोंकी गन्दगी खाना खाते समय मुँह तथा पेटमें विटामिन प्रचुर मात्रामें होते हैं। इन्हें प्रतिदिन अवश्य लेना चाहिये, परंतु उन्हें खानेसे पहले अच्छी तरह धो जाती है एवं तरह-तरहके रोगोंको जन्म देती है, जैसे-उल्टी, दस्त, पीलिया, टायफायड, पेटमें कीड़े इत्यादि। अवश्य लें। रोज सुबह शौच तथा दन्तमंजनके बाद स्नान जरूर मांसाहार न करें सिर्फ शाकाहार करें; क्योंकि करना चाहिये ताकि शरीर स्वच्छ एवं स्वस्थ रहे। वैसे भी मांसाहार शरीरके लिये बहुत नुकसानदायक होता है। अब बिना स्नानके स्फूर्ति तथा ताजगी नहीं आती है। गर्मी, सर्दी वैज्ञानिक प्रयोगोंसे सिद्ध हो गया है कि शाकाहार सस्ता एवं बरसात हर मौसममें नहाना चाहिये। तथा पौष्टिक तो है ही लाभदायक भी है। मांसाहारसे नित्य लगभग आधा घण्टा योगासन एवं प्राणायाम हृदयरोग, लकवा, फालिज, शुगर, उच्च रक्तचाप एवं करना चाहिये। योगसे अनेक शारीरिक तथा मानसिक विभिन्न प्रकारके कैंसर एवं पथरियोंसहित करीब १६० बीमारियोंसे बचाव रहता है और शरीर स्वस्थ रहता है। बीमारियाँ हो सकती हैं। अत: शाकाहार ही लेना चाहिये। जीवनमें हँसना सेहतके लिये बहुत जरूरी है; साथ साफ पानी पीयें तथा अगर किसी इलाकेमें गन्दा ही सकारात्मक विचारोंसे भी तन, मन स्वस्थ रहता है। पानी आता है तो उसे उबालकर एवं छानकर रखें और खाने-पीनेमें बदलावसे पहले पहनावा इत्यादिके फिर प्रयोग करें। बारेमें कुछ बातें जरूरी हैं, जैसे कि फैशनके चक्करमें भारतीय पारम्परिक शर्बत, लस्सी, शिकंजी-जैसे कुछ लोग बहुत चुस्त तथा बेढंगे कपड़े पहन लेते हैं पेयजलोंका प्रयोग करें, आजकलके पेप्सी, कोला-जैसे जो देखनेमें तो बुरे लगते ही हैं साथ ही चुस्त कपडोंसे हानिकारक पेयजल न लें। वैज्ञानिक प्रयोगोंसे सिद्ध हो गया त्वचापर रगड़ लगते रहनेसे त्वचाका कैंसर होनेका डर है कि पेप्सी व कोकमें इतना अधिक एसिड या तेजाब रहता है। अत: शरीरपर सही लगनेवाले ढीले परिधान होता है जो हड्डी एवं दाँतोंको गला देता है तो पेट या पहनने चाहिये। आँतोंकी झिल्लीका क्या हाल होता होगा, यह विचारणीय खान-पानमें बदलाव शरीर तथा मन दोनोंके स्वस्थ है। इसका अधिक सेवन करनेसे पेट तथा आँतोंकी

ट्रटनेका खतरा बढ़ता है एवं इन पेयजलोंमें पाये जानेवाले कीटनाशकों एवं सुरक्षित रखनेवाले रसायनोंसे विभिन्न प्रकारके कैंसर हो सकते हैं। आटेकी रोटियाँ खासतौरसे ज्यादा चोकरवाले मोटे आटेकी रोटियाँ खायें तथा मैदेका सेवन कम करें। यह

हैं, दाँत एवं हड़ियाँ कमजोर हो जाती हैं, जिससे जल्दी

देखा गया है कि कम चोकरवाले आटेके खानेसे बडी आँतके कैंसरकी सम्भावना एवं कब्ज तथा बवासीरका खतरा बढ जाता है। इसीलिये जो आजकल पिज्जा, बर्गर, नृडल्स (चाउमीन)-जैसे भोज्य पदार्थ हैं, वे मैदेके होते

हैं तथा उनमें वसा भी अत्यधिक मात्रामें होती है, जिससे मोटापा, डायबिटीज, उच्च रक्तचाप-जैसी बीमारियाँ बढती हैं।

शराब तथा सिगरेट, तम्बाकू, गुटखे एवं पानमसालेका

सेवन न करें। ये सभी दुर्व्यसन सेहतके लिये ही नहीं, मन तथा धनके लिये भी नुकसानदायक होते हैं। इनसे

शरीर तो खराब होता ही है, पैसेकी तंगी भी आती है,

जिसका असर पूरे परिवारपर पड़ता है, घरमें कलह होता

भी होती हैं। तन तथा मनको स्वस्थ रखनेके लिये अपने घर एवं घरके आस-पासकी स्वच्छताका ध्यान रखें; क्योंकि

गन्दगीमें मक्खी, मच्छर तथा अन्य कीडे पनपते हैं. जिससे

तनमें अनेक रोग जैसे-फेफडे एवं जिगरके कैंसर, मुँह

एवं आमाशयका कैंसर, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, फालिज,

लकवा, पैरोंका गैंग्रीन, लिवर फैल्योर तथा गुर्देकी बीमारियाँ

मलेरिया, टायफाइड, पीलिया, कॉलरा-जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। आस-पास पेड़-पौधे उगाकर पर्यावरण शुद्ध रखें, जिससे आस-पास अच्छी वायु यानी ऑक्सीजन रहे; क्योंकि पेड़-पौधे अपना भोजन बनानेके लिये गन्दी हवा

कार्बन डाइ ऑक्साइडको अन्दर ले लेते हैं तथा शुद्ध वायु ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जो जीव-जन्तुओंके लिये लाभदायक एवं आवश्यक होती है।

जीवनमें स्वस्थ रहनेके लिये यौनसे सम्बन्धित

बातोंका ध्यान रखना भी उतना ही जरूरी है, जितना खान-

पान तथा रहन–सहनका।

सुखद जीवन-सन्ध्या ( प्रो० डॉ० श्रीजमनालालजी बायती, एम०ए०, एम०कॉम०, पी-एच०डी०, डी०लिट० ) आजीविकाको सुचार रूपसे चलानेके लिये व्यक्ति है कि वह विलम्बसे मिलनी शुरू हो तो आपको यदा-जो वृत्ति अपनाते हैं, उसे दो भागोंमें बाँटा जा सकता है-कदा उलाहना भी सुनना पड़ सकता है, कभी आप पानी सेवा तथा निजी व्यापार या अन्य धन्धा। सेवाको फिर माँगें और ध्यान न दिया जाय या विलम्ब हो जाय या जल उपविभागोंमें बाँटा जा सकता है—राजकीय सेवा, अर्ध लानेमें उदासीनता बरती जाय। बहन या पुत्री ससुरालसे राजकीय सेवा तथा निजी सेवा। सेवा कैसी भी हो, एक आयी है तो आप अपनी इच्छाके अनुसार उसकी आवभगत नहीं कर सकते; क्योंकि अब आपको पुत्रोंपर

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

निश्चित समयके बाद उससे निवृत्ति पानी ही होती है, अवकाश लेना होता है। सेवाओंमें सेवानिवृत्तिकी आयु भी तथा बहुरानियोंपर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें अलग-अलग होती है। आपको सहनशीलताका विकास कर लेना चाहिये, दूसरोंकी जब आप सेवानिवृत्तिके किनारेपर होते हैं तो आपको आनेवाले समयके लिये मनोवैज्ञानिक रूपसे तैयार हो जाना चाहिये। आपको ज्ञात है कि आपकी आमदनी कम हो

गयी है या यह भी सम्भव है कि आपकी आमदनी कुछ समयके लिये बन्द ही हो जाय। यद्यपि सरकार सेवानिवृत्तिसे काफी पूर्व ही ऐसी व्यवस्था करती है कि आपको समयपर पेंशन मिल सके, फिर भी विलम्ब होनेकी सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता। सम्भव है, सेवाविधमें आपके कुछ अधीनस्थोंने आपके आदेशोंकी अवहेलना की हो या आपको उपयुक्त सम्मान न दिया हो या आपके प्रति या आपके कार्योंके प्रति उदासीनता बरती

हो, आप इन सबको क्रमशः भूलनेका प्रयत्न कीजिये। यह भूलना ही आपको सन्तोष देगा, प्रसन्नता देगा। इसके दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि अपने सर्विस कालमें आप अपने परिवारको पर्याप्त समय न दे पाये हों तो अब आप सपत्नीक तीर्थाटनके लिये निकल जाइये या घूमने निकल जाइये, जहाँ इच्छा हो रुक जाइये, देव-दर्शन कीजिये,

प्राकृतिक छटा निहारिये। यदि आप मित्रोंसे मिलने भी जा सकें तो इसका भी लाभ उठाइये, इससे अनुभवोंका आदान-प्रदान होगा, विचार-विमर्श आगे बढ़ेगा तथा आपका जीवन प्रसन्नतासे भर जायगा।

खर्च किया है तो आपने परिवारमें भरपूर सम्मान पाया है,

पर अब चूँकि वेतनकी जगह पेंशन मिलेगी तथा हो सकता

अबतक आपने धन कमाया है, बच्चों-पौत्रोंके लिये

सुविधाका ध्यान रखिये, उनके विचारोंको भी महत्त्व दीजिये। सेवानिवृत्तिके बाद आप अपनी इच्छाके अनुसार स्कूल या अस्पताल या कार्यशाला या सामाजिक संस्थाको चन्दा या दान नहीं दे सकते, आपको बच्चोंसे

रह सकते हैं।

**Г जीवनचर्या**−

यदि आपकी जिम्मेदारियाँ पूरी हो गयी हैं तो आपके पास समय-ही-समय है। यदि पुत्रों तथा पौत्रों आदिके विवाह हो चुके हैं तो आप निश्चिन्त हैं, पर यदि ऐसा नहीं है तो पुत्रों-पुत्रियों, पौत्रों आदिके विवाहके लिये अब विशेष प्रयत्न कर सकते हैं, क्योंकि अब आप इन कामोंको अधिक समय देनेकी स्थितिमें हैं। सेवानिवृत्तिसे पूर्वतक आप अपने कार्योंमें, आदतोंमें नियमित थे, पर अब आपको फुरसत मिल रही है, आप

अधिक विश्राम कर सकते हैं, अधिक समय घूम सकते

पूछना होगा। ये कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हैं, जिन्हें आपको

अपनेमें विकसित कर लेना चाहिये। उलाहनोंको आप

गम्भीरतासे न लें, तभी आप प्रसन्नचित्त और हल्के-फुल्के

हैं, अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंको पढ सकते हैं, निश्चिन्ततापूर्वक भगवानुकी तरफ ध्यान लगा सकते हैं। यदि आप संयुक्त परिवारके सदस्य हैं, तो पुत्रोंके भोले-भाले, अबोध, प्यारे-प्यारे बच्चों या पडोसियोंके बच्चोंके साथ आप अपने समयका उपयोग कर सकते हैं, उनको पढ़ा सकते हैं,

उनके साथ विनोद-चुहलबाजी कर सकते हैं।

परिवारके छोटे-मोटे कामोंमें हाथ बँटाइये। परिवारमें

\* सुखद जीवन-सन्ध्या \* अङ्क ] छोटे स्कूल जानेवाले बच्चे हों तो उनका गृह-कार्य पूरा इससे आपको सृजनका आनन्द मिलेगा। आप अनुभव करवा दीजिये, बाजारसे लौट रहे हैं तो सब्जी लेते आइये, करेंगे कि आपकी फुरसतका समय उपयोगी कामोंमें लग मार्गमें किये जा सकनेवाले अन्य कार्य भी निपटा दीजिये, रहा है। जिससे दूसरी बार जानेसे आपकी शक्तिका अपव्यय न हो, आप मित्रों या परिवारके सदस्योंके साथ या अकेले गृहकार्योंमें मदद कीजिये। भी देशाटनपर जा सकते हैं, वहाँ प्रकृतिका, प्राकृतिक अब आप नियमित जीवनसे भिन्न व्यक्ति बन गये छटाका, नदी-नालों या घाटियोंका आनन्द लीजिये। प्राकृतिक हैं। अब आप पढ़ने-लिखनेकी आदतका विकास कर सौन्दर्यका आनन्द लेना कितना आकर्षक तथा मनोहारी सकते हैं, इससे आप व्यस्त भी रहेंगे तथा धीरे-धीरे लगता है। रोजके कामोंसे दूर प्रकृतिकी गोदमें रहिये, आप कुशलता प्राप्तकर ज्ञानार्जन भी कर सकते हैं। यदि आप हरी-हरी दूबपर घूमिये, इससे आँखोंको लाभ होगा। पुस्तकोंके अध्ययनमें लगे रहेंगे तथा लेखकके रूपमें आपको शारीरिक स्फूर्ति मिलेगी। पौधों, पुष्पों तथा पत्तियोंसे अपनत्व स्थापित होगा। हिरणका चौकड़ी भरना सृजनात्मक कार्य करेंगे तो आप अपनेको जीवन्त एवं प्रसन्न रहनेका अनुभव प्राप्त करेंगे। आप दूसरे लोगोंका तथा झरने या नालेका कल-कल करता पानी आपको मार्गदर्शन कीजिये। कब क्या पढ़ना है? कौन-किस आह्लादित कर देगा, आपको नवजीवन देगा। आप बाढ्-धन्धेमें जा सकता है? किसके लिये किस प्रकारकी पीड़ितोंकी सेवा कर सकते हैं, चिकित्सा-शिविरोंमें रोगियोंकी नौकरी या धन्धा उपयुक्त हो सकता है? वहाँ उनके सफल सहायता कर सकते हैं, उनकी इच्छाके अनुसार उनके होनेकी क्या सम्भावना है? शैक्षिक सम्प्राप्ति, व्यक्तित्वके सम्बन्धियोंको पत्र लिख सकते हैं, पूर्व जीवनके आनन्दप्रद क्षणोंकी याद आपको प्रसन्नतासे भर देगी, सन्तोष देगी तथा गुण, पढ़ाई-लिखाईका स्तर, दृष्टिकोण आदिके अनुसार आप नवयुवकोंका मार्गदर्शन कर सकते हैं, उन्हें दिशा-आपमें नवजीवनका स्फुरण होगा। आप कुछ समय प्रभुकी निर्देश दे सकते हैं। इससे आपके पास मार्गदर्शन सेवा, पूजा-अर्चनामें अवश्य लगायें, परम शक्तिका ध्यान चाहनेवालोंकी भीड़ रहेगी तथा आप सदैव अपनेको उनके कीजिये, एकाग्र होकर परमेश्वरका चिन्तन कीजिये। इससे बीच जिन्दादिल अनुभव करेंगे, आप अपनेको उन्हींमेंसे जो आत्मिक बल तथा शान्ति प्राप्त होगी, वह अनुभवका एक अनुभव करेंगे। ही विषय है। रोजके जीवनसे दूर प्रकृतिसे तादात्म्य आप अध्ययनकी आदत विकसित कर सकते हैं, जोड़िये-ऐसा करनेसे आपमें नवशक्तिका संचार होगा। पढ़नेकी आदत अनोखा आनन्द देती है, पुस्तकें सबसे आप स्वास्थ्यके प्रति सजग हो सकते हैं, प्रात: अच्छी मित्र होती हैं। उपयोगी कृतिके अध्ययनसे आपको घूमनेकी आदत डालिये। इस समय आपकी अपने ही जैसे आत्मसन्तोष मिलेगा। यदि सम्भव हो तथा आप चाहें तो कई व्यक्तियोंसे भेंट होगी, उनसे मिलिये, बातें कीजिये, किसी पाठ्यक्रममें प्रवेश ले लीजिये। वे कई ऐसी बातें बता सकते हैं, जिनसे आप अबतक आप किसी रुचिपूर्ण कार्य या हॉबीका भी विकास अनिभज्ञ रहे हैं तथा उनपर आपने अबतक कुछ सोचा भी नहीं है। अब आप देख रहे हैं कि ये बातें आपके लिये कर सकते हैं। ये सब कार्य आपकी विचारधारा, दृष्टिकोण तथा माली हालतपर निर्भर करेंगे। किसी जनसाधारणके बडी उपयोगी हैं। यदि आप स्वस्थ और सक्षम हैं तो अर्थप्राप्तिके लिये लिये उपयोगी गतिविधिमें हाथ बटाइये, इससे आपका जीवन आनन्दप्रद बनेगा। आप चित्रकलाके नमूने तैयार अपनी प्रकृतिके अनुरूप कोई कार्य कर सकते हैं। आप कर सकते हैं, बागवानीके कार्यमें रुचि विकसित कर समाजके किसी कार्यको सेवाभावसे कर सकते हैं, आप सकते हैं, भाँति-भाँतिक पुष्पोंके पौधे लगाइये, पौधोंको चाहें तो मानवोपयोगी संस्थाकी गतिविधियोंमें भाग लीजिये. पानी पिलाइये, उनको खाद देनेकी तकनीक समझिये, उसके सदस्य बन जाइये या कार्यकारिणीके पदाधिकारी

बन जाइये, पर हाँ, वहाँसे लाभ उठानेका दुष्टिकोण न आप यह याद रिखये कि काम न करनेवाला आदमी बनाइये। इससे आप समाजके लोगोंसे जुड़े रहेंगे, उनकी किसीको प्रिय नहीं होता, उसकी उपेक्षा होती है, उसका गतिविधियोंसे परिचित रहेंगे तथा समयकी एकरसतासे भी तिरस्कार होता है, उसके प्रति उदासीनता बरती जा सकती बचेंगे। आपको सावधानी यह रखनी है कि सेवानिवृत्तिके है, जिसके फलस्वरूप व्यक्तिका जीवन दूभर हो जाता है।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

बाद भी आप समाजके उपयोगी सदस्य बने रहें, अन्य सदस्योंके हितार्थ महत्त्वपूर्ण योगदान करते रहें, तभी समाजमें आपका वर्चस्व बना रहेगा, आपकी पहचान बनी

रहेगी, आपको यश-सम्मान मिलेगा। प्रत्येक व्यक्तिके आत्मसन्तोषके लिये ये बातें जरूरी हैं।

कई व्यक्ति अपनी सेवानिवृत्तिके बाद ही जीवनका सर्वाधिक अच्छा एवं सुनहला समय पाते हैं। जीवनको सही रूपमें लीजिये तथा उसको सही रूपमें ही समझिये।

ऐसा न हो कि आप वृद्धावस्थाका सहारा लेकर परिवारके

किसी भी काममें हाथ न बटायें तथा अपने प्रत्येक कार्यके लिये दूसरोंपर आश्रित हो जायँ।

# ( डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम०ए०, पी-एच०डी०, आयुर्वेदरत्न)

आप मानें या न मानें यह परम सत्य है कि मृत्युके अनन्तर साथमें कुछ भी नहीं जायगा। संसारकी समस्त

सम्पदा, वैभव-विलासकी सामग्री यहीं धरी-की-धरी रह

जायगी, एक कौड़ी भी साथ नहीं जायगी। फिर भी आश्चर्य है कि मनुष्य निरन्तर संग्रह-परिग्रहके लालच

दु:खोंका प्रधान कारण है, परंतु पाश्चात्य विचारधारा कहती है कि असन्तोष ही समग्र विकासके द्वार खोलता है। आजके समस्त वैज्ञानिक विकासका आधार 'असन्तोष'

(लोभ)-से घिरा हुआ है। यह असन्तोष ही समस्त

को ही मानते हैं-यह मान भी लें तो फिर आज सम्पूर्ण विश्वमें आतंकवाद क्यों फैला है ? आम आदमी सुखी क्यों नहीं है ? इसका मुख्य कारण ईश्वरमें आस्थाकी कमी तथा

असन्तोष है। विकासवादी संस्कृतिने व्यक्तिवादको पनपाया है। आज आदमी परस्पर सहयोग, सह-अस्तित्वकी भावनाको

यदि आपने इस प्रकारका दृष्टिकोण विकसित कर लिया, वृत्ति बना ली तो शेष जीवनमें आप सदैव प्रसन्नचित्त, हँसमुख, स्फूर्त तथा युवा बने रहेंगे।

विनियोग सत्कार्योंमें कीजिये।

एक और आवश्यक बात और वह यह कि आप

भी धनलोलुप न बने रहिये, क्योंकि यह लालसा तो कभी

खत्म ही नहीं होगी। जो कुछ आपको प्राप्त हो रहा है उसके लिये परमपिता परमात्माको धन्यवाद दीजिये और

जो आपको प्राप्त नहीं है, उसे बार-बार याद करके दु:खी भी न होइये। हाँ, आपके पास जो कुछ धन है, उसका

ये सुखी रहनेके सहज, सरल एवं उपयोगी सूत्र हैं।

**ाजीवनचर्या**−

टेंशनफ्री (तनावरहित ) जीवन

उन्नित उसके टेंशन (तनाव)-का कारण बनी हुई है।

धनने आजतक किसीको न तो परमार्थ मार्गमें सफलता दी

है और न ही लौकिक सुख दिया है। यह भ्रान्ति है कि

कारोंमें घूमनेवाले तथा ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंमें रहनेवाले लोग सुखी हैं। देखा जाय तो ऐसे सम्पन्न लोगोंके

पारस्परिक सम्बन्ध प्राय: औपचारिक मात्र होते हैं। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, बहन-भाई, माता-पुत्र आदि धनके सूत्रसे ही जुड़े हैं। जिस दिन यह सूत्र गड़बड़ाता है, उसी दिन

वे एक-दूसरेसे अलग-थलग-से हो जाते हैं। उनमें परस्पर कोई अपनत्व और ममत्व नहीं रहता। क्या असन्तोषपर आधारित यही विकासवाद है ? इससे तो झोंपड़ीमें मिल-

बाँटकर प्रेमसे सूखी रोटियाँ खानेवाले अच्छे हैं, जो एक-दूसरेके दु:ख-दर्दको बाँटते हैं। टेंशनका मुख्य आधार अहंकार है। अहंकारी व्यक्ति

स्वयंको कर्ता मानता है तथा दूसरोंकी उपलब्धियोंसे ईर्ष्या तिलांजिल देकर अपने ही विषयमें सोच रहा है। दूसरेकी एवं डाह करता है। यदि सामनेवाला व्यक्ति थोड़ा भी

41 -	वरहित ) जीवन * क्रक्रम्मम्मम्मम्
सम्पन्न है, उच्च पदासीन है तो इसे अहंकारी व्यक्ति अपना	अवधारणाओंको उद्घाटित किया है, जो किसी तनावग्रस्त
अपमान समझता है। वह ईर्ष्याकी इस आगमें दहकता	व्यक्तिमें होती हैं। यह टेंशन (तनाव, क्रोध) ही समस्त
रहता है कि यह ऐसा क्यों है ? जबकि वस्तुस्थिति तो यह	प्रकारके दोषोंका जनक है; क्योंकि अहंकारी व्यक्तिकी
है कि इस संसारमें सभी व्यक्ति अपने-अपने प्रारब्धका	ईश्वर-सम्बन्धी अवधारणा नष्ट हो जाती है तथा वह स्वयं
फल भोग रहे हैं।	ही कर्ता तथा भोक्ताके अभिमानको पोषितकर इस लोकमें
यह जगत् मनुष्येतर प्राणियोंके लिये भोगभूमि है	तो क्रोधरूपी अग्निमें जलकर सबसे वैरभाव रखता ही
और मनुष्यके लिये कर्म तथा भोगभूमि दोनों ही है—	है, मृत्यु (जड़ शरीरके त्यागने)-के पश्चात् भी नाना
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥	प्रकारके नरकोंमें गमन करता है।
(रा०च०मा० २।२१९।४)	संसारके जितने भी तनाव हैं, वे सभी उन मनुष्योंके
यह ध्रुव सत्य है कि इस विश्व ही क्या?	लिये हैं जो धर्मपरायण नहीं हैं, ईश्वरपरायण नहीं हैं। वे
अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नियामक ईश्वर ही हैं। उनकी	संसाररूपी चक्कीमें पिसते रहते हैं।
आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तब	समस्त सुख-शान्ति, आनन्दके सागर भगवान् हैं, जो
तनावग्रस्त मनुष्योंका स्वयंको कर्ता मानना भ्रम ही है। वह	उनको छोड़कर संसारके व्यक्तियों, वस्तुओं और उपलब्धियोंमें
सफल होनेपर स्वयंको दक्ष मानता है तथा विफल होनेपर	सुख तलाश रहे हैं, वे धानके भूसेको कूटकर चावल
दूसरोंको दोषी मानता है।	खोजनेका निरर्थक प्रयास कर रहे हैं। श्रीगरुड़जी महाराजसे
टेंशन कोई रोग नहीं है। ओढ़ी हुई मानसिकता है।	श्रीकाकभुशुण्डिजी कह रहे हैं—समस्त ग्रन्थों और संतोंकी
विचारोंमें साम्य लानेसे ही इस मानसिकतासे मनुष्य उबर	वाणियों तथा मेरा निजी अनुभव यह है—
सकता है। क्षमा, सहिष्णुता, दया, धर्माचरण, सत्य आदिके	निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हिर भजन न जाहिं कलेसा।।
अभावमें ही मनुष्य तनावग्रस्त रहता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें	(रा०च०मा० ७।८९।५)
कहा है—	अन्यत्र भी—
ध्यायतो विषयान्युंसः सङ्गस्तेषूपजायते।	उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥	(रा०च०मा० ३।३९।५)
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।	श्रीहरिका भजन ही सार है। उसको छोड़कर शेष
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥	सब असार है। इस संसारकी उपलब्धियाँ मनुष्यको क्या
(गीता २।६२–६३)	सुख देंगी, जब उनका अस्तित्व ही स्वप्नवत् है। जीव
अर्थात् असत् विषयोंका चिन्तन करनेवाले मनुष्यका	उसी नित्य, सत्य, ईश्वरका नित्य अंश है। उसको छोड़
उन विषयोंसे संग हो जाता है। उन विषयोंमें उसकी	देनेसे जीवको कहीं भी आनन्द नहीं है।
प्रगाढ़ आसक्ति हो जाती है। उस आसक्त मनुष्यके	तनाव इसी बातका है कि लोगोंके पास जो
चित्तमें नाना प्रकारकी कामनाओंकी उत्पत्ति होती है,	सुखसाधन हैं, वे मेरे पास क्यों नहीं हैं? अथवा जो मेरे
कामनाके अपूर्ण रहनेपर क्रोध पैदा होता है, क्रोधसे	पास सुखसाधन हैं, वे किसी औरके पास नहीं होने चाहिये,
मूढ़ता (कार्याकार्यका विवेक लुप्त हो जाता है),	परंतु प्रारब्धके अधीन ही सम्पूर्ण संसार चल रहा है। इसे
आसक्तिजनित मोहसे स्मृतिमें भ्रम जन्म लेता है, जिसके	कोई बदल नहीं सकता। जब यह १०० प्रतिशत सत्य है
कारण बुद्धिका नाश हो जाता है। फलस्वरूप वह असत्	कि हानि-लाभ, यश-अपयश और जीवन-मरण विधाताके
कर्मों में लिप्त हो जाता है।	हाथमें है तो फिर तनावका लबादा ओढ़कर ईर्ष्या, द्वेष तथा
उक्त श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने उन सभी	हिंसाकी अग्निमें क्यों जलें?

है कि जो सदैव प्रसन्नचित्त रहता है तथा विषम परिस्थितियोंमें सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ। भी धर्म एवं धैर्यको नहीं छोड़ता, वह महान् संत है; क्योंकि हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥ उसे मुझपर पूर्ण विश्वास है तथा उसके चित्तको संसारके (रा०च०मा० २।१७१) विषयोंने दग्ध नहीं किया है। जीवकी अखण्ड यात्रा आनन्दकी यदि मनुष्य टेंशनफ्री-जीवन चाहते हैं तो उन्हें

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

निश्चित ही श्रीहरिकी एकान्तिक शरण ग्रहणकर भजन

खोजमें है, उसे इस लम्बी यात्रामें कभी भी ईश्वरचरणोंमें करना चाहिये एवं समस्त प्रकारकी कामनाओं, इच्छाओं समर्पण किये बिना, नि:स्पृह भजन किये बिना आनन्द नहीं

**Г जीवनचर्या**−

तथा संकल्प-विकल्पका त्यागकर शान्तभावसे जीवन- मिल सकता है। हम भ्रमसे भवनों, धन-सम्पत्तिको अपना

**388** 

यापन करना चाहिये। मानते हैं, परंतु इन्होंने कभी यह नहीं कहा कि हम तुम्हारे हैं,

भगवान् श्रीकृष्णने एक स्थानपर श्रीमद्भागवतमें कहा किंतु भगवान् कहते हैं कि 'हम भक्तनके भक्त हमारे।'

\* आदर्श जीवनका मूल मन्त्र—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'\* अङ्क ] आदर्श जीवनका मूल मन्त्र—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' ( श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी ) भारतीय संस्कृतिने मानवके चरमोत्कर्षको सदैव मनुष्यमें दो सहज प्रवृत्तियाँ हैं-एक भोगकी तथा दूसरी प्राथमिकता दी है। मानवजीवनकी पूर्णता मूलतः दो पक्षोंपर त्यागकी। जीवनकी सार्थकता भी इन दोनों प्रवृत्तियोंके आधारित है। वे पक्ष हैं, अभ्युदय और नि:श्रेयस। जहाँ समुचित संचालन एवं समन्वयपर निर्भर है। हिन्दुसमाजमें अभ्युदय मनुष्यके जीवनका बाह्य अथवा ऐहिक पक्ष है, भोग एवं त्यागकी, परस्पर आदान-प्रदानकी और विचारविनिमयकी उदात्त एवं सिहष्णु भावना सदैव प्रतिष्ठित वहीं नि:श्रेयस है उसका आन्तरिक या पारलौकिक पक्ष। अभ्युदय प्रवृत्तिमूलक है और नि:श्रेयस निवृत्तिप्रधान— रही है। प्रकृतिमें जैसे दिन-रातका समन्वय है और

गयी है-

**'यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धिः स धर्मः'** (महर्षि कणाद) । प्रवृत्तिमार्ग साधनाके क्षेत्रमें निष्काम कर्मका द्योतक है। निवृत्तिपथमें ज्ञान एवं उपासनाकी प्रधानता है। अभ्युदयका सम्बन्ध पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके प्रथम तीन सोपानों अर्थात् त्रिवर्गकी उपलब्धिसे है तथा नि:श्रेयससे सीधा अभिप्राय अन्तिम भाग अर्थात्

मोक्षसे है। जहाँ अभ्युदय मानवमात्रकी भौतिक, लौकिक अथवा सांसारिक समृद्धि एवं सुख-साधनोंका पुंजीभृत रूप है, वहीं नि:श्रेयस मनुष्यको भूमाकी स्थिति, जहाँ अक्षय, अनन्त आनन्द ही आनन्द है, तक पहुँचानेका लक्ष्य है। उपर्युक्त दोनों पक्षोंके समन्वयको हमारे ऋषियोंने अभीष्ट प्राप्तिका साधन माना है। ज्ञान, कर्म तथा उपासनाकी प्रवहमान त्रिपथगा मानव-जीवनमें सम्यक्

सिद्धि तथा चरम एवं परम लक्ष्यकी प्राप्तिहेतु अभ्युदय एवं नि:श्रेयसके संगमकी ओर उन्मुख होती है। आर्ष प्रज्ञासे विभूषित भारतीय ऋषियोंने वेदों, उपनिषदों, गीता आदि धर्मग्रन्थोंमें दोनों पक्षोंके मधुर सामंजस्यका विवेचन विभिन्न प्रकारसे किया है। उदाहरणार्थ 'ईशावास्योपनिषद्'के प्रथम मन्त्रमें ही सात्त्विक भोग एवं निरहंकारी त्यागकी महत्तापर विशेष बल दिया गया है—'**ईशा वास्यिमद**श्**सर्वं यत्किञ्च** जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य

स्विद्धनम्॥' उपर्युक्त मन्त्रके तीन शब्दों अर्थात् 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' के निहितार्थकी संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित पंक्तियोंमें करनेकी चेष्टा की गयी है। हिन्दुओंके वैयक्तिक

जीवन तथा आदर्श सामाजिक व्यवस्थामें भोग और त्यागका अद्भुत समन्वय उपर्युक्त तीन शब्दोंमें समाहित है।

मानवजीवनमें जैसे सोने-जागनेका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, ठीक उसी प्रकार हमारी संस्कृतिमें भी भोग और त्यागके स्वाभाविक सम्बन्धको समुचित महत्त्व दिया गया है। ऐसे समन्वयका ही समानार्थक शब्द है 'अपरिग्रह', जिसे

जीवनकी सफलताका एक प्रमुख साधन माना गया है।

समाजकी सम्यक् व्यवस्था भी इन्हीं दो प्रवृत्तियोंके सामंजस्यपर मुख्यतया निर्भर रहती है। अपरिग्रहका व्रत भी जो समदृष्टि अथवा कर्तापन तथा भोक्तापनकी भ्रमपूर्ण भावनासे ऊपर उठनेकी दशा है, वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवनके सामंजस्यकी ओर इंगित करता है। तभी तो समत्वके दृढ संकल्पके आधारपर ही वेदमें कामना की

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।

एवं त्विय नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(ईशा० २)

अर्थात् जगत्के कर्ता, धर्ता, हर्ता परमेश्वरका सब कुछ समझकर अन्यथाबुद्धि, नास्तिक वृत्ति निराशाकी भावनाको त्यागकर सौ वर्षींतक जीनेकी कामना करनेवाला व्यक्ति कर्मोंमें लिप्त नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्णने भी इसी आशयकी पुष्टि अपने शब्दोंमें इस प्रकार की है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७) अर्थात् हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है,

उसके फलमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− 'तेन'—तेनसे अभिप्राय है ईश्वरद्वारा प्रदत्त समस्त किंतु अन्ततः हमें वे समस्त उपभोग्य पदार्थ उसी स्वामीको पदार्थ, जिनका सम्यक् रीतिसे सदुपयोग करनेका अधिकार ही लौटा देने हैं। अतएव प्रथमत: हम वस्तुओंके स्वामित्व भावसे सर्वथा दूर रहें तथा दूसरे उनका उपभोग उनके सभीको स्वाभाविक रूपसे प्राप्त है। संसारकी भौतिक वस्तुओंके उपभोगकी स्वतन्त्रताके साथ एक अत्यन्त स्वामीकी प्रसन्तताके लिये ही करें। स्वामित्वरहित समर्पणकी निषेधात्मक शर्त भी लगा दी गयी है—त्यागकी भावना। भावनासे किया गया सांसारिक सुखभोग हमें कर्मफलके सभी भोग्य पदार्थींका निर्माता एवं स्वामी परमात्मा है, जो बन्धनमें लिप्त नहीं होने देगा। त्यागकी इसी वृत्तिपर बल सृष्टिका सर्जक, पालक एवं संहर्ता है। अतएव सब कुछ देते हुए भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा है— उसीका है तथा अन्तत: उसीमें विलीन भी हो जाता है। यत्करोषि यदश्नासि यज्नुहोषि ददासि यत्। हमें तो कुछ कालावधिके लिये सांसारिक वस्तुओंके यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ उपभोगका अवसर प्रदान किया गया है। अत: हम उनका (गीता ९।२७) सदुपयोग इस भावनासे करें कि हमें उन्हें पुन: परमात्माको अर्थात् हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता लौटा देना है; क्योंकि न तो हमें वस्तुओंका स्वामित्व ही है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता प्राप्त है और न ही उनका मनमाना उपभोग। हमें तो केवल है—वह सब मेरे अर्पण कर। इस प्रकार समस्त कर्म मुझ पदार्थोंके अल्पकालिक उपयोगका अवसर ही प्रदान किया भगवान्को अर्पण होते हैं। अहंकारशून्य होकर पदार्थके गया है। साथ-ही-साथ स्मरण रहे कि हमारे ही समान स्वामित्वकी भावनासे रहित होकर जो कर्मफलकी कामना मानवमात्रका भी उन समस्त वस्तुओंपर समान अधिकार छोड़ देता है, उसे कर्मींके गुण-दोष बन्धनमें नहीं डालते, उसने मानो कोई कर्म किया ही नहीं। इसी भावको भगवान् है। इसलिये सभीको उनका उपयोग करनेका अवसर देना हमारा नैतिक कर्तव्य है। समुचित सामाजिक व्यवस्था तभी श्रीकृष्ण कहते हैं-सम्भव है, जब हम त्यागकी भावनासे वस्तुओंका सदुपयोग त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। करते हुए उन्हें परमात्माको समर्पित करें; क्योंकि सभी कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥ वस्तुओंका निर्माता तथा स्वामी वही है। परमपिता परमात्माकी (गीता ४।२०) सन्तान होनेके नाते यदि हम अपने जीवनका प्रत्येक कार्य अर्थात् जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें उसी प्रभुकी प्रसन्नताके लिये करें तो ऐसा प्रभुसमर्पित आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो कार्य यज्ञमय हो जाता है तथा भगवदर्पित कार्योंसे मनुष्य गया है और परमात्मामें नित्य तृप्त है, वह कर्मोंमें सांसारिक माया-मोह एवं कर्मफलमें लिप्त नहीं होता। वह भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता। 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का वैयक्तिकके अतिरिक्त एक सदा अलिप्त तथा निष्कलुष बना रहता है। इसी तथ्यको भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'मत्कर्मकृन्मत्परमो' (गीता दूसरा सामाजिक पक्ष भी है, वह है समता एवं बन्धुत्वपर ११।५५) अर्थात् हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये आधारित सामाजिक दायित्वका निर्वाह। सृष्टिकी सभी सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करता है, वह अनन्य भक्तियुक्त वस्तुओंपर जीवधारियोंको अपने भरण-पोषणका अधिकार पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है। है। अतएव सौभाग्यसे जो धनी-मानी अथवा साधनसम्पन्न 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः'—परमात्माद्वारा प्रदत्त प्रत्येक हैं, उनका यह पवित्र नैतिक एवं सामाजिक दायित्व है कि पदार्थके विवेकपूर्ण सदुपयोगके लिये त्यागवृत्तिका होना वे निर्धनों और साधनविहीन व्यक्तियोंके जीवननिर्वाहकी अत्यावश्यक है। हमें स्मरण रखना है कि सभी वस्तुओंका भी चिन्ता करें तथा उनके लिये भी जीवनकी मूलभूत स्वामी परमेश्वर है, जिसने कुछ समय (जीवन-काल)-आवश्यकताओंकी पूर्तिहेतु समुचित साधनोंकी व्यवस्था के लिये हमें उनका उपभोग करनेका अधिकार दिया है, करें। तभी तो दान-दक्षिणाकी भारतीय जीवनदर्शनमें इतनी

\* जीवनमें आचारकी सर्वश्रेष्ठता \* अङ्क ] 935 महिमा है। आवश्यकताओंकी पूर्तिके अतिरिक्त अपने दोनोंके चरमोत्कर्षतक पहुँच सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने संसाधनोंको दीन-दु:खियों तथा दरिद्रनारायणकी सेवामें गीतामें सम्पूर्ण जगत्को वासुदेवके रूपमें देखनेवालोंको लगाना भी तो त्यागमय भोगका ही एक रूप है। अत: सुदुर्लभ महात्मा बताया है—'वास्देवः सर्वमिति स

सम्यक् एवं सात्त्विक भोगसे ही सन्तुष्ट रहकर यथासाध्य त्यागमय जीवन बिताना चाहिये। यदि हम 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' के उदात्त वैदिक आदर्शको अपने व्यावहारिक जीवनमें उतारें तो निश्चय ही हमारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन सुन्दर एवं अनुकरणीय हो जायगा। उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि भारतीय धर्म एवं

त्यागके उच्च भारतीय आदर्शको ध्यानमें रखकर हमें

जीवनदर्शनका लक्ष्य दु:खकी आत्यन्तिक निवृत्ति तथा निरतिशय, अखण्ड एवं अनन्त आनन्दकी प्राप्ति है। शाश्वत आनन्दकी उपलब्धि सबका एकमात्र उद्देश्य है। ऐसा आनन्द ही ब्रह्म है। यथा—'आनन्दो ब्रह्मोति व्यजानात्' (तैत्तिरीयोपनिषद् ३।६।१)। वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय

संस्कृतिमें भोग तथा त्यागका अद्भुत समन्वय पाया जाता है। मानवजीवनके इन दोनों अनिवार्य पक्षोंका जितना सुन्दर

सामंजस्य भारतीय जीवनदर्शनमें पाया जाता है, उतना अन्यत्र

दुर्लभ है। जीवनकी समग्रता, सार्थकता तथा सफलताका

सारभूततत्त्व हमारे वैदिक साहित्यमें परिलक्षित है, जिसका

व्यावहारिक जीवनमें अनुपालनकर हम व्यष्टि एवं समष्टि—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ (रा०च०मा० ७।११२ (ख))

भी इसी उच्चादर्शको ध्यानमें रखकर कहा है-

महात्मा सुदुर्लभः ॥'(गीता ७। १९) गोस्वामी तुलसीदासजीने

तो यदि हमें मानवजीवनके विकासक्रमकी चरम परिणतितक पहुँचकर अपने चरम एवं परम लक्ष्य अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति करनी है तो हमें 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् भोग एवं त्यागका सुखद समन्वय व्यावहारिक

रूपमें करना होगा। साथ-ही-साथ प्राणिमात्रके कल्याणकी भी हार्दिक कामनाको विकसित करना होगा। तभी तो हमारे मनीषियोंने उद्घोषणा की है-न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥ अर्थात् हे प्रभो! न तो मुझे राज्य-सुखकी कामना है

और न ही स्वर्गप्राप्तिकी अभिलाषा। मैं जन्म लेकर पुन:

सांसारिक भोगकी इच्छा भी नहीं करता। मैं तो दु:खसे दग्ध प्राणिमात्रके क्लेशोंका निवारण करना चाहता हूँ।

## अभिवादनका स्वरूप-रहस्य और फल

(विद्यावाचस्पति डॉ॰ आर॰वी॰ त्रिवेदी 'ऋषि', वैद्याचार्य, आयुर्वेदशास्त्री)

ले जाते हुए बन्दगी या जुहार किया जाता है, जिसका

अभिप्राय यही हो सकता है कि आपकी चरणधूलिको हम

विनम्रतासे मस्तकसे लगाते हैं। सेनाके सैनिक सावधानीसे

पैर फटकारते हुए बाँह मोड़कर अँगुली सीधी करके

बोले प्रणाम नहीं होता। एक हाथसे, हाथकी अँगुलीसे या

हाथमें छड़ी लेकर, सिरस्त्राणसहित या हाथमें हाथ लेकर

प्रणाम करना प्रणाम नहीं कहलाता। ये सभी प्रकारान्तरसे

करनेसे जीवनभरका पुण्यार्जन समाप्त हो जाता है-

जन्मप्रभृति यत्किंचित् सुकृतं समुपार्जितम्।

तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात्॥

गाली-गलौज, क्रोध आदिसे वातावरणको दूषित नहीं

करना चाहिये। धूम्रपान, मद्यसेवन करके वहाँ नहीं जाना

फिर स्वीकारकर्ताकी हानि अवश्यम्भावी है।

बिना हाथ जोडे, बिना मस्तक झुकाये, बिना मुँहसे

महर्षि व्याघ्रपादके मतानुसार एक हाथसे अभिवादन

बायें हाथसे नमस्कार करने और लेनेसे प्रथम कर्ता

देवालय या देवविग्रहके समक्ष हँसी, मजाक या

कनपटीतक ले जाते हैं। इसे सैल्यूट कहते हैं।

अवहेलना या हास्यास्पद हैं।

विद्याबहुल, विश्वगुरु, धर्मप्राण देश भारत अध्यात्म-न होकर अन्तरात्मामें स्थित प्रभुको किया जाता है।

चेतना, संस्कृति और सदाचारका सदासे केन्द्र रहा है। मुसलिम भाइयोंमें तथा अन्य वर्गके लोगोंमें कमर

भारतीय संस्कृतिमें अभिवादन, प्रणाम, आज्ञापालन एवं झुकाकर पृथ्वीतक सीधा हाथ ले जाते हुए फिर मस्तकतक

हरिस्मरणका बड़ा महत्त्व है। यह प्रवरजनों और मान्यजनोंके

प्रति श्रद्धा, लगाव या झुकावका प्रतीक है। हमारी

संस्कृतिमें मानव ही क्या जड-जंगम तथा अन्य जीव भी

आदरके पात्र हैं; यहाँ वृक्षों, निदयों, सरोवरों, शैलखण्डोंको

भी देवता मानकर पूजा जाता है और नमन किया जाता

है, अपनी आस्था और श्रद्धा समय-समयपर दिखायी जाती

है तथा उनसे मनोभिलषित कामनाएँ प्राप्त की जाती हैं।

घरके, समाजके सभी वृद्धों, ज्ञानवृद्धों, आयुवृद्धों, अतिथियों,

साधु-सन्तोंको अपनी समाज-कुलपरम्पराके अनुसार प्रणाम,

अभिवादन और पूजनके द्वारा, शुद्ध आस्थासे हाथ जोड़कर,

मस्तक झुकाकर, चरणस्पर्श करके, चरणरज या चरणोदक

लेकर प्रणम्योंसे विविध प्रकारके आशीर्वाद तथा मनौतियाँ

युगों-युगोंकी है। प्रणाम एक छोटी-सी प्रक्रिया है, जीवनरूपी

क्षेत्रमें आशीर्वादका अन्न उगानेका बीजमन्त्र है, सुर-असुर,

नाग, किन्नर तथा गन्धर्व सब-के-सब इस वशीकरण मन्त्रके वशमें रहते हैं। प्रणाम एवं अभिवादन मानवका

सर्वोत्तम सात्त्विक संस्कार है। मूलत: प्रणाम स्थूल शरीरका

प्रणाम-अभिवादन, चरणवन्दनकी रीति आजकी नहीं,

प्राप्त की जाती रही हैं।

२९२ * आत्मनः प्रतिकूलानि	ने परेषां न समाचरेत्* [ जीवनचर्या-
<u> </u>	**************************************
चाहिये। इधर-उधरकी बातोंसे मन हटाकर विनम्रतासे	ही होता है।
अंजलि बाँधकर देवविग्रहको प्रणाम करना चाहिये।	अपने समान लोगोंको दोनों हाथ जोड़कर, वक्ष:स्थलके
गुरुजनोंके वचनोंपर विश्वास करना तथा उनकी	समक्ष लगाकर, अंजलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर अभिवादन
आज्ञाका पालन करना भी अभिवादन और विनम्रताका ही	करना चाहिये।
रूप है, इससे गुरुजन प्रसन्न होते हैं। इसमें उनका सम्मान	अपनेसे बड़ोंके आनेपर देखते ही खड़ा हो जाना
भी है। यदि कोई महापुरुष मनसे नहीं चाहते कि कोई	चाहिये और आगे बढ़कर अभिवादन करना चाहिये। कोई
उनके चरणस्पर्श करे या प्रणाम करे तो नहीं करना चाहिये;	विशेष स्थिति या परिस्थिति न हो तो उनके पासतक
क्योंकि उनकी प्रसन्नता उनकी आज्ञापालनमें है, उनके	आनेकी प्रतीक्षा न करके स्वयं उनके पासतक जाना
प्रसन्न होनेमें आपका लाभ है।	चाहिये। उन्हें अपने पास अभिवादन या चरणस्पर्शहेतु नहीं
महर्षि मनुमहाराजके अनुसार मौसी, भाभी, सास,	बुलाना चाहिये। पास आनेपर उन्हें आदरसे बिठाना चाहिये
बुआ, बड़ी बहन—ये सभी गुरुपत्नीके समान हैं, इनका	और सत्कार करना चाहिये। कभी भी पूज्य या प्रवरको
आदर और अभिवादन होना चाहिये।	सोते या लेटे होनेकी स्थितिमें अभिवादन या चरणस्पर्श
दूसरे सम्प्रदायके लोगोंसे व्यवहार करते समय	नहीं करना चाहिये। न इधर-उधर उन्हें खिसकाकर या
उनकी मर्यादाका पालन करना चाहिये। ऐसा करनेसे	हाथ-पैर खींचकर प्रणाम या अभिवादन करना चाहिये।
पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, आदरभाव और विनम्रताकी वृद्धि	अपने अन्दर श्रद्धा, आस्था और अर्पण भाव हो तो
होती है।	अभिवादनका आपको आशाजनक फल प्राप्त होगा।
प्रात:काल उठकर सर्वप्रथम माता-पिता तथा अपनेसे	प्रणाम, अभिवादन प्रणम्यके सामनेसे ही करें, दायें-
बड़े या प्रवरोंको प्रणाम करना नित्यविधिमें आता है।	बायें या पीठ पीछेसे न करें। साथ ही पूर्वपरिचय न हो
अष्टांग-प्रणामकी अभिक्रियामें जानु, पाद, हाथ, उर,	तो नाम, गोत्र, स्थान, पितादिका नाम बोलकर दूरसे ही
बुद्धि, सिर, वचन और दृष्टिका संयोग होता है—	जूते-चप्पल उतारकर तथा शिरस्त्राणके बिना हाथोंकी
जानुभ्यां च तथा पद्भ्यां पाणिभ्यामुरसा धिया।	अंजलि बाँधकर प्रणाम किया जाना चाहिये, किंतु स्त्री सिर
शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरित:॥	ढककर ही प्रणाम करे।
प्रणाम करते समय व्यक्तिको पेटके बल लेटकर	देवविग्रहको, आचार्यको, साधुको और अन्य पूज्य
भूमिपर अपने दोनों हाथ आगे करना चाहिये। इस क्रममें	सम्मान्य जनोंको, देवालयको या देवप्रतिमाको, संन्यासीको,
मस्तक, भ्रूमध्य, नासिका, वक्ष, उरु, पेट, घुटने, करतल	त्रिदण्डी स्वामीको, साधु-महात्माओंको देखकर जो प्रणाम
तथा पैरोंकी अँगुलियोंके अग्रभागको भूमिस्पर्श करना चाहिये।	नहीं करता; वह प्रायश्चित्तका भागी होता है—
तदनन्तर दोनों हाथोंसे प्रणम्यके चरणोंका स्पर्श करके	देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम्।
घुटनोंके बल बैठकर उनके चरणोंसे अपने करतलोंका स्पर्श	नमस्कारं न कुर्वीत प्रायश्चित्ती भवेन्नरः॥
करना और उनके पादांगुष्ठोंका हाथोंसे स्पर्श करके अपने	यदि स्नान न किये हों, शरीर शुद्ध न हो, अशुचि
नेत्रों तथा वक्षसे लगाना चाहिये तथा साथ ही अभिवादनसूचक	अवस्था हो तो प्रवरजनोंका स्पर्श न करे।
शब्द भी उच्चारण करना चाहिये। इसका अभिप्राय सन्तुष्टि	स्नान करते समय, दन्तधावनके समय, शौचादिके
तथा शक्तिका अपने अन्दर स्थापन करना है।	समय, तैलाभ्यंगके समय, शव ले जाते समय प्रणाम
घुटनोंके बल बैठकर प्रणम्यके चरणोंका मस्तकसे	करनेकी आवश्यकता नहीं। श्मशानमें, कथास्थलमें, देवविग्रहके
स्पर्श करना या हाथोंसे स्पर्श करना प्रणामका अर्धरूप है।	सम्मुख केवल मानसिक प्रणाम करे। यदि स्वयं भी इसी
चरणस्पर्श उन्हीं प्रवरोंका होता है, जिनकी समीपता	स्थितिमें हो तब भी मानसिक प्रणाम करे।
सुलभ है। जिनका सामीप्य सुलभ नहीं है, उनके प्रति	अपनेसे छोटी आयुके बच्चोंको प्रणामका स्नेहमयी
अपनी श्रद्धा, कृतज्ञता आदिका ज्ञापन उनका स्मरण करके	वाणीसे आशीर्वादात्मक उत्तर दे।
चरण-वन्दन या नमस्कार बोलकर अथवा मानसिक रूपसे	दूरसे, जलमध्यमें, दौड़ते हुए या धनके कारण

-1/	रूप-रहस्य और फल∗ २९३
घमण्डीको, क्रोधीको, मदोन्मत्त या पागलको भी नमस्कार न करे—	उनकी प्रणाम करनेकी आदत पड़ गयी। हर आगन्तुक ब्राह्मणको वे नमस्कार करने लगे। एक दिन सप्तर्षि उस
दूरस्थं जलमध्यस्थं धावन्तं धनगर्वितम्।	मार्गसे निकले, बालक मार्कण्डेयने पता लगते ही उन्हें
क्रोधवन्तं मदोन्मत्तं नमस्कारोऽपि वर्जयेत्॥	प्रणाम-निवेदन किया। अब क्या था, सातों ऋषियोंने एक
दम्भ, झूठ और हिंसारहित वेदाभ्यासी; तपस्या,	साथ 'दोर्घायुर्भव' की झड़ी लगा दी तो मार्कण्डेयजी
सन्तोष एवं भक्तियुक्त ब्राह्मणका आशीर्वाद तो क्या दर्शन	चिरजीवियोंकी श्रेणीमें आ गये। आशीर्वाद प्राप्त हो गया।
ही लाभप्रद है।	अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य,
वृद्धजनोंके नमस्कारसे प्रभुको नमस्कार हो जाता है।	परशुराम—इन सातोंके साथ ही आठवाँ नाम चिरजीवियोंमें
प्रवर तथा प्रणम्य कई प्रकारके होते हैं, आयुमें कम हों,	मार्कण्डेयका भी जुड़ गया।
किंतु ज्ञान तथा तपस्यामें एवं पदमें बड़े हों तो प्रणम्य हैं।	प्रणामकी महिमाको दर्शानेवाली एक अन्य कथा है,
त्याग एवं ज्ञानके अनन्तर विद्या और उसके पश्चात् वर्णका	युधिष्ठिरने पादत्राण, रथ और अस्त्र त्यागकर पितामह
विचार किया जाता है। अवस्थाका विचार तो मात्र अपने	भीष्मके पास जाकर महाभारतयुद्धमें विजयकी चाहसे उनको
ही वर्णमें होता है।	प्रणाम किया। भीष्मने कहा—तुम्हारे शील और विनयने मुझे
शुकदेवजी ज्ञान तथा तपस्याकी मूर्ति थे। इसी कारण	भी परास्त कर दिया, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, 'विजयी भव'
उनके पिता श्रीवेदव्यासजीने उन्हें अभ्युत्थान दिया और	तुम्हारी जीत होगी, इसमें सन्देह नहीं, यह मेरा आशीर्वाद है।
प्रणाम किया। इसी प्रकार श्रीगणेशजीने अपने माता-पिताकी	पितामह भीष्मसे आशीर्वाद लेकर महाराज युधिष्ठिर
सेवा करके उन्हें प्रसन्न किया और देवताओंमें प्रथम पूज्य,	आचार्य द्रोणके पास गये और प्रणाम करके उनकी
अग्रगण्य और गणनायकका स्थान प्राप्त कर लिया।	परिक्रमा की तथा अपने हितकी बात पूछी तो आचार्य द्रोण
चरणोंके प्रति विभिन्न क्रियाओंसे हम अपने अनेक	बोले, महाराज युधिष्ठिर! यदि युद्धका निर्णय कर लेनेसे
भाव मौन रहकर भी व्यक्त कर देते हैं। चरणस्पर्शसे	पहले तुम मेरे पास न आये होते तो मैं तुम्हें सर्वथा पराजित
आदर-भाव, चरण पकड़कर अथवा चरणोंमें सिर झुकाकर	होनेका शाप दे देता। अब मैं तुम्हारे आनेसे प्रसन्न हूँ, तुमने
क्षमायाचना और समर्पणभाव दर्शाये जाते हैं। इसी प्रकार	मेरा बड़ा सम्मान किया, अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, युद्धमें
चरण दबाकर सेवाभाव, क्षमायाचना अथवा विनतीका भाव	विजय प्राप्त करो।
प्रकट किया जाता है। किसीके आगमनपर चरण धोकर	इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर अपने कुलगुरु कृपाचार्य
प्रसन्नता तथा आदरभावका प्रदर्शन होता है। गुरुनानकदेवने	एवं महाराज शल्यके पास भी गये और उन्हें भी अभिवादन
अपने शिष्य अंगददेवजीको जब गद्दीका भार सौंपा तब	करके प्रसन्न किया और विजयका आशीर्वाद प्राप्त किया।
श्रीफल, दक्षिणा तथा उत्तरीय देकर चरणस्पर्श और	अब प्रणामके अभावमें भी उदाहरण देखें—
नमस्कार किया था।	महाराज दिलीप बहुत समयतक नि:सन्तान ही रहे
रोमन कैथोलिक ईसाई समुदायके सर्वोच्च धर्मगुरु	तो चिन्तित मनसे अपने कुलगुरु विसष्ठजीके पास गये।
पोप गुडफ्राइडेके एक दिन पूर्व होली थर्सडे सर्विसके	प्रणामाभिवादनके पश्चात् वसिष्ठजीने अपनी दिव्य दृष्टिसे
अवसरपर १२ व्यक्तियोंके चरण धोते हैं; क्योंकि ईसामसीहने	देखकर बताया—तुम एक बार स्वर्गसे लौट रहे थे तो
सूलीपर जानेसे पूर्व रातको अपने शिष्योंके पैर धोये थे।	मार्गमें कामधेनुके मिलनेपर तुमने उसे प्रणाम नहीं किया।
महर्षि मृकण्डुको पता चला कि उनके पुत्रकी आयु	कामधेनुने इस कारण तुम्हें नि:सन्तान होनेका शाप दे
मात्र छ: माह शेष है तो उन्हें चिन्ता हुई और उन्होंने अपने	दिया कि तुमको मेरी सन्तानकी आराधना–सेवाके बिना
पुत्र मार्कण्डेयका यज्ञोपवीत कराकर उपदेश दिया—वत्स!	नि:सन्तान ही रहना पड़ेगा। अत: कामधेनुकी पुत्री
तुम किसी उत्तम द्विजको कहीं देखो तो उन्हें विनयपूर्वक	नन्दिनी जो मेरे आश्रममें है, तुम उसकी सेवा करो तो
प्रणाम करना। बालक मार्कण्डेयने बात मान ली और	तुम्हें यशस्वी पुत्रकी प्राप्ति होगी। राजाने निष्ठासे गोसेवा

की। साथ ही रानी सुदक्षिणाने भी प्रात:-सायं गौका पितरेव ही नारीणां दैवतं परमं स्मृतम्।
पितके अतिरिक्त दूसरे सभी पुरुषोंको बिना स्पर्श
किये ही विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर नमस्कार करना
चाहिये अथवा भूमिपर बैठकर अष्टांग प्रणामका अर्धरूप
ही अपनाना चाहिये। क्योंकि—
वसुन्धरा न सहते कामिनीकुचमर्दनम्।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

पूजन-वन्दन किया और सेवा की, जिसके प्रभावसे उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई।

पितृजनोंके अभिशापसे सन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्यका अभाव हो जाता है। इस अभावकी पूर्ति भी उन्हें प्रसन्न करनेसे होती है, देखें— कण्वाश्रममें प्रणयमुग्धा शकुन्तलाको महर्षि दुर्वासाने शाप दे दिया, तू जिसके ध्यानमें बैठी है, वह तुझे भूल जायगा।

सिखयोंको शापका पता लग गया, अनुनय-विनय तथा प्रणाम-

निवेदनसे उन्होंने दुर्वासाको प्रसन्न कर लिया। दुर्वासाने

कहा—जब अँगूठी देख लेगा, तब वह स्मरण कर लेगा।

प्रणाम, अभिवादन तथा सेवाके अभावमें गुरु और

प्रणामकी महत्ता निरूपित करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि वह मानवशरीर व्यर्थ है, जो सज्जनों, गुरुजनों और देवविग्रहके सम्मुख नहीं झुकता—

ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥ (रा०च०मा० १।११३।४) वह सिर कड़वी तुम्बीके समान है, जो श्रीहरि और

परम आराध्य इष्टदेव है—

वह सिर कड़वी तुम्बिक समान है, जो श्रीहरि अ गुरुजनोंके चरणोंमें नहीं झुकता।

प्रणामाभिवादनकी महिमा बड़ी महनीय है, परंतु स्त्रीको किसी परपुरुषका चरण-स्पर्श नहीं करना चाहिये। श्रीमद्भागवत (६।१८।३३)-के अनुसार पति ही स्त्रीका अन्तर्यामीरूपसे सबके अन्तःकरणोंमें स्थित परमपुरुष वासुदेवको ही प्रणामादि करते हैं। जिस प्रकार समस्त नदियोंकी एकमात्र गति अथवा

आश्रय सागर ही है, उसी प्रकार अखिल साधनाओंका

सज्जन लोग आपसमें जो करते हैं, शरीर और शरीरपर अभिमान करनेवाले अहंकारको नहीं करते, बल्कि वे

अर्थात् स्त्रीकुचोंका भार पृथ्वी सहन करनेमें असमर्थ

श्रीमद्भागवत (४।३।२२)-के अनुसार प्रणामका

अर्थात् हे सुमध्यमे! अभ्युत्थान, विनम्रता, प्रणामादि

रहस्य समझाते हुए स्वयं शंकरजी सतीजीसे कहते हैं— प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे। प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने॥

है। अतः स्त्रीको साष्टांग प्रणामका निषेध है।

**ाजीवनचर्या**−

आकाशात्पितितं तोयं यथा गच्छित सागरम्। सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छिति॥ अर्थात् आकाशसे गिरा जल जिस प्रकार सागरकी

अन्तिम लक्ष्य परमात्मा ही है।

अयात् आकाशस गिरा जल जिस प्रकार सागरका ओर जाता है, उसी प्रकार सभी देवोंके लिये किया गया नमस्कार भी केशव (ईश्वर)-को ही प्राप्त होता है।

विज्ञानके मतसे दृष्टिपात करें तो प्रत्येक मानविपण्डमें विद्युत्की आकर्षणशक्ति होती है, जो ऋणात्मक एवं धनात्मक दो प्रकारकी है। इसलिये धनका धनसे और ऋणका ऋणसे स्पर्श होनेसे प्रणम्य और प्रणामकर्ता

दोनोंकी निगेटिव-पॉजिटिव धाराएँ मिलती हैं, जिससे गुरुजनोंके सद्गुण प्रणामकर्ताके शरीरमें प्रवेश करते हैं। यही गुरुजनोंके द्वारा सिर या पीठपर वरदहस्त रखने,

सूँघने या पुचकारनेसे अन्दर प्रवाहित विद्युत्-शक्तिका संचार प्रणत-जनको ऊर्जान्वित कर देता है। प्रणामनिवेदनके सन्दर्भमें मनुमहाराजका कथन है—

> अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

अाहार-विज्ञान \* अङ्क ] अर्थात् वृद्धजनों, प्रणम्यजनों, माता-पिता आदिको जो देवा कुर्वन्ति साहाय्यं गुरुर्यत्र प्रणम्यते। अर्थात् गुरुओंको प्रणाम करनेसे देवताओंकी कृपा नित्य सेवा-प्रणामादिसे प्रसन्न करता है; उसके आयु, विद्या, यश और बल चारोंकी वृद्धि होती है। प्राप्त होती है। इसी बातकी पुष्टि स्कन्दपुराणसे होती है-बच्चोंमें छोटी आयुसे ही प्रात: उठनेपर प्रभुस्मरण पश्चात् बडोंका चरणस्पर्श-अभिवादन करनेकी, समवयस्कोंको अभिवादनशीलस्य वृद्धसेवारतस्य बुद्धिर्वर्धतेऽहरहोऽधिकम्॥ राम-राम, राधे-राधे तथा छोटोंको स्नेह करनेकी—इस आयुर्यशोबलं अर्थात् वृद्धजनोंकी सेवामें रत अभिवादनपरायण प्रकार यथायोग्य आदर-सत्कार, आशीर्वाद आदिकी आदत जनोंके आयु, यश, बल और बुद्धिकी दिनोंदिन वृद्धि होती डालनी चाहिये तथा शामको शयनसे पूर्व भी प्रभुस्मरण रहती है। तथा— आदि होना चाहिये। ऐसी शिक्षा सर्वत्र आबालवृद्धमें होनी नीतिशास्त्रके अनुसार— चाहिये। यह नित्यचर्याका सर्वश्रेष्ठ कर्म है। आहार-विज्ञान (डॉ० कु० शैलजाजी वाजपेयी, आहारविशेषज्ञ) आजकल मानवकी जीवनचर्या पश्चिमकी संस्कृतिसे नहीं, अपितु उसके दीर्घायु-जीवनकी कामना और प्रभावित होकर अवैज्ञानिक, असंयमित, अनियमित, आरोग्यताके लिये किया जाता है। इसी शरीरमें ईश्वर-अंशरूपी जीव भी अवस्थित है, जो वैश्वानर (जठराग्नि)-असंस्कारिक और अस्त-व्यस्त होकर तन और मनको अस्वस्थ और तनावग्रस्त बनानेवाली हो गयी है। इसकी रूपसे प्रत्येक प्राणीद्वारा चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय— पृष्ठभूमिमें भारतीय संस्कृति और धर्मशास्त्रोंमें वर्णित इस प्रकारसे ग्रहण किये आहारको नैवेद्य-भावसे जीवनचर्यासे सम्बन्धित नियमों और निर्देशोंके प्रति अज्ञानता ग्रहण करता है। इस स्थितिमें ऋषि-मुनियों, आयुर्वेदाचार्यों और अर्थकी दौड़में यन्त्रवत् दैनिक चर्या प्रमुख है। और मनीषियोंके समक्ष अनेक प्रश्न उपस्थित हो गये; चूँकि मनुष्यके समस्त आचार-व्यवहार, चेष्टा और जो सात्त्विक, पवित्र, पौष्टिक और आदर्श आहारसे कर्म शरीरके माध्यमसे ही सम्पन्न किये जाते हैं, अत: सम्बन्ध रखते थे। यथा—मानवशरीरके लिये श्रेष्ठ मानवशरीरको परमात्माकी अनुपम कृति मानकर उसकी आहार कैसा हो, किन उपकरणों (भोज्य पदार्थों)-स्वस्थता और सुरक्षाका विशेष ख्याल रखना चाहिये। का किस मात्रा और अनुपातमें संयोग किया जाय आध्यात्मिक दृष्टिसे यह शरीर देवमन्दिर है। इसमें तथा किस विधिसे संस्कारित किया (पकाया) जाय, जिससे वात, पित्त तथा कफ—ये त्रिदोष उत्पन्न न हो

अवस्थित जीव (आत्मा) इसीको अपना आश्रय बनाकर सकें, जठराग्नि सम रहे तथा पाचनमें सुगमता हो और अपनी जीवनयात्रा पूर्ण करता है। कर्मयोग, भक्ति और

ईंधनकी आवश्यकता होती है, वैसे ही शरीरको गतिशील

बनाये रखनेके लिये आहारकी आवश्यकता होती है।

यह आहार स्वादके साथ शरीरके उदरकी पूर्तिके लिये

मोक्षसाधना भी इसी शरीरके माध्यमसे सम्भव है।

इसके लिये इस शरीरको स्वस्थ, नीरोग और ऊर्जावान् बनाये रखना नितान्त आवश्यक है। जिस तरह किसी यन्त्र या वाहनको गति प्रदान करनेके लिये

माने गये हैं-समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

इन सबके फलस्वरूप तन, मन, इन्द्रिय और आत्मा

प्रसन्नताका अनुभव करे। ये ही स्वस्थ मनुष्यके लक्षण

(सुश्रुत-संहिता, सूत्रस्थान १५।४१) इन प्रश्नोंका हल ढूँढ़ते हुए विद्वानोंके विचारमें ये

२९६ * आत्मनः प्रतिकूला	न परेषां न समाचरेत्* [ जीवनचर्या-
**********************	*****************************
प्रश्न भी उपस्थित थे कि किस देश, काल, भौगोलिक	विभिन्न निर्माणविधिसे अतिरिक्त गुणोंका आधान करण
स्थिति, जलवायु, वातावरणमें वहाँके व्यक्तिके लिये कौन-	या <b>संस्कार</b> है। आहारमें अधिक गुणोंकी प्राप्तिहेतु एकसे
सा आहार उपयुक्त होगा, किस तरह, किन लोगों, किस	अधिक समान गुणोंवाले द्रव्योंका सम्मिलन <b>संयोग</b> है।
परिस्थिति और किसके माध्यमसे आहार-निर्माण कराया	संयोगमें द्रव्योंके सम्मिलनका अनुपात-निर्धारण <b>राशि</b> या
जाय, ताकि व्यक्तिकी शरीररचना, आयु, कर्मके स्वरूपके	मात्रा है। आहारीकी रुचि, देश-कालकी जलवायुके
अनुरूप आवश्यक प्रोटीन, कार्बोज, विटामिन्स, खनिज,	अनुसार द्रव्योंमें अतिरिक्तका आधान लानेहेतु जल, ऊष्मामें
लवण, वसा आदि शरीरोपयोगी तत्त्वोंकी पर्याप्त पूर्ति हो।	आवश्यकतानुसार मात्रामें परिवर्तन, जिससे आहार पथ्य
उन्हें इस बातको तय करना था कि भोजन कितनी मात्रा	हो, इसका ध्यान रखा जाना एवं अन्तमें इन विधियों—
और कितनी बार, किस समयपर ग्रहण करना उपयुक्त	विशेषायतनोंसे आहारीकी सन्तुष्टि और पुष्टता प्राप्त हो,
होगा। भोजन-ग्रहणकी विधि कैसी हो, ग्रहण करते समय	इसके लिये आहारग्रहणविधि तैयार करना उपभोक्ताके
भोजन परोसनेवालेके मनोभाव कैसे हों, किन व्यक्तियोंके	अन्तर्गत आता है।
साथ और किस व्यक्तिके स्पर्श और दृष्टिदोषसे बचकर	इस अष्ट-आहारग्रहणविधिको ध्यानमें रखकर यहाँ
भोजन करना हितकर होगा। भोजनोपरान्त कौन–सी क्रियाएँ	आहारप्रकृति, अन्नशुद्धि, भावशुद्धि, कालशुद्धि, मात्रानिर्धारण,
भोजन पचानेमें सहायक होंगी, उसे भी जानना आवश्यक	देशनिर्णय, क्रियाशुद्धि, आहारग्रहणविधि आदिपर विचार
था आदि–आदि।	करते हुए भोजनविज्ञानके स्वरूपका निदर्शन प्रस्तुत है—
विद्वज्जनोंने इन प्रश्नोंको ही आहारके विषय मानकर	आहार या भोजनविज्ञान
गहन चिन्तन, मनन और परीक्षणकर एक आदर्श संहिता—	<b>आहारप्रकृति</b> —प्रत्येक भोज्य पदार्थमें प्रकृतिप्रदत्त
भोजनविज्ञान मानवके कल्याणार्थ तैयार की, जिसके प्रमुख	तीन गुण—सात्त्विक, राजस और तामस गुण पाये जाते हैं।
बिन्दुओंको आयुर्वेदाचार्य चरकने आठ शीर्षकोंमें इस तरह	प्रत्येक गुणका शरीरपर तदनुरूप प्रभाव पड़ता है। इन
समाहित कर प्रस्तुत किया है। यथा—	प्रभावोंको भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१७।८—१०)-में इस
१-प्रकृति (Nature and quality of food	तरह स्पष्ट किया है—
products) l	आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
२-करण (संस्कार) (Preparation Technique)।	रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
३-संयोग (Combination)।	कट्वम्ललवणात्युष्णातीक्ष्णरूक्षविदाहिन: ।
४-राशि (मात्रा) (Quantity)।	आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
५-देश (आदत और जलवायु) (Habit and	यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
Climate) I	उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥
६-काल (Time factor)।	श्रीकृष्णजीके अनुसार सरल, सारवान् और हितग्राही
७-उपयोगविधि (Rules of Use)।	आहार सात्त्विक हैं; इनसे आयु, बल, उत्साह, आरोग्य,
८−उपभोक्ता (User)।	सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है। अधिक कटु, अम्ल,
'प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थो-	लवण, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और दाहक, विदाही आहार
<b>पयोक्त्रष्टमानि भवन्ति'</b> (च०वि० १।२१)	राजिसक हैं। इनके ग्रहण करनेसे दु:ख, शोक और रोग
—इन आठ शीर्षकोंके अन्तर्गत शरीरके लिये	उत्पन्न होते हैं। बासी, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा और स्पर्श
आवश्यक गुणोंकी प्राप्तिहेतु समान गुणवाले पदार्थोंका	तथा दृष्टिसे अपवित्र (उच्छिष्ट) आहार तामसिक होते हैं,
चयन करना <b>प्रकृति</b> है। स्वाभाविक गुणोंसे युक्त द्रव्योंमें	जिनसे तन-मनमें जड़ता, अज्ञानता और पशुभाव जाग्रत्

अन्नशृद्धि सात्त्विक आहारका मुख्य घटक है अन्न। अन्नको

पवित्र और शुद्ध रखनेके लिये आवश्यक है कि उसे

अच्छी तरह छान-बीनकर स्वच्छ जलसे साफकर सुखा दिया जाय। पाकशालामें उपयोगमें आनेवाले बर्तन, कपड़े साफ हों। स्थान हवादार और प्रकाशमय हो। गृहिणी या रसोइया बाह्य एवं आन्तरिक रूपसे शुद्ध हो। उसके परिधान धुले एवं स्वच्छ हों। अन्न मनुष्यके भौतिक शरीरको पोषित करनेके

साथ-साथ सूक्ष्म शरीरकी अवधारणामें भी महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। मनुष्य जैसा अन्न ग्रहण करता है, उसीके

आहारको श्रेष्ठ आहार माना है।

अनुसार उसका अन्नमयकोश निर्मित होता है। इसीसे मनोमयकोश अर्थात् मानिसक वृत्तियाँ स्थिर होती हैं तथा इसीसे ज्ञानमय और विज्ञानमयकोश विकसित होते हैं। इसीलिये भारतीय सनातन संस्कृतिमें अन्नसिहत आहारशुद्धिपर विशेष बल देते हुए कहा गया है कि आहारशुद्धिसे

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ धुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।

सत्त्वशुद्धि, सत्त्वशुद्धिसे ध्रुवा स्मृति और स्मृतिशुद्धिसे

समस्त ग्रन्थियोंका मोचन होता है—

अन्नके सात्त्विकादि गुणानुसार मन भी सात्त्विकादि भावापन्न होता है, चिन्तनशक्ति बढ़ती है। खाया हुआ अन्न

आमाशयमें पचकर तीन भागमें विभक्त होता है—स्थूल असार अंश मल बनता है, मध्यम अंशसे मांस और सूक्ष्म अन्न (सत्त्व)-से मनका निर्माण होता है। अत: अन्नकी

शुचिता और उसपर किये जानेवाले संस्कार भी शुद्ध होने

चाहिये। **भावशद्धि** 

#### **भावशुद्धि** यह मानवशरीर परमात्माका मन्दिर है। अत: आहारसेवन

यह मानवशरार परमात्माका मान्दर है। अत: आहारसवन शरीरकी पुष्टि और पुष्टिके निमित्तमात्र न होकर नैवेद्यरूपमें ईश्वरार्पणभावसे किया जाय। आहारनिर्माण भी इसी भावसे करता है।
आपने स्वयं अनुभव किया होगा कि घरमें पत्नी,

समझकर प्रेम और भक्तिभावसे भोजन निर्मित होनेपर इसी भावसे उसे ग्रहण करनेसे वह शरीरको पुष्टि प्रदान

माँ, बहन आदिद्वारा तैयार किया गया पाक विशिष्ट स्वाद देता है। ऐसा स्वाद पाँच सितारा होटलोंके भोज्य पदार्थोंके

सदस्यके प्रति प्रेम और ममताका भाव है। दूसरी ओर यदि गृहणी असन्तुष्ट, नाराज या चिन्तित अवस्थामें पाक तैयार करती है तो वह भोजन नीरस, रूक्ष और अपथ्य होकर आहारीको अतृप्त और असन्तुष्ट कर देता है।

परमात्माके प्रति भावनात्मक प्रेम और भक्ति, परिवारजनोंके

स्वस्थ जीवनकामनाके साथ-साथ शुद्ध, शान्त, प्रेममय

ग्रहण करनेपर भी प्राप्त नहीं होता। अन्यथा लोग घरमें भोजन

करनेके स्थानपर भोजनालयोंको ही प्राथमिकता देते होते।

इसका मुख्य कारण गृहणीका अपने परिवारके प्रत्येक

वातावरणका होना आवश्यक है।

द्रव्यशुद्धि

द्रव्य भी आहारके गुणोंको प्रभावित करता है। अनीति, अनाचार, चोरी, तस्करी, गबन तथा लूटसे प्राप्त धन पापभावसे ग्रसित होनेके कारण भोजनको उच्छिष्ट

अतः भोजन तैयार करते समय पाकनिर्माताके मनमें

ईश्वरार्पणभावसे किया जाय। आहारनिर्माण भी इसी भावसे बना देता है। ऐसे धनसे तैयार किया गया भोजन तामसी किया जाना चाहिये। मनुस्मृतिमें कहा गया है कि अन्न ब्रह्म गुणोंको उत्पन्नकर आहारीके तन और मनको दुष्प्रभावित

है, रस विष्णु है और आहार ग्रहण करनेवाला महेश्वर कर देता है। यह दुष्प्रभाव आहारीके आचार-व्यवहार,

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− चालचलन, चिन्तन-मनन और कर्ममें स्पष्ट दिखायी पड़ता सम्मिलित किये जाने सम्बन्धी निर्णय आते हैं। पश्चिमी है। महाभारतमें भीष्मपितामहका चरित्र इसका प्रबल प्रमाण देशोंमें जहाँ अधिकांश समय शीत ऋतु रहती है, वहाँ है। अतः मेहनत और ईमानदारीसे अर्जित द्रव्यसे तैयार वैसी ही वस्तुओंका बारहों मास सेवन करते रहनेसे भोजन ही सात्त्विक और आरोग्यप्रद होता है। उनके निवासियोंकी पौष्टिक आहारकी आवश्यकताकी कालशृद्धि पूर्ति हो जाती है। भारत-जैसे देशमें जहाँ छ: ऋतुएँ कालशुद्धिसे तात्पर्य उस समय—कालसे है, जिसमें होती हैं और ऋतुके अनुसार भोज्य पदार्थोंके गुणोंमें भी आहार-ग्रहण करना स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद होता है। परिवर्तन होता रहता है, वहाँ आहारके लिये उपयुक्त स्वस्थ लोगोंको प्रात: एवं सायं दो बार पूर्ण आहार द्रव्योंका चयन, उनके संस्कार और ग्रहणविधिमें विविधता ग्रहण करना चाहिये, इसके मध्य भोजन नहीं करना रखना आवश्यक हो जाता है। इसे ध्यानमें रखकर ही चाहिये। यह विधि अग्निहोत्रके समान है— मनीषियोंने ऋतुके अनुसार आहार-विहारका प्रावधान सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्। ऋतुचर्याके अन्तर्गत किया है। ऋतुभेदसे वात, पित्त और कफका न्यूनाधिक्य होनेके कारण शारीरिक तथा नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥ प्रात:काल और सायं—दोनों भोजनोंके बीच कम-मानसिक अवस्थामें परिवर्तन आता है। चरकसंहिताके से-कम दो याम या प्रहर (एक याम या प्रहर तीन घण्टेका सूत्रस्थानमें ऋतुचर्या-विधानके अन्तर्गत निर्दिष्ट आहार-विहारके नियमोंका अनुपालन अवश्य किया जाना चाहिये। होता है)-का अन्तर रहे। इससे अन्नरसका परिपाक भलीभाँति होता है। इससे अधिक विलम्ब करनेपर क्षेत्रशृद्धि आहारकी सात्त्विकता बनाये रखनेके लिये चौका पूर्वसंचित बलका क्षय होता है। याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्गयेत्। और भोजनगृह—क्षेत्रकी शुद्धि आवश्यक है; क्योंकि याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः॥ प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण और पर्यावरण आचार्य वाग्भटके अनुसार भोजन करनेका उचित हमारे मनको भी प्रभावित करता है। इन दोनों स्थानोंकी अवसर वह है, जब व्यक्ति मल-मूत्र-त्यागके उपरान्त शुद्धि स्वास्थ्यके लिये वैज्ञानिक और लाभदायक है। अपनेको हलका महसूस करे, ठीकसे डकार आ जाय, प्राचीन परम्पराके अनुसार चौका व्यवस्थामें चार प्रकारकी इन्द्रियोंके निर्मल होनेसे मन प्रसन्न हो जाय, भूख लग जाय शुद्धियाँ—क्षेत्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धिका समुच्चय रहा। यह स्थान प्रकाशयुक्त, शुद्ध, हवादार और और भोजनके प्रति रुचि जाग्रत् हो जाय। यदि आप प्रात:-सायं भोजनके पूर्व कलेवा या गोबरसे लिपा होता था। इस कमरेमें अनिधकृत व्यक्तिका जलपान करना चाहते हैं तो कलेवा और भोजनके प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल एक वर्ण और गुणके व्यक्ति ही पाकसामग्री छूनेके अधिकारी होते थे। चौकेके बीच एक पहरका अन्तर अवश्य रखा जाय अन्यथा अध्यशनकी पीड़ा हो सकती है। अस्वस्थ व्यक्ति वैद्य-भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे लोग भूलते जा रहे हैं। आज डॉक्टरके परामर्शानुसार भोजनकालका निर्णय करें। पूर्व जूते-चप्पल पहने कोई भी गृहिणी या उसकी सहेली, आहार जीर्ण हो (पच) जानेपर ही अपर आहार महरी आदि चौकेमें आती-जाती है। पार्टियोंमें भोजन किसी भी सड़कपर नालीके किनारे, बिना किसी सफाई ग्रहण करना चाहिये। देश (ऋतुचर्या) और शुद्धताके, किसीके द्वारा भी तैयार किया जाने लगा है। देशके अन्तर्गत स्थानविशेषकी ऋतुओं और इस इसी तरह बाजारोंमें, गलियोंमें, नालीके किनारे खड़े चाट-कालमें उत्पन्न द्रव्योंके गुणोंका अध्ययनकर उनको आहारमें पकौड़ीके ठेलोंके पास भिनभिनाती मिक्खयों, मच्छर,

अङ्क ]

धूलके बीच खाता हुआ व्यक्ति पर्यावरणकी दूषिताको भूल पाचनमें सुविधा रहे।

क्रियाशुद्धिसे ता जो आहारके लिये दर करनेहेतु व्यक्तिद्वारा उसे अभारतीय संस्कृति सहभोज—दोनों परम्परम्पराओंमें भोजनस्थ गया है। आधुनिक पालनकर जाने-अनज दिशामें चल रही है। पहने, बिना हाथ-पैर बैठकर, किन्हीं भी व्य

करनेकी आदत डालनी चाहिये। मात्रानिर्धारण

#### आहारकी मात्राका निर्धारण आहारीकी शरीररचना,

जाता है। वह यह भी ध्यानमें नहीं रखता कि ऐसे

वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु हमारे शरीरमें प्रवेशकर

रुग्णता पैदा करते हैं। श्मशान-जैसी अपवित्र और उपवन-

जैसी पवित्र जगहमें भोजन करनेसे पाचन-क्रियामें होनेवाले

अन्तरको समझकर शुद्ध स्थानमें भोजन पकाने एवं ग्रहण

किया जाना चाहिये। आहारकी मात्रा पचाने (जठराग्नि)-की क्षमतापर निर्भर करता है। जिस व्यक्तिके शरीरमें वात,

आयु, स्वास्थ्य और भोज्य-पदार्थींके गुणतत्त्वके आधारपर

पित्त, कफ—त्रिदोष सम हों, जठराग्नि ठीक हो, रसादि धातुओंका ठीक निर्माण हो रहा हो, मल-मूत्रकी क्रिया सम

हो, आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हो, उस व्यक्तिका आहार हितकर एवं पथ्य होता है।

उपर्युक्त स्थिति तभी सम्भव है, जब मनुष्य

स्निग्धपदार्थ—तेल, घी, मलाई आदि जिन्हें आयुर्वेदमें गुरुपदार्थ कहा गया है, सीमित मात्रा अर्थात् भूखकी तीव्रतासे आधा लें तथा सभी समय सुपाच्य भोज्य पदार्थ जैसे अन्न, हरी सब्जियाँ आदि तृप्तिपर्यन्त सेवन करें।

आहारकी मात्राका निर्धारण इस दृष्टिसे करें कि आमाशयका आधा भाग ठोस आहारसे, एक चौथाई द्रवपदार्थसे पूरित हो तथा शेष भाग खाली रहे, ताकि क्रियाशुद्धि क्रियाशुद्धिसे तात्पर्य वे सभी कर्तव्य या क्रियाएँ हैं,

जो आहारके लिये द्रव्योंके चयन, पाकसंस्कार और ग्रहण

करनेहेतु व्यक्तिद्वारा सम्पन्न की जाती हैं। आहारग्रहणविधि

**आहारग्रहणविधि** भारतीय संस्कृतिमें आहारग्रहण करनेहेतु एकल एवं

भारताय संस्कृतिम आहारग्रहण करनहतु एकल एव सहभोज—दोनों परम्पराएँ प्रचलित रही हैं। दोनों ही परम्पराओंमें भोजनस्थलके शुद्ध होनेपर विशेष बल दिया

गया है। आधुनिक परम्परा इससे विपरीत सिद्धान्तका पालनकर जाने-अनजानेमें अपने शरीरको रोगी बनानेकी दिशामें चल रही है। वर्तमानमें जहाँ-कहीं भी जूते-चप्पल पहने, बिना हाथ-पैर मुँह धोये किसी भी दिशामें खड़े या

बैठकर, किन्हीं भी व्यक्तियोंके साथ, किन्हीं भी व्यक्तियोंद्वारा तैयार और परोसे गये आहारविन्यासको आदर्शपद्धति और आधुनिक शिष्टाचारकी संज्ञा दी जाती है। भारतीय संस्कृति तो आधुनिक तथाकथित सहभोजको

स्थानपर पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको प्रतिपादित करते हुए स्वच्छ, पवित्र, प्रकाशमय, धूल और कीटाणुमुक्त स्थानपर जूते-चप्पल और शरीरमें धारण किये भारी अधोवस्त्रोंको उतारकर, हाथ-पैर तथा मुखको जलसे साफकर, लकड़ीके पाटे या आसनपर सुखासनमें बैठकर साफ भोजनपात्रमें रखे

गिद्धभोज कहकर उसका तिरस्कार करती है और उसके

पाकको पहले भगवान्को समर्पितकर शान्त और प्रसन्नचित्त दशामें भोजन करनेका पूरा विधान शास्त्रोंमें प्रस्तुत किया गया है। सहभोजकी व्यवस्थाहेतु भी नियम निर्देशित किये गये हैं।

इन विधानोंमें प्रमुख विधान इस प्रकार हैं-

अच्छी तरहसे स्नानकर सन्ध्या, निर्त्याचन समाप्त करनेके अनन्तर भोजन करना चाहिये। भोजनसे पूर्व हाथ-पैर मुख धोनेसे जहाँ बाह्य गन्दगी

अनुसार मल-मूत्र त्यागनेके बाद प्रात: शीतल जलमें

१-स्नानादिके बाद ही भोजन करें - पूर्वाचार्यीं के

दूर होती है, वहीं शीतलता आती है, श्वासगित सम होती है और आयु बढ़ती है।

हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषा पञ्चार्द्रता मता।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥ २-पूर्वाभिमुख होकर भोजन करें—भोजन करते

ाकि समय पूर्वमुख होनेसे आयु बढ़ती है और दक्षिणकी ओर

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− मुख रखनेसे यश प्राप्त होता है-वस्तुएँ ईश्वर-प्रदत्त हैं, अत: भगवान्को बिना अर्पित किये उन्हें ग्रहण करना पाप होगा। गीता (३।१२)-में कहा गया आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्के यशस्यं दक्षिणामुखः। (मनु० २।५२) है—'तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्के स्तेन एव सः' अर्थात् इसका कारण यह है कि प्राणस्वरूप सूर्य पूर्वसे उदित देवताद्वारा प्रदत्त वस्तु उन्हें समर्पण किये बिना जो ग्रहण करता होते हैं, इनसे प्राण (आयु) और शक्ति प्राप्त होती है। है, वह चोर है। भोजन परोसे जानेके बाद अन्नदेवताका स्मरण **३-बैठक या आसन**—भारतीय परम्परानुसार चाहे करते हुए यह मन्त्र पढ़े—'तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि जिस स्थानमें बैठकर या खड़े-खड़े भोजन करना ठीक भ्राजोऽसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि ' नहीं है। भोजनका स्थान पवित्र, एकान्त, गोमय तथा जलसे अर्थात् हे अन्नदेवता! तुम तेज हो, तुम उत्साह हो, तुम बल सिंचित हो, भूमिपर, लकड़ीके पाटेपर या आसनपर हो, तुम ही दीप्ति हो, तुम ही चराचर विश्वरूप हो और तुम सुखासनमें बैठना चाहिये। लकड़ीका पाटा विद्युत्-कुचालकका ही विश्वके जीवन हो, सब कुछ हो। कार्य करता है, जिससे भोजनोपरान्त तैयार आन्तरिक ऊर्जाशक्ति इसके पश्चात् भोजनपात्र (थाली)-का परिसेचन जमीनके सम्पर्कमें न होनेसे संरक्षित रहती है। सुखासनमें अर्थात् उसके चारों ओर जलका मण्डल बनाये। यह क्रिया बैठनेसे आमाशयपर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता है। बाहरी शक्ति और बुरी दृष्टिसे भोजनको सुरक्षित रखनेके ४-भोजनपात्रमें सामग्रीकी व्यवस्था — प्रायः भोजन लिये सम्पन्न की जाती है। थाली-कटोरीमें रखकर परोसा जाता है। पूर्वमें कांसा धातुसे ७-अन्न-संस्कार (बलिवैश्वदेव) — भोजनके लिये बने बर्तन उपयोगमें लाये जाते थे। वर्तमानमें स्टील (लोहे)-घरमें पकायी हुई भोज्य सामग्रीको उसी अग्नि (जिसमें के बर्तनमें भोजन परोसा जाता है, जो अपवित्र माना जाता है। भोजन पकाया गया है)-में पंचभूत—देव, भूत, पितृ, वर्तमानमें तर्क दिया जाता है कि लोहेके बर्तनका उपयोग मनुष्य और ब्रह्मको एक-एक ग्रासका होम करना करनेसे लौह खनिजकी आवश्यकताकी पूर्ति हो जाती है, यह बलिवैश्वदेव या अन्नसंस्कार कहा जाता है। बलिवैश्वदेवमें असत्य है और स्टील तो यथार्थ लौह भी नहीं है। हमारे मनीषी नमक, तेल और क्षार पदार्थ मिला भोजन निषद्ध है (तैलं भी लोहेकी उपयोगिता जानते थे, इसीलिये गरम लोहेकी क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत्)। आहृति देकर कड़ाही और तवेका उपयोग सब्जियों और रोटीके निर्माणके जलसे अग्निका मण्डल बनाते हुए प्रणाम करना चाहिये। ८-**पंचबलि**—तैयार भोजनको पत्तलोंमें एक-एक लिये किये जानेकी अनुशंसा की गयी है। थालीमें कटोरियोंको रखना उचित नहीं है। वेदविज्ञानके ग्रास रखकर थालीके दाहिनी ओर गाय, श्वान, काक अनुसार जड़ पदार्थोंमें भी क्षीण ज्ञान और स्पर्धाकी भावना (कौआ), देवादि और पिपीलिका (चींटी आदि)-का रहती है। ज्ञानशक्तिका माप उद्दाम कहा गया है। छोटी स्मरणकर रख दें। काकबलि पृथ्वीपर रखी जाती है। कटोरियोंको थालीमें रखनेसे उनमें स्पर्धाभाव उत्पन्न हो दोनों संस्कारोंसे भोजनका भाग सभी प्राणियों और जानेसे उसका दुष्प्रभाव भोक्ताके मन और बुद्धिपर पड़ता है। पंचभूतोंको प्राप्त हो जाता है और अन्न संस्कारित होकर ५-एक वस्त्रमें भोजन न करें--- महाभारतमें कहा ग्रहण करनेयोग्य बन जाता है। गया है—**एकवस्त्रो न भुञ्जीत**। अर्थात् केवल एक वस्त्र— ९-भोग-भगवान्को भोग देनेके लिये भोजनके कमरके नीचेका वस्त्र पहनकर भोजन नहीं करना चाहिये। तीन ग्रास तैयारकर एक-एक ग्रास थालीके सामने पात्रसे पाँचसे दस अँगुल हटकर दाहिनी ओर पृथ्वी, भुवन (आकाश) प्राय: लोग कमरके ऊपरका भाग खुला रखकर भोजन करते हैं, यह ठीक नहीं है। भोजन करते समय ऐसे व्यक्ति एक और भूपतियोंको अर्पितकर एक-एक आचमन जल दें। उत्तरीय, जो रेशमी हो तो अधिक उपयुक्त होगा, ओढ़ लें। मन्त्र है—ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा और इससे बाहरी वायुसे शरीर-यन्त्रकी क्रियाएँ बाधित नहीं होंगी। 🕉 भूतानां पतये स्वाहा। इससे पृथ्वी, चौदह भुवनों तथा साथ ही रेशम कुचालक होनेके कारण भोजनकी भीतरी ऊर्जाको समस्त जगतुके स्वामी परमात्माकी तृप्ति की जाती है। **१०-पंचप्राणाहृति—**भोजनसे पूर्व अमृतरूपी जलका सुरक्षित रखकर बाहरी शक्तिका उसपर परिणाम नहीं होने देता। आसन प्रदान करनेहेतु मन्त्र पढ़ें--ॐ अमृतोपस्तरणमसि ६-भोजन भगवान्को अर्पित करें — संसारकी सभी

\* आहार-विज्ञान \* अङ्क ] स्वाहा और आचमन करें। भोजनसामग्रीसे बेरके बराबर है। शास्त्रोंमें नीच, अपवित्र, पापी, चाण्डाल और विजातीय पाँच ग्रास तैयारकर इन मन्त्रोंको कहते हुए मौन होकर आदिका छुआ अन्न ग्रहण करनेका निषेध है। साथ ही एक आत्मस्वरूपको पंचप्राणाहुति दें—ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ ही वर्णके मनुष्यका स्पर्श किया गया अन्न ही ग्रहण करें। पश्चिमके प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्लामेरियनका स्पष्ट मत है कि अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा और 🕉 समानाय स्वाहा। इसके बाद हाथ धोकर प्रत्येक व्यक्तिमें एक आकाशीय द्रव या शक्ति होती है, जो भोजनको परमात्माका प्रसाद मानकर यथाविधि ग्रहण करें। मस्तिष्कसे प्रारम्भ होकर मनोवृत्तियोंके साथ मिलकर शरीरके ११-भोजनकालमें ध्यान रखें—[१] भोजनको स्नायुपथसे प्रवाहित होकर हाथकी अँगुलियोंके पोरोंतक, प्रसाद मानकर उसकी प्रशंसा करें। यदि भोजन नमकरहित, आँखकी दृष्टिमें तथा पैरकी एड़ीतक पहुँचती है। इसका सबसे अधिक प्रभाव हाथकी अँगुलियोंद्वारा ही प्रकट होता चरपरा, खट्टा या आपकी रुचिके अनुकूल न हो तो भी भोजनकी आलोचना न करें। क्रोध करने या भोजन त्यागनेसे है। अत: सत्पात्रका ही अन्न ग्रहण करें। इसी तरह दृष्टिमें मन और शरीर दोनोंको क्षति पहुँचती है, जबिक आनन्दभावसे भी मनुष्यकी आकाशीय शक्तिका प्रभाव रहता है, शास्त्रीय प्राणरूपी स्वादरसका रसास्वादन करते रहनेसे भोजन बल विचार कहते हैं— और पराक्रममें वृद्धि करता है। कहा गया है— पितृमातृसुहृद्वैद्यपुण्यकृद्हं स**ब**र्हिणाम् सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥ पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतद्कुत्सयन्। दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्य प्रतिनन्देच्य सर्वशः॥ अर्थात् पिता, माता, सुहृद्, वैद्य, पुण्यात्मा, हंस, मयूर, सारस और चकवेकी दुष्टि भोजनपर पडती है तो उत्तम है। पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति। इसके ठीक विपरीत नीच, दरिद्र, भूखे, पाखण्डी, स्त्रैण, रोगी, अपूजितं तु तद् भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥ [२] आहारको न अधिक जल्दी, न अधिक देरसे, न मुर्गा, सर्प और कुत्तेकी विषदृष्टि होनेसे अन्न संक्रमित होकर बोलते हुए, न हँसते हुए अपने आहारपात्रमें ही मन और दृष्टि अजीर्ण रोग उत्पन्न कर सकता है। यथा— लगाकर मौन होकर ग्रहण करें। भोजनके बीच बोलने या हीनदीनक्षुधार्तानां पाखण्डस्त्रैणरोगिणाम्। हँसनेसे ग्रास श्वासनलिकामें फँस जानेसे संकट पैदा कर कुक्कुटाहिशुनां दृष्टिभींजने नैव शोभना॥ सकता है। बात करनेसे मुँहके अन्दर बननेवाली लार जो कदाचित् दृष्टिदोष हो जाय तो उसके निवारणार्थ भोजन पचाने और निगलनेमें सहायक होती है, कम बननेसे निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर उसके अर्थका चिन्तन करनेसे भोजन शुद्ध हो जाता है। यथा-पाचनमें व्यवधान उत्पन्न होता है। साथ ही मुँह सूखनेसे ग्रासको निगलनेके लिये बार-बार पानीके घूँट पीने पड़ते हैं। अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः। [३] प्रत्येक ग्रासको अच्छी तरह चबाकर महीन इति सञ्चिन्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते॥ करनेके बाद ही दूसरा ग्रास लें। इससे ग्रास आसानीसे अर्थात् अन्न ब्रह्माका रूप है और अन्नका रस आहारनलिकासे होकर आमाशयतक पहुँच सकेगा और विष्णुरूप है तथा भोक्ता महेश्वर हैं। इस प्रकारका चिन्तन आँतोंको इसे चूर्ण करनेमें मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। करते हुए भोजन करनेपर दृष्टिदोष नहीं होता। अन्य आयुर्वेदके अनुसार एक ग्रासको बत्तीस बार चबाना चाहिये। स्थानपर कहा गया है कि हनुमान्जीका स्मरण करनेसे भी सोलह बार एक दाढसे और सोलह बार दूसरी ओरकी दाढसे दुष्टिदोषका नाश होता है। यथा— चबाना चाहिये, इससे दाँत और मुँहके स्नायु पुष्ट होते हैं। अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्। दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥ [४] भोजन करते समय स्पर्शदोष या दृष्टिदोषसे बचना [५] **जलग्रहणका प्रमाण**—भोजनकालमें आवश्यकता आवश्यक है। विज्ञानसम्मत मत है कि स्पर्शसे एकके शरीरसे दूसरेके शरीरमें रोग संक्रमित होते हैं। केवल रोग ही नहीं, पड़नेपर ही कुछ घूँट जल ग्रहण करें। अधिक जल पीनेसे स्पर्शसे शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंमें भी हेर-फेर हो तथा बिलकुल ही न पीनेसे अन्नका परिपाक नहीं होता। जाता है। प्रत्येक व्यक्तिकी अपनी विशिष्ट वृत्ति होती है। इसलिये पाकाग्नि बढ़ानेके लिये बार-बार थोड़ा जल पीना अत: समान वृत्तिके लोगोंका छुआ या दिया अन्न सुरक्षित होता चाहिये। यथा-

अत्यम्बुपानाच्य विपच्यतेऽन्न स्वाहा' कहकर आचमन करें और भोजनपात्रको नमन मनम्बुपानाच्च स एव दोष:। करते हुए थोड़ा आगे खिसकाकर उठ जायँ। पात्रमें कदापि हाथ नहीं धोना चाहिये। यह पात्रका अपमान है। वह्निववर्धनाय तस्मान्नरो मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥ भोजनोपरान्तकी क्रियाएँ मुखप्रक्षालन — बाहर खुले स्थानपर या वाशबेसिनमें (भावप्रकाश) [६] सात्त्विक, सुपाच्य भोजन ही ग्रहण करें— अच्छी तरहसे हाथ धोकर लगभग सोलह बार कुल्ला ऐसे भोजनसे आयु, बल, उत्साह, आरोग्य, सुख और करते हुए मुखमें फँसे या बचे सभी अन्नकण निकाल दें। प्रीतिकी वृद्धि होती है। राजसिक और तामसिक आहारसे इसीके साथ आँख खुली रखकर जलसे छींटे दें अथवा जड़ता, दु:ख, शोक, अज्ञान, कुरोग और पशुभाव बढ़ता गीले हाथ रगड़कर उससे तीन बार आँख पोंछे। इससे है। आर्यशास्त्रमें प्याज, गाजर, लहसुन तथा छत्राक आदि आँखोंकी ज्योति बढ़ती है। मुखप्रक्षालनके तुरंत बाद वस्तुओंको नहीं लेनेके निर्देश हैं। यथा-लघुशंका अवश्य करें, जिससे अतिरिक्त उष्णता और अम्ल बाहर निकल जाय। लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च। अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥ अन्य कृत्य-भोजन करनेके बाद लगभग १० मिनट वज्रासनपर बैठे। पश्चात् शतपद (१०० कदम) अवश्य चलें। (मनु० ५।५) [७] सहभोजमें ध्यान रखें—आजकल सहभोज तद्परान्त बिस्तरपर वामपार्श्वमें लेटें। नाभिके ऊपर वामपार्श्वमें अग्निस्थान होनेसे अन्नका परिपाक अच्छा होता है। यथा— पंगतके समान न होकर बफेपार्टीके रूपमें आयोजित किये जाते हैं, जिसमें स्पर्शदोष, दृष्टिदोष, भोजनस्थलकी पवित्रता भुक्त्वा राजवदासीत यावन विकृतिं गतः। आदिका बिलकुल ध्यान नहीं रखा जाता। फलत: इस ततः शतपदं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्॥ तरहकी दूषित भोजनप्रणालीसे शरीरमें अजीर्ण आदि एवं चाधोगतञ्चानं सुखं तिष्ठति जीर्यति॥ बहुविध रोग उत्पन्न होते हैं। इससे विचारोंमें विकृति आती वामदिशायामनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम्। है। आर्यशास्त्रमें इस तरहके सहभोज आयोजित करनेकी तस्मात् वामपार्श्वे शयीत भुक्तप्रपाकार्थम्॥ विशिष्ट पद्धति और नियम, भोजनकी सात्त्विकता, शुद्धता भोजनके बाद बिस्तरपर आठ श्वासतक चित्त और आरोग्यको ध्यानमें रखकर तैयार किये गये हैं। इसके लेटें, सोलह श्वासतक दायीं करवट और बत्तीस श्वासतक बायीं अनुसार एक ही श्रेणी और एक ही वर्णके लोगोंको साथ करवट लेट जाना चाहिये। इससे पाचनमें सुविधा होती है। बैठकर भोजन करना चाहिये। इससे उच्च गुणविशिष्ट भोजनके उचित परिपाकके लिये अगस्त्य, वैनतेय

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

[ जीवनचर्या-

विद्युत् शक्ति मलिन नहीं होती। (गरुड), शनि, भीम आदिका भी स्मरण करते हुए निम्न एक वर्णमें पंक्तिभोजन (पंगत)-के समय यह ध्यान मन्त्र पढ़ते हुए उदरपर तीन बार हाथ फेरना चाहिये-रखना चाहिये कि जितने भी व्यक्ति एक साथ बैठें, सभी अगस्त्यं वैनतेयं च शनिं च वडवानलम्। भोजनका प्रारम्भ और समाप्ति एक साथ ही करें; क्योंकि अन्नस्य परिणामार्थं स्मरेद् भीमं च पञ्चमम्॥ पंगतके समय सबके शारीरिक यन्त्रमें क्रियाविशेष होनेसे आतापी मारितो येन वातापी च निपातित:। तथा एक साथ बैठे रहनेसे सभीके भीतर एक वैद्युतिक समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु॥ शृंखला तैयार हो जाती है। भोजनके बीचमें जो पहले उठ इस तरह सार-संक्षेपमें आहारसे सम्बन्धित सभी शास्त्रीय जाता है, यदि वह दुर्बल है तो उसकी वैद्युतिक शक्तिको विधियों, नियमों तथा निर्देशोंका संकलन प्रस्तुतकर पाठकोंसे बाकी बैठे हुए व्यक्ति खींच लेंगे। परिणामत: उसका पुन: निवेदन है कि इन प्रमाणित परीक्षित विधियोंको अपने भोजन ठीकसे नहीं पच पायेगा। यदि उठनेवाला बलवान्

हो तो वह सारे बैठनेवालोंकी शक्ति खींचकर उठेगा,

भोजन समाप्त होनेपर पुनः 'ॐ अमृतापिधानमसि

जिससे बाकी सभीके पेटमें विकार हो सकता है।

पुनः निवदन ह कि इन प्रमाणित पराक्षित विधयाका आचार-व्यवहारमें अपनाते हुए शतायु प्राप्त करें— षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः। जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा सम्मतः सताम्॥

(च०सू० २७।३४८)

अवध्तश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय एवं उनकी दिनचर्या »

# क् महापुरुषोंके पावन चरित

### अवधूतश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय एवं उनकी दिनचर्या ( स्वामी श्रीदत्तपादाचार्य भिषगाचार्य, ए०बी०एम०एस० )

श्रीदत्तात्रेयजीको नमस्कार है-

दत्तात्रेयं शिवं शान्तं इन्द्रनीलनिभं प्रभुम्।

अङ्क ]

आत्ममायारतं देवं अवधृतं दिगम्बरम्॥

उपनिषदों, पुराणों, तन्त्रग्रन्थों इत्यादिमें श्रीदत्तात्रेयका ज्ञान-

आदिगुरु, योगनिधि, विश्वगुरु, सिद्ध-सिद्धेश्वर,

अवधृतकुलशिरोमणि, सर्वत्र समदर्शी, योगपति, यतिश्रेष्ठ,

महाविष्णु, लोकनाथ, शान्तात्मा, महाप्रभु इत्यादि नामोंसे उल्लेख किया गया है। शाण्डिल्य-उपनिषद्में श्रीदत्तात्रेयको 'निर्गुण ब्रह्मका सगुण-साकार-स्वरूप' कहा गया है। दत्तात्रेय-उपनिषद्में

भगवान् ब्रह्माको उपदेश करते समय भगवान् विष्णु स्वयंको दत्तात्रेयस्वरूप बताते हुए दत्तमन्त्रको तारकमन्त्र कहते हैं और उस मन्त्रकी जपसाधना करनेको विशेषत: सूचित करते हैं।

पुत्र अत्रिने विवाहके बाद ही वनमें जाकर उत्कट तपस्याद्वारा विश्वकी एक महाशक्तिको सुपुत्ररूपमें पृथ्वीपर अवतरित

पुराणग्रन्थोंमें वर्णन है कि ब्रह्माके प्रिय मानस-

करना चाहा। धर्मपत्नी अनसूयाने स्वपतिका अनुसरण किया। अत्रि-अनसूयाके उत्कट तप एवं उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् त्रिदेव उनके घर सुपुत्ररूपमें अवतरित हुए।

भगवान्ने कहा—'अहं तुभ्यं मया दत्तः' मैं तुम्हें स्वयंको पुत्ररूपमें दान देता हूँ। दानवाचक शब्द 'दत्त' है और तपोमूर्ति अत्रिके सुपुत्र 'आत्रेय' ज्ञानरूप हैं। अत:

दत्तात्रेय त्याग एवं ज्ञानके अवतार हैं—दत्त+आत्रेय=दत्तात्रेय। श्रीमद्भागवत (२।७।४)-में कहा है कि-

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षित आह तुष्टो दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः॥

भगवान् श्रीदत्तात्रेयने अवतार लेकर किस प्रकार धर्म

एवं समाजका पुनः संस्थापन किया, इस विषयमें विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ब्रह्मपुराण इत्यादिमें विस्तृत वर्णन है।

भगवान् ब्रह्माके मानसपुत्र एवं सप्तर्षियोंमें परिगणित महर्षि अत्रिको स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ब्रह्माके ज्ञाननेत्रसे

अनसूया माने पराप्रकृति, इनके सृजन हैं भगवान् श्रीदत्तात्रेय।

वे केवल महायोगी एवं महाज्ञानी नहीं थे, अपितु आत्मविद्याके उपदेशकोंमें उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ था। श्रीमद्भागवत

(६।८—१६)-में उन्हें योगसाधकोंकी विघ्नोंसे रक्षा करनेवाले 'योगनाथ प्रभु' कहा है। उन्होंने सती मदालसाके पुत्र

अलर्कको योग्य देखकर योगसिद्धि, योगिचर्या, निष्कामबुद्धि

इत्यादिका उपदेश देकर परम योग प्रदान किया था।

राजा ययातिके पुत्र यदुपर भगवान् दत्तात्रेयकी असीम अनुकम्पा हुई थी और उन्होंने यदुको चौबीस गुरुओंसे प्राप्त

शिक्षाका उपदेश दिया था। अवधूतशिरोमणि दत्तात्रेयजीने राजा यदुको बताया कि मैंने चौबीस गुरुओंसे शिक्षा

ली है, तुम उनके नाम सुनो—(१) पृथिवी, (२) वायु, (३) आकाश, (४) जल, (५) अग्नि, (६) चन्द्रमा, (७)

सूर्य, (८) कबूतर, (९) अजगर, (१०) समुद्र, (११)

पतंग, (१२) मधुमक्खी, (१३) हाथी, (१४) मधु निकालनेवाला, (१५) हरिण, (१६) मछली, (१७) पिंगला

उत्पन्न कहा गया है। अत्रि माने त्रिगुणातीत चैतन्य, वेश्या, (१८) कुररपक्षी, (१९) बालक, (२०) कुँवारी

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− गुरुरूपमें देखता है, वह साधनापथपर अग्रसर होकर जगद्गुरु कन्या, (२१) बाण-निर्माता, (२२) सर्प, (२३) मकड़ी और (२४) भूंगी कीट। दत्तात्रेयजीने पुन: बताया कि मैंने एवं विश्वगुरु बन सकता है। (श्रीमद्भा० ११।९—११) पृथिवीसे धैर्य और क्षमाकी सीख ली है, वायुसे निर्लिप्त तन्त्रशास्त्रमें भगवान् दत्तात्रेयको विकाररहित, संसारमें रहना सीखा है, आकाशसे आत्माकी अस्पृश्यताकी सीख रहते हुए जलकमलवत्, संसारबाह्य, ज्ञानसागर होते हुए भी ली है, जलसे पवित्रताकी सीख ली है, अग्निसे निर्दोषताका उन्मत्तवत् आचरण करनेवाले, अव्यक्तलिंग एवं अव्यक्त गुण सीखा है, कलाओंके घटने-बढनेपर भी चन्द्रमाके यथावत् आचारसम्पन्न, परम अवधृत तथा अवधृतश्रेष्ठ कहा गया है। मध्वाचार्यने अपने ग्रन्थ पराशरमाधवमें भगवान् दत्तात्रेयकी रहनेके समान आत्मा भी ह्रास-वृद्धिसे रहित है-यह चन्द्रमासे मैंने सीखा है, सूर्यसे अविकृतिका ज्ञान सीखा है, कबूतरसे परमावधूत-अवस्थाका वर्णन करते हुए उन्हें 'अनुन्मत्ता अनासक्ति सीखी है, अजगरसे प्रारब्धके बलका ज्ञान सीखा उन्मत्तवदाचरन्ति' अर्थात् पागल न होनेपर भी पागल-जैसा आचरण करनेवाले कहा गया है। दत्तात्रेयस्तोत्रमें उन्हें है, समुद्रसे गाम्भीर्यकी शिक्षा ली है, पतंगसे रूप एवं भोगोंसे होनेवाली मृत्युका ज्ञान लिया है, मधुमक्खीसे असंग्रहकी महोन्मत्त कहा है। अद्वैततत्त्वका परमोच्च उपदेश वृत्ति तथा सार वस्तुका ग्रहण सीखा है, हाथीसे मोहजनित कार्तिकस्वामीको देते समय वे अवधूतगीतामें कहते हैं कि **'प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः'** अर्थात् ऐसा परमज्ञानका मेरा भ्रम बन्धनका हेतु है—यह शिक्षा ली है, मधु निकालनेवालेसे लोभका परिणाम सीखा है, हरिणसे गान बन्धनका हेत् है— उपदेश भी एक प्रकारका प्रलाप ही है। दत्तात्रेयोपनिषद्में उन्हें उन्मत्तानन्द एवं पिशाचज्ञानसागर कहा गया है। यह सीखा है, मछलीसे स्वाद बन्धनका हेतु है—यह सीखा है, पिंगला वेश्यासे निराशा वैराग्यका हेतु है—यह सीखा मार्कण्डेयपुराणमें ऐसी कथा है कि जब असुरराय है, प्रिय वस्तुका संग्रह दु:खका कारण है—यह कुरर पक्षीसे जम्भासूरने स्वर्गपर आक्रमणकर देवताओंको परास्तकर सीखा है, बालकसे मानापमानसे रहित सहज वृत्ति सीखी भगा दिया तब देवताओंने भगवान् दत्तात्रेयके पास जाकर है। कुमारी कन्यासे एकान्तवासकी शिक्षा ली है, बाण बनानेवालेसे सहायता माँगी। दत्तगुरुने अपनी अवधृती मस्तीसे देवताओंपर एकाग्रता सीखी है, सर्पसे अनिकेतत्वकी शिक्षा ली है, कृपा और मार्गदर्शनकर उन्हें युद्धमें जिता दिया और पुन: मकड़ीसे सृष्टि एवं लयकी शिक्षा ली है और भूंगीकीटसे स्वर्गप्राप्ति करवा दी। ध्यानकी एकाग्रता सीखी है। भगवान् दत्तात्रेयका अवतार सत्ययुगमें हुआ और वे असुरराज हिरण्यकशिपुके भक्तपुत्र प्रह्लादको भगवान् एक ही देह एवं एक ही भावसे पृथ्वीपर महाप्रलयपर्यन्त दत्तात्रेयने परम वैराग्य एवं सन्तोषका महोपदेश प्रदानकर रहेंगे तथा जीवोंका कल्याण करते रहेंगे। इन दयालु देवका उसका ज्ञानमार्ग प्रशस्त किया था। हैहयवंशी राजा कार्तवीर्यको स्मरण करते ही ये स्मर्तृगामीदेव प्रकट होकर भक्तजनका कल्याण कर देते हैं—'स्मरणमात्रतः आगमात्मनः।' भगवान् दत्तात्रेयने प्रसन्न होकर सहस्रबाहु, स्वधर्मसेवन, समग्र भूमण्डलपर विजय, त्रिलोकप्रसिद्ध भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीके सुपुत्र कार्तिकेयको अवतारी वीरपुरुषद्वारा मृत्यु इत्यादि वर दिये थे। स्वात्मसंवित्का महा उपदेश अवधृतश्रेष्ठ भगवान् दत्तात्रेयद्वारा भगवान् श्रीदत्तात्रेयने पृथ्वीपर अवतरित होकर लीला-अवधूतगीताके रूपमें प्राप्त हुआ था। महर्षि सांकृतिको रूपमें साधकजीवनका अभिनय किया। उन्होंने अपने पिता अवधूतके लक्षण, अवधूतीस्थिति एवं परमोच्च अवधूतज्ञान महर्षि अत्रिकी आज्ञासे गौतमीवनमें दीर्घकालपर्यन्त उत्कट भगवान् दत्तात्रेयकी असीम अनुकम्पासे ही प्राप्त हुआ था। महर्षि जमदिग्न एवं माता भगवती रेणुकाके सुपुत्र तपस्याद्वारा परमतत्त्वकी उपासनाकर परमसिद्धि प्राप्त की वीर भार्गवराम (परशुराम)-को परमोच्च योग एवं ज्ञान थी। गौतमीवनका तपस्यास्थान 'आत्मतीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस स्थानको ब्रह्मपुराणमें दत्तात्रेयतीर्थ भी कहा गया भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे ही प्राप्त हुआ था। इसके है। उन्होंने लीलाहेतु शिष्यभाव धारण किया था। विषयमें त्रिपुरारहस्य ग्रन्थमें विस्तारसे कहा गया है। उनका सदुपदेश था कि जो व्यक्ति शिष्यत्वभाव भगवान् दत्तात्रेयने योगी गोरक्षनाथको परम योग और रखकर सरल, विनम्र एवं मुमुक्ष होकर समग्र जगतुको सहजसमाधिज्ञानका उपदेश दिया था, इसके विषयमें

गोरखनाथरचित ज्ञानदीपबोध नामक ग्रन्थमें वर्णन है। कोल्हापुरमें जपसाधना तथा भिक्षा ग्रहण करते हैं। पांचालपुरमें भगवान् दत्तात्रेयकी दिनचर्याके बारेमें कहा गया है भिक्षान्नका भोजन करते हैं। चन्द्रभागा नदीके किनारे स्थित कि उनका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण भारत है। साधु-संतसमाजमें पण्ढरपुरमें केसर, चन्दनमिश्रित तिलक करते हैं। भीमा-

\* पूज्य श्रीउड़ियाबाबाकी अनूठी जीवनचर्या एवं उपदेश \*

उनको दिनचर्या इस प्रकार प्रसिद्ध है-वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः।

अङ्क ]

दिगम्बर:॥

माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी (दत्तात्रेय-वज्रकवच ३)

लेकर रात्रिपर्यन्त लीलाके बहाने विभिन्न स्थानोंमें विचरण करते हैं। उनका स्मरण श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करनेपर वे अर्थात् भगवान् श्रीदत्तात्रेय प्रतिदिन प्रातः वाराणसी (काशी)-में स्नान करते हैं, महाराष्ट्रके महालक्ष्मीक्षेत्र

दयालुदेव भक्तको दर्शन देकर कृपावर्षा करते हैं। कोल्हापुरमें मन्त्र (सोऽहम्)-का जप करते हैं, मातृक्षेत्र सिद्धदेहसम्पन्न देवके लिये देश और कालका व्यवधान माहरीपुरमें मध्याहनमें भिक्षा (भोजन) ग्रहण करते हैं और गतिका बाधक नहीं होता। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुने अपने

विषयमें धर्मग्रन्थमें कहा है-सह्याद्रि (माहुरगढ़)-के शिखरपर शयन करते हैं। दत्तात्रेयसम्प्रदायमें भगवान् दत्तात्रेयकी दिनचर्याके

विषयमें ऐसी बात प्रसिद्ध है कि वे नित्य सह्याद्रिकी उपत्यकामें स्थित 'मातापुर' नामक गाँवमें विश्राम करते हैं।

सह्याद्रिशिखरपर निवास करते हैं (वह स्थान उनका पीठस्थान

है)। काशीमें पंचगंगाघाटपर वे ब्राह्ममृहुर्तमें स्नान करते हैं।

कहाड़क्षेत्रमें सन्ध्यावन्दन एवं अर्घ्य प्रदान करते हैं।

तीर्थराज प्रयागके पुण्यक्षेत्र प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)-में

पूज्य श्रीउड़ियाबाबाकी अनूठी जीवनचर्या एवं उपदेश

लिये भी उनकी चर्या सदा अनुकरणीय है।

अमरजा नदीके संगमस्थान गाणगापुरमें योगसाधना करते हैं

अभक्त्या वा सुभक्त्या वा यः स्मरेन्मामनन्यधीः।

तदानीं तमुपागत्य ददामि तदभीप्सितम्॥

करनेवाले भक्तको वे कृपालु प्रभु दर्शन देकर उसका मनोरथ पूर्ण करते हैं। न केवल साधकों अपितृ सिद्धोंके

सारांश यह कि अनन्यभावसे उनका स्मरण, चिन्तन

इस प्रकार भगवान् दत्तात्रेय प्रतिदिन प्रात:कालसे

और कुरुक्षेत्रके स्यमन्तक-तीर्थमें आचमन करते हैं।

### चल रहा था। विशाल मण्डप, भव्य सिंहासन, अगणित श्रोता, विशिष्ट महात्माओंकी उपस्थिति। गोपीगीतका प्रसंग— 'श्रीकृष्णकथामृत' दिव्य स्वर्गामृतकी अपेक्षा उत्कृष्ट है, यह प्रसंग चल रहा था। सहसा कथामें बिना कोई विघन

डाले एक महापुरुष आकर सम्मुख बालुकापर विराजमान हो गये। सिद्धासन लग गया। सिर सीधा। दिव्य भव्यमूर्ति। मुखपर मुसकान, नेत्रोंमें प्रेम, मुखारविन्द ज्योतिर्मय। प्रसन्न

गम्भीर मुद्रा, प्रभावशाली व्यक्तित्व। एकाएक लोग परस्पर कुछ कानोंकान बताने लगे-ये ही लोकविख्यात महात्मा श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज हैं। 'तप्तजीवनम्' की व्याख्या

शुरू हुई। 'संसारताप-दग्धके लिये यह कथामृत जीवन है। पापियोंका पापक्षालन है। दु:खियोंका दु:खनिवारण है।

विरहियोंका जीवातु है। प्यारे श्यामसुन्दरसे मिलन चाहनेवालोंके

ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराजद्वारा आयोजित 'अखण्ड लिये दिव्य रसायन है।' प्रवचनकी समाप्तिपर उनकी फूसकी बनी झोपड़ीमें

हरिनाम संकीर्तनयज्ञ' के अवसरपर श्रीमद्भागवतपर प्रवचन

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− पुनः सत्संगका रंग जमा। सोऽवधृतः स ब्राह्मण इति॥ श्रीमहाराजजीकी साधनाकी सुगन्ध धीरे-धीरे चारों श्रीमहाराजजीका तीर्थाटन और सत्संग, चिन्तन, मनन ओर फैलने लगी। उस सौरभसे आकृष्ट होकर लोग आपके और साधन वर्षीतक इसी प्रकार चलता रहा। इसी यात्रा-क्रममें आनन्दरसमें डूबे श्रीमहाराजजी संवत् १९७२ के पास पहुँचने लगे। नाना प्रकारके भक्तोंका ताँता लगने लगा। आषाढ्में पहली बार रामघाट (अनूपशहर) गंगातटपर अच्छे भी आते बुरे भी, सत्पुरुष भी आते, चोर और डाकू पहुँचे। रामघाटकी सुरम्य वनस्थली, गंगातटका मनोहर भी। कोई धूप-दीप-नैवेद्यसे आपकी षोडशोपचार पूजा करता, दृश्य और वसुन्धराकी अद्भृत दीप्ति देखकर आपका मन कोई आपपर नागांजलि चढ़ाता। एक बार एक सिंह उधर आ मुग्ध हो गया। आपने श्रीमहादेवजीका दर्शन करके गया। लोग डरे तो महाराजजीने कहा—'भैया, डरनेकी बात इमलीवाली कुटीमें आसन लगाया। कुटीमें प्रेम-रसानन्दकी नहीं। वह चामुण्डा देवीके दर्शन करनेके लिये आता है। दर्शन अनुभूति करते हुए आप चान्द्रायण आदि अनेक व्रत भी करके चला जायगा।' चला भी गया वह। चलाने लगे। चिदानन्द-सिन्धुमें आप निमग्न रहने लगे। डाकूको अनूठी प्रेरणा इन दिनों महाराजजी दिनभर तो सिद्धासन लगाये बैठे एक बार गर्मियोंमें एक डाकू सरदार आपके दर्शनके रहते थे, रात्रिमें भी नहीं लेटते थे। जब कभी बैठे-बैठे लिये पहुँचा। उसपर दस हजार रुपयेका इनाम था। पेड़के थक जाते तो कुहनियोंके बल आगेकी ओर झुककर थोड़ा-सहारे बन्द्रक टिकाकर महाराजजीको प्रणाम करने आया सा विश्राम कर लेते थे। इस प्रकार वर्षोंतक आप बिना था। हालचाल पूछनेपर खुल पड़ा—'महाराजजी! डाका डालने जा रहा हूँ।' लेटे ही विश्राम करते रहे। स्त्रियोंके सम्पर्कसे दूर रहनेका आपका नियम था। 'एक बात मानेगा?' आप मानते थे कि 'वर्जियत्वा स्त्रियः सङ्गं कुर्यादभ्या-'क्या महाराज?' समादरात्।' आपने कह रखा था कि यदि कोई स्त्री 'देख, स्त्रियोंको मत छूना।' दुष्टिके समक्ष आयेगी तो मैं इस स्थानको त्यागकर अन्यत्र 'ठीक है महाराज! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि स्त्रियोंको चला जाऊँगा। हाथ नहीं लगाऊँगा।' आप समाधिमें इतना लीन रहते कि क्षणभरकी भी एक जमींदारके यहाँ उसने डाका डाला। लूटका माल लेकर जब गाँवसे दो मील आ गया तो उसने देखा बहिर्मुखता खलती। एक कौर भी उठाकर मुखमें रखना आपको भारी प्रतीत होता। पलकतक गिरानेमें आलस्य कि उसके साथी जमींदारकी लड़कीको पलंगसहित उठाकर ला रहे हैं। देखते ही गुर्राया—'इसे क्यों लाये हो? लगता। अन्नाहार तो छोड़ ही दिया था, व्रतोंका ही अधिकतर अनुष्ठान चलता रहता था। इस प्रकार बहुत इसे वापस करना होगा।' दिनोंतक कठोर साधना चलती रही। जन-कोलाहलसे दूर साथी बोले—'अब वहाँ जानेसे हम सब मारे जायँगे। गाँववाले इकट्ठे होकर हमें खतम कर देंगे।' रहकर आप एकान्तमें साधना करते रहते। इसके लिये कई बार आपको स्थान भी बदलना पड़ा। 'चलो; मैं चलता हूँ'! ब्रह्मनिष्ठ विरक्त सन्त और परमहंसके श्रुति-लक्षण उसे पलंगसहित गाँवपर लौटाकर डाकू-दल लौट आपमें प्रकट हो उठे-आया। डाकू सरदार जब डेरेपर लौटा तो पश्चात्तापसे "'शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः समाहिता उसका चित्त व्यथित होने लगा। सोचने लगा कि हमारा आत्मरतय आत्मक्रीडा आत्मिमथुना आत्मानन्दाः प्रणवमेव कैसा अधम जीवन है। लोग रोते-चिल्लाते, तड़पते हैं और

हम उनकी छातीपर चढ़कर उनका धन लूटते हैं, हमारे

आत्मग्लानिसे उसका चित्त भर गया। उसका हृदय-

साथी उनकी स्त्रियोंका अपमान करते हैं।

परं ब्रह्मात्मप्रकाशं शुन्यं जानन्तस्तत्रैव परिसमाप्ताः॥

संन्यासी स मुक्तः स पूज्यः स योगी स परमहंसः

"'निर्विकल्पसमाधिना स्वतन्त्रो यतिश्चरति स

अङ्क ] $*$ पूज्य श्रीउड़ियाबाबाकी अनूठी जीवनचर्या एवं उपदेश $*$ ३२५		
\$		
परिवर्तन हो गया। उसने सदाके लिये यह असत्-मार्ग	श्रीमहाराजजी सभी कार्यक्रमोंमें स्वयं उपस्थित रहते।	
छोड़ दिया। दल-भंग करके वह कल्याण-मार्गका पथिक	उनके अन्तरंग भक्त भी इस रहस्यको नहीं समझ सके कि	
बन गया। श्रीमहाराजजीकी प्रेरणासे ऐसे कई डाकू डाका	महाराजजी क्या थे? वे शैव थे कि शाक्त थे? रामोपासक	
डालना छोड़कर सत्यपथपर आरूढ़ हुए।	थे कि कृष्णोपासक? वेदान्ती थे या क्या?	
'रामघाटमें श्रीउड़ियाबाबा पधारे हैं। जिनमें यतिके	ब्रह्मचर्चा चलनेपर लगता कि श्रीमहाराजजी मानो	
सभी लक्षण मौजूद हैं'—ऐसा सुनकर नरवरके कई	मूर्तिमती ब्रह्मनिष्ठा हैं। संकीर्तन होता तो आप प्रेम-	
पण्डित रामघाट आकर श्रीमहाराजजीसे मिले, तबसे वहाँके	समाधिमें डूब जाते। रासमें विराजते तो उसमें ही मगन हो	
सांगवेद विद्यालयके अध्यापक और छात्र आपके पास	जाते। कथा-वार्ता चलती तो प्रधान श्रोताके रूपमें उसका	
बराबर आकर आपसे सत्संगका लाभ उठाने लगे।	रसास्वादन करते—	
सन् १९१५ ई०में महाराजजी नरवरसे कर्णवास	अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥	
पधारे। वहाँ आप झाड़ियोंमें रहकर साधना करने लगे। वहाँ	श्रीमहाराजजी जिसकी जैसी निष्ठा रहती, तदनुकूल	
आपके लिये एक गुफा और कुटिया बना दी गयी। वहाँ	उसे उपदेश करते थे। साकारोपासकोंको साकार उपासनामें	
कुछ समय बितानेके उपरान्त श्रीमहाराजजी पाँच मील	प्रवृत्त कराते। निर्गुणोपासकोंको निर्गुणका तत्त्व समझाते।	
उत्तर भेरिया गाँवके निकट भृगुक्षेत्रमें पधारे। वहाँ अच्युतमुनि–	दोनों मार्गोंके साधकोंको एक-दूसरेसे पृथक् रखते। कहते,	
जैसे त्यागी, विरक्त और विद्वानोंका सत्संग मिला। जिस	जिसकी जैसी निष्ठा है, वह उसी मार्गसे आगे बढ़े।	
दिन श्रीमहाराजजी पूर्वसे विचरते हुए भृगुक्षेत्र पहुँचे, उसी	जनसाधारणको योगवासिष्ठ-जैसे ग्रन्थोंका समझना कठिन	
दिन श्रीहरिबाबा पश्चिमसे विचरते हुए वहाँ आ गये। दोनों	होता है। उनके लिये महाराजजी रामायण, गीता, भागवत,	
महात्माओंका मिलन ऐसा लगता था, मानो दो शरच्चन्द्र	भक्तमाल-जैसे ग्रन्थोंकी कथा कहलवाते। आश्रममें समय-	
परस्पर आलिंगन कर रहे हों। यह मिलन अत्यन्त प्रेम और	समयपर रामलीला, रासलीला, चैतन्यलीला आदि चलती	
सौहार्दपूर्ण था, जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।	रहती, जिसका भक्त-समुदायपर उत्तम प्रभाव पड़ता।	
श्रीवृन्दावनधामका आकर्षण	श्रीमहाराजजीको खिलाने–पिलानेके कार्यमें बड़ी रुचि	
वृन्दावन तो श्रीमहाराजजीके लिये गोलोकधाम था।	थी। जब कभी उत्सव और अनुष्ठान होते तो बड़े पैमानेपर	
प्राय: कहते रहते थे कि वृन्दावन चलो। वहाँ श्रीबिहारीजीसे	जनता एकत्र होती। उस जनसमूहमें कोई भी भूखा न रह	
एक कोना लेकर आश्रम बनायेंगे और वहीं रहेंगे। भगवान्	जाय, कोई किसी पदार्थसे वंचित न रह जाय—इस बातका	
श्रीकृष्णकी आनन्द-लीला-स्थलीके प्रति उनका यह आकर्षण	श्रीमहाराजजीको बड़ा ध्यान रहता था। कहते, 'खानेका	
उन्हें वहाँ खींच ले गया। सं० १९९४ वि० में वृन्दावनमें	आनन्द जीवका आनन्द है, खिलानेका आनन्द ईश्वरका।'	
उनके श्रीकृष्णाश्रमकी प्रतिष्ठा हुई। उसका शिलान्यास	अभ्यासपर बल देते थे	
किया परम मस्त ग्वारियाबाबाने। उसके प्रतिष्ठा-महोत्सवसे	वैराग्यके साथ-साथ अभ्यासपर श्रीमहाराजजी बहुत	
आश्रममें रसकी अमृतवर्षा आरम्भ हो गयी। व्रजमाधुरी	बल देते थे। अभ्याससम्बन्धी अपने अनुभवकी चर्चा करते	
उल्लसित हो उठी। श्रीकृष्णाश्रमकी स्थापनाके उपरान्त	हुए कहते—	
महाराजजी अधिकतर यहीं विराजने लगे।	आतिवाहिकदेहोऽयं शुद्धचिद्व्योमकेवलम्।	
सबेरे तीन बजेसे लेकर रात्रिके ग्यारह बजेतक	आधिभौतिकतां नीतं पश्याभ्यासविजृम्भितम्॥	
श्रीकृष्णाश्रममें सत्संगकी धारा बहने लगी। रासलीलाकी	यह अभ्यासका ही खेल है कि शुद्ध चिदाकाशरूप	
- मर्यादाका निर्वाह इस आश्रममें जैसा होता है, उसकी	यह देह दृढ़ताका अभ्यास होनेसे भूलके कारण आधिभौतिक	
ख्याति आज भी है। निराकार और साकार दोनों प्रकारकी	रूपमें पिशाच-जैसा खड़ा हो गया है। अत: सतत इसके	
उपासना-पद्धतियोंकी वहाँ पूरी व्यवस्था रखी गयी।	विपरीत अभ्यास करानेकी आवश्यकता है। शिथिल अभ्याससे	

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− काम नहीं चलेगा। सावधान चित्तसे निरन्तर अभ्यासमें लगे अत: मैंने रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया; क्योंकि जो इन दोनोंको जीत रहना होगा। अभ्यासकी तीन श्रेणियाँ हैं-लेता है, वही सर्वजित् है। शुद्धिके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर श्रीमहाराजजी कहते १-स्थूल शरीरसे अपनेको भिन्न समझना। इस अभ्यासकी पुष्टि होनेपर सूक्ष्म शरीरमें आत्मत्वका अभिमान थे कि असत्य, हिंसा और व्यभिचारके त्यागसे शरीर शुद्ध हो जाता है। होता है। भगवन्नामजपसे वाणी शुद्ध होती है। दान करनेसे २-उसके उपरान्त शब्दादि विषयोंमें असंगताका धन शुद्ध होता है और धारणा तथा ध्यानसे अन्त:करण शुद्ध अनुभव करना। इस अभ्यासद्वारा दृष्टि सूक्ष्म शरीरसे होता है। आपका कहना था कि वाणीमें चार दोष हैं—(१) हटकर कारण शरीरमें स्थित हो जाती है। आज्ञा देनेके स्वरमें बोलना, (२) चिल्लाकर बोलना, (३) ३-फिर सुख और दु:खसे भिन्नताका अनुभव अश्लील शब्द बोलना और (४) कटु बोलना। उसमें पाँच करना। इस अभ्याससे दृष्टि अन्त:करण-चतुष्टयसे हटकर गुण भी हैं—(१) हितकर बोलना, (२) थोड़ा बोलना, शुद्ध आत्मामें स्थित हो जाती है। (मित भाषण), (३) शान्त रहना, (४) मीठा, मधुर बोलना अभ्यास और वैराग्यके बिना जीवन व्यर्थ है। सत्संग और (५) प्रिय बोलना। वाणीके दोषोंको दूरकर गुणोंका करे और अभ्यास न करे तो क्या लाभ है ? वह तो वैसा ही विकास करनेसे वाणी शुद्ध होती है। है जैसे कोई रामायण तो पढ़े, किंतु रामभक्त न हो अथवा राग-द्वेषसे कैसे छुटकारा मिले, यह पूछनेपर श्रीमद्भागवतका पारायण तो करे, किंतु कृष्णभक्त न हो। श्रीमहाराजजी साधकोंको विस्तारसे समझाते थे कि राग-निरन्तर अभ्यास करते रहने और वासनाओंका पूर्णतया नाश द्वेष क्या हैं और कैसे उन्हें दूर किया जा सकता है? आप कर देनेपर ही अनुभवकी प्राप्ति होती है। केवल शास्त्र कहते थे कि मनुष्य जिस समय नीतिको भूल जाय और पढ़नेसे कुछ नहीं होता। वासनाके रहते चित्तमें शान्ति नहीं सदाचारके नियमोंका कोई ध्यान न रखे, उस समय ऐसा आ सकती। वासनारहित चित्त ही परमतत्त्वके चिन्तनका मानना चाहिये कि वह राग-द्वेषके अधीन हुआ है। अधिकारी होता है। निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे ही अहंकार ही राग-द्वेषका मूल है। उसीमें-से ममत्व और परत्वकी भावना निकलती है। ममत्वका, ममताका नाम है वासनाओंका निर्मूलन होता है और तत्त्वकी उपलब्धि होती है। वासनाओंके उच्छेदके लिये विषयोंसे सर्वदा वैराग्य रखे राग और परत्वका नाम है द्वेष। यदि किसी वस्तुमें मन इस प्रकार फँस जाय कि और सर्वदा भगवदाकार वृत्ति रखे। संयमसे दो-चार विषयोंका रोग छूट सकता है। सम्पूर्ण विषयोंका राग तो भगवत्स्वरूपसे किसी भी प्रकारका अपमान, निरादर या दु:ख होनेपर भी न हटे तो मानना चाहिये कि उसमें राग है। जैसे गोपियोंका राग हुए बिना नहीं जा सकता। अभ्यासका ही प्रभाव है कि माँ-बहनके समीप रहनेपर भी काम-भावना नहीं होती; श्रीकृष्णभगवान्में था। यदि किसी वस्तुसे मन ऐसा हट जाय कि उसमें दोष-ही-दोष दिखायी दे, कोई भी गुण क्योंकि माँ-बहनका भाव दृढ़ होता है। दिव्य अमृतमय सद्पदेश न दीख पड़े तो मानना चाहिये कि उसमें द्वेष है। जैसे महाराजजी जिह्वाके स्वादको सारे अनथींकी जड कंसका श्रीकृष्णमें था। राग-द्वेषकी उत्पत्ति गुण-दोष या मानते थे। कहते थे कि मैं जब राजा कृष्णचन्द्रकी निन्दा-स्तुतिके चिन्तनसे ही होती है, इनमें विषयोंका पाठशालामें पढ़ता था तो एक दिन वहाँके विद्यार्थियोंने चिन्तन रहता है। ये ही संसारके कारण हैं। निन्दा-रसोइयेको इसीलिये पीटा कि उसने उन्हें खिचडी बनाकर स्तुतिके न करनेकी प्रतिज्ञासे राग-द्वेष दूर किये जा सकते नहीं दी थी। तबसे मैंने यह बात गाँठ बाँध ली कि जिह्नाका हैं। पूर्ण ज्ञानी या भक्त राग-द्वेषसे मुक्त होता है। उसका स्वाद ही सारे अनर्थोंकी जड़ है—'जिते रसं जितं सर्वम्'। ध्यान करनेसे भी राग-द्वेष छूट सकते हैं। राग-द्वेष छूट

${f ign} = {f x}$ । * पूज्य श्रीहरिबाबाजीकी अनूठी जीवनचर्या * ३२			
जानेसे चित्त हलका हो जाता है और उसमें सत्त्वगुणकी	इष्टदेवकी किसी लीलाका चिन्तन करते हुए रोये। हँसना		
प्रधानता हो जाती है। राग-द्वेषवाला व्यक्ति उन्नतिकी,	हो तो भी उसकी लीलाका आश्रय लेकर हँसे। रामायणमें		
खुशहालीकी पगडण्डीपर नहीं बढ़ सकता। निर्विकल्प	रामकी लीलाएँ हैं, भागवतमें कृष्णकी। उन लीलाओंका		
तत्त्वका साक्षात्कार उन्हीं मुनियोंको होता है जो राग, भय	चन्तन करना ही ध्यान है।		
और क्रोधसे मुक्त हो गये हैं—	भगवान्के साकार स्वरूपका ध्यान करना हो तो		
वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।	पहले दोनों हाथोंको घुटनोंपर रखकर सुखासनसे स्थिर		
निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः॥	होकर बैठे। नासिकाके अग्रभागपर दृष्टिको स्थिर करे।		
महाराजजीका कहना था कि राग-द्वेष न तो भक्तमें	मनको विषयोंसे विरत करे। आगे-पीछेकी बातोंका चिन्तन		
हो सकते हैं और न ज्ञानीमें। कारण; भक्तको प्रत्येक	न करे। फिर अपने भगवान्के मनोहर अंगोंमें मनको		
विधानमें भगवान्का आदेश दीख पड़ता है और ज्ञानी	घुमाये। क्रम-क्रमसे एक अंगसे दूसरे अंगपर अपने		
प्रारब्ध-भोग मानता है। इसलिये दोनोंमें ही न राग रहता	चित्तको ठहराये। फिर उसीको एकाग्र चित्तसे देखता रहे।		
है, न द्वेष। यों राग-द्वेषका मूल कारण है—अविवेक।	इष्टके अतिरिक्त अन्य किसी विषयका चिन्तन न करे।		
विवेक होनेपर मन नि:सत्त्व हो जाता है। तब उसमें राग-	प्रतिदिन इस प्रकार अभ्यास करनेसे थोड़े दिनोंमें		
द्वेष कैसे रहेंगे? हाँ, रागकी निवृत्ति केवल विवेकसे नहीं	प्रसन्नता और आनन्दका आविर्भाव होने लगता है।		
होती। विवेकसे तो राग-द्वेषसे छुटकारा पानेकी कुंजी मिल	क्रमश: शरीरमें स्तब्धता, रोमांच, स्वेद और कम्प		
जाती है। उसकी पूर्ण निवृत्ति होती है भगवत्प्रेम और	आदि लक्षण प्रकट होते हैं। धैर्यपूर्वक लगे रहनेसे इसमें		
आत्मप्रेमसे। भगवान्में राग हो या आत्मामें राग हो तो	सफलता प्राप्त होती है। भगवान्के स्मरण, सदाचार,		
लौकिक राग छूटता है। लोहेके बिना लोहा नहीं कटता।	निरभिमानितासे भगवत्कृपा मिलती है। जब भगवच्चिन्तन		
ध्यानका मर्म बताते हुए महाराजजी कहते थे कि	होने लगता है तब जगच्चिन्तन स्वत: छूट जाता है। ध्यान-		
ध्यानके समय मुख्यरूपसे अपने इष्टके स्वरूपका ही	अभ्यास बढ़नेपर चित्त भगवत्प्रेममें डूब जाता है। यही		
चिन्तन करना चाहिये। यदि स्वरूपमें चित्त स्थिर न हो तो	साधनाका पूर्णपद है, यही है—भगवत्साक्षात्कार।		
ध्येयकी लीलाओंका ही चिन्तन करे। रोना हो तो	[ पावन-प्रसंग ]		
पूज्य श्रीहरिबाबाजीव	क्री अनूठी जीवनचर्या		
जो महापुरुष परब्रह्म परमात्मासे अभिन्न होते हैं,	उनकी जीवनचर्याका यह अद्भुत चमत्कार था कि		
उनके स्थूल शरीरसे उपस्थित रहने या न रहनेसे उनकी	वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते थे। रात्रिके		
विद्यमानतामें कोई बाधा नहीं पड़ती। वे स्थूल शरीरसे न	उत्तरार्धमें ढाई-तीन बजे ही जग जाते थे। चार बजेसे		
दीखनेपर परमार्थत: परमात्मरूपसे सर्वत्र विद्यमान एवं	सामूहिक संकीर्तन प्रारम्भ हो जाता था। नौ बजेसे		
वर्तमान रहते हैं। अधिकारी पुरुष कहीं भी उनका दर्शन	रासलीला देखते थे। जब वे परिभ्रमणके लिये बाहर		
प्राप्त कर सकते हैं। उनकी आकृति सूक्ष्मरूपसे रहती	निकलते थे तो लोग अपनी घड़ियाँ मिला लिया करते।		
है और अपने भक्तोंके हृदयमें, जबतक लिंग शरीरका	समयकी मर्यादाका ऐसा पालन विरले ही किसी मनुष्यके		
भंग नहीं हो जायगा तबतक बनी रहती है। इसमें सन्देह	जीवनमें सम्भव है।		
नहीं कि श्रीहरिबाबाजी महाराज आज भी ब्रह्मरूपसे,	श्रीहरिबाबाजी महाराज अपनी युवावस्थामें गंगातटपर		
ईश्वररूपसे, आत्मरूपसे और विराट् रूपसे सर्वत्र परिपूर्ण	विचरण करते हुए भेरियामें श्रीअच्युतमुनिजी महाराजके		

पास गये। उन्होंने श्रीमुनिजीसे प्रार्थना की-'महाराज!

हैं। उनका स्वरूप अविनाशी है।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− ऐसी कृपा करें कि वृत्ति अपने स्वरूपमें टिक जाय।' मासिक पत्रिकामें लगातार दो-तीन बार साधुओंकी मुनिजी एक वयोवृद्ध, विद्वान्, भारत-प्रसिद्ध सन्त थे। आलोचना छपी तो उसको उन्होंने पढ़ना ही बन्द कर दिया। वे कहते तो यह थे कि 'निन्दा-स्तुति दोनों ही वे जरा झुककर बैठे हुए थे। प्रार्थना सुनते ही तनकर नहीं करनी चाहिये' परंतु यह देखनेमें आया कि वे बैठ गये और बोले—'अरे हरि! तू आलसी बनना चाहता है? कृपाकी भीख माँगना आलसी बनना है। साधारण-से-साधारण व्यक्तियोंके छोटे-छोटे गुणोंकी प्रशंसा तू स्वयं अपने पौरुषसे वृत्तिके अस्तित्वको मटियामेट किया करते थे। कर दे।' बड़ोंका आश्रय-एक बार उन्होंने कहा था कि श्रीहरिबाबाजी यह प्रसंग अत्यन्त प्रेम और प्रसन्नतासे 'यदि अपनेसे बडा कोई मनुष्य न मिले तो किसी कभी-कभी सुनाया करते थे। जो लोग कहते हैं कि पशु, पक्षी और पत्थरोंको भी अपनेसे बड़ा मानकर श्रीहरिबाबाजीने वेदान्त और वेदान्ती गुरुको छोड़ दिया उसके नीचे रहना चाहिये। बड़ोंकी छत्रछायामें रहनेसे था, वे मिथ्याभाषी हैं। बाबा ब्रह्मनिष्ठ रहकर ही लोक-अपनेमें दम्भ, अभिमान आदि दोष नहीं आते और पूजा-प्रतिष्ठा भी उन्हींकी ओर चली जाती है।' उनके कल्याणके लिये भक्तिका प्रचार और नाम-संकीर्तन करते थे। जीवनमें यह प्रत्यक्ष देखा गया कि वे सर्वदा ही पौरुषका प्रकाश—श्रीहरिबाबाजीकी जीवनचर्यामें किसी-न-किसी बड़े महात्माके साथ रहे। पौरुष ही नहीं महापौरुषका प्रकाश था। वे जन-जनमें वैसे देखें तो बाबाके द्वारा श्रीभगवन्नामका बहुत और कण-कणमें भगवान्का ही दर्शन करते थे। उनकी बड़ा प्रचार-कार्य हुआ। उत्तर भारतमें ऐसा कोई विरला सब क्रिया भगवद्-दृष्टिसे ही होती थी। जब उन्होंने ही नगर होगा, जहाँ उन्होंने पावन नामके उद्घोषसे लगभग सात सौ गाँवों, गायों और किसानोंको गंगाजीकी वातावरणको पवित्र न बनाया हो। कोई अभागा ही बाढ़से ग्रस्त और सन्त्रस्त देखा तो स्वयं फावड़ा और आध्यात्मिक पुरुष होगा, जिसके कानोंमें उनके आदर्श टोकरी लेकर बाँध बनानेके काममें लग गये। झुण्ड-चरित्र और प्रेममय नामकी ध्वनि न पहुँची हो। इतना के-झुण्ड लोग जुट पड़े। भण्डारे खुल गये। लोगोंके होनेपर भी वे प्रचारके भावसे कितने मुक्त थे-इसका मनोरथ पूर्ण होने लगे। चमत्कार-पर-चमत्कार। एक उदाहरण देखिये—वृन्दावनके श्रीउडियाबाबाजी श्रीउडियाबाबाजी महाराज आकर वहीं विराज गये। घोषणा महाराजके आश्रममें वे श्रीधरीके अनुसार गीतापर कुछ कर दी गयी—'बाँध-भगवान्की सेवामें एक टोकरी उपदेश कर रहे थे। एक अजनबी आदमी बीचमें मिट्टी डालो और जो इच्छा हो प्राप्त करो।' केवल बोल उठा—'महाराज! जरा जोरसे बोलिये, सुनायी नहीं दस महीनेमें इतना बडा बाँध तैयार हो गया, जिसके पडता।' बाबाने कहा—'भैया! हम अपना नित्य-नियम निर्माणमें करोड़ों रुपयेका खर्च होता। उस समयकी पूरा करनेके लिये गीताका पाठ करते हैं। तुम्हें नहीं ब्रिटिश सरकारने भी हार मान ली थी। उसकी लम्बाई सुनायी पड़ता तो अपना मन और एकाग्र करो, पास तेईस मीलके लगभग है। वे सभी वस्तुओंको ईश्वररूप आ जाओ। सन्तोष न हो तो चले जाओ। हम भगवान्को सुनानेके लिये पाठ-कीर्तन करते हैं, मनुष्यको सुनानेके और सभी क्रियाओंको ईश्वरकी सेवा समझते थे और बताया करते थे। लिये नहीं।' निन्दा न सुनना—उनमें एक अद्भृत विशेषता अन्न ब्रह्म-श्रीहरिबाबाजी महाराजका भोजन बरसोंतक यह थी कि वे किसीकी निन्दा सर्वथा नहीं सुनते थे। एक सरीखा चलता रहता। साबृत मुँग और सब्जी—दोनों निन्दा करनेवालेसे कह देते थे कि 'भगवानुका नाम मिलाकर एक साथ पकाया जाता था। प्राय: रोटीके साथ लो या बाहर जाकर कोई काम करो।' एक बार एक खाते थे। भोजन आनेपर अपने उपयोगभरका अपने

\* स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजकी जीवनचर्या \* अङ्क ] कटोरेमें ले लेते और खा लेते थे। सब जूठा नहीं करते अमृत बताते थे। उनका कहना था कि असलमें अन्न ब्रह्म

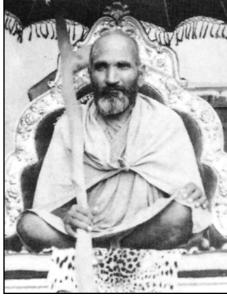
थे। अन्तमें कटोरेको भी धोकर पी लेते थे। यह नियम

लेनेके पहले भी वे वर्ष-वर्षभर या छ:-छ: महीनेतक एक

### स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजकी जीवनचर्या रहकर धनवान् होना स्वीकार नहीं है। उसी अविद्याको

चाहता हूँ।'

ही ढंगकी वस्तु खाते थे। वे जब जो खाते थे, तब उसीको औषध हो जाता है। [पावन-प्रसंग]



आत्माके ज्ञानको प्राप्त करने और अविद्याके पापसे बचनेके लिये बीस वर्षकी अवस्थामें घरसे चले गये और फैजाबादसे अपने पत्रमें अपने पिता तथा बाबाको

(श्रीमदनमोहनजी) स्थितप्रज्ञ और जीवन्मुक्त महात्मा थे।

श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज

ब्रह्मलीन स्वामी

लिखा"" में इस बातका दावा भी नहीं कर सकता कि में इसी जन्ममें उस मार्गको ढूँढ़ लूँगा, परंतु कम-से-

कम नींव तो पड़ जानी चाहिये, आगे ईश्वरकी इच्छा है.....प्रेम-स्वरूप परमात्मा मुझको अविद्याके बन्धनसे

भी मरेके समान है .... संसारमें दु:खों एवं अविद्याको देखकर मेरा हृदय काँप जाता है और यही समझता है

हटाकर विद्याके सूर्यमें लावें .... अविद्यामें पड़े जीना

कि या तो शीघ्र ही ईश्वरकी शरणमें जाओ, नहीं

किया है-

कल्याण किया।

लक्षण गीतामें स्वयं उन्होंने अपने श्रीमुखसे वर्णन

परब्रह्म परमात्माको जो महापुरुष प्रिय हैं, उनका

है। उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। ब्रह्मबुद्धिसे उसका

सेवन करना चाहिये। ब्रह्मबुद्धिसे प्रत्येक अन्न सब रोगोंकी

हटानेके उपायमें मैं अपने जीवनको व्यतीत करना

मोहन कालान्तरमें अपने प्रयाससे श्रीस्वामी कृष्ण-बोधाश्रम हुए और उन्होंने अपने इसी जन्ममें अविद्याको हटाने और विद्याको प्राप्त करनेका लक्ष्य प्राप्त कर लिया। वे जीवन्मुक्त और स्थितप्रज्ञ महात्मा हो गये। बादमें उन्होंने श्रीज्योतिष्पीठके आचार्य-पदका गौरव बढ़ाया और अपने कल्याणके साथ सहस्रों मानवोंका

दृढ्निश्चयी, ईश्वरकृपाप्राप्त, परम विरक्त मदन-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥ सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धियों मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (गीता १२।१३-१४)

ब्रह्मलीन जगद्गुरुजी ऐसे ही सन्त-कोटिके महापुरुष थे। वे एक महान् वीतराग, विवेकी, ब्रह्मनिष्ठ तथा

ज्ञानयोगी तो थे ही, साथ ही सर्वभूतिहतैषी होते हुए उनकी ब्रह्मात्म-दृष्टि थी। ध्यानयोगमें उनकी मुख्य निष्ठा थी। वे लगातार तीन घण्टेसे छ: घण्टेतक ध्यानमें बैठे रहते। जिन

लोगोंने उनका दर्शन किया, उनको मालूम है कि जब वे ध्यानमें बैठते तो उन्हें बाह्य जगत्का ध्यान नहीं रहता।

ढोल-नगाड़े, गाजे-बाजे और सांसारिक शोर-गुल भी

जीवन बिता दूँगा ..... मुझे मृत्यु स्वीकार है; परंतु अविद्यामें

तो कल्याण नहीं है। जंगलमें रूखी-सूखी रोटी खाकर

उनके ध्यानमें व्यवधान नहीं डाल पाते, कारण कि उन्हें

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− इनका आभास ही नहीं होता। उनके ध्यानकी यह विशेषता यज्ञ एवं ध्यानमें तल्लीन रहते। दृष्टि सदा नीची रखते या थी कि बिना घड़ी देखें निर्धारित समयपर ध्यान पूरा हो आँख बन्द कर लेते थे। शास्त्रका यह वचन है कि 'न जाता। उन्होंने दण्ड-संन्यास ले रखा था। वे प्राय: पैदल-नेत्रचपलो यति:।' संन्यासीको नेत्रोंको पृथ्वीकी ओर यात्राके अभ्यासी थे। गंगा-किनारे रहने और घूमनेका झुकाकर चलना चाहिये, इसे आपने अपने जीवनमें उतार उनका अभ्यास था। रखा था। ये कभी भी न नगरकी भीड़भाड़के क्षेत्रमें प्रवेश स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजका जन्म वि०-करते, न किसी स्त्रीको देखते, न पैर ही छुआते थे। यदि सं० १९४९ (ई० सन् १८९२)-में मथुरा जिलान्तर्गत कभी कोई स्त्री भूलसे चरण छू लेती तो तीन दिवसका भाण्डीरवनस्थ ग्राममें एक प्रतिष्ठित सनाढ्य ब्राह्मण पं० कठोर व्रत, अन्न-जल-त्याग आदि विभिन्न कठिन व्रत श्रीटीकारामजीके घरमें हुआ। आपने सेंटजांस कालेज धारण करते। स्वादके नामपर कुछ नहीं लेते। प्रात:कालके आगरामें उच्च शिक्षा प्राप्त की। संस्कृतका भी आपको तीन बजेसे पुन: रात्रिके दस बजेतककी जिन्होंने आपकी प्रगाढ ज्ञान था। आप परम विरक्त तथा संसारसे विमुख दिनचर्या देखी है, उनका कहना है कि ध्यान, जप, थे। बाल्यावस्थासे ही संसारमें कोई रुचि नहीं थी। अध्ययन, सत्संग, उपदेश, धर्म-प्रचार-इसके अतिरिक्त प्रारम्भसे ही ये स्वभावसे दयालु एवं परोपकारी थे। अन्य किसी भी प्रसंगको वहाँ स्थान नहीं। 'शिखा-सूत्र धारण करो', 'सन्ध्या-वन्दन और बीस वर्षकी अवस्थामें जुलाई १९१३ ई० के श्रावण मासमें आपने गृहका परित्याग कर दिया और गंगा-बलिवैश्वदेव करो', 'अतिथि-सत्कार करो', 'भारतीय यमुना तथा सरयू आदि पवित्र नदियोंके तटपर एवं वेष-भूषा धारण करो', 'शास्त्रोंका अध्ययन करो', विभिन्न तीर्थींमें भ्रमण करते हुए आप सर्वप्रथम अयोध्या 'रामायणका पाठ करो', 'मादक द्रव्योंका सेवन न पहुँचे। १९१६ ई० में श्रीस्वामी चैतन्याश्रमजी महाराजसे करो'--प्राय: इन्हीं बातोंपर आप अधिक जोर देते थे। दीक्षा ली और दण्ड ग्रहण किया। इस समय आपकी आपकी दृष्टिमें थोड़ेसे भी धर्मके आचरणका बड़ा अवस्था चौबीस वर्षकी थी। महत्त्व रहता। धनके सामने धर्मको आपने सदासे महत्त्व आपने आद्य श्रीशंकराचार्यजीके इस निर्देशको— दिया। यही कारण है कि आपके कृपापात्रों, भक्तों— 'संन्यासीको चाहिये कि वह सदा घूमता रहे एवं धर्म-अनुयायियोंमें साधारण कोटिकी जनता ही अधिक है, प्रचारमें निरत रहे' अक्षरश: अपने जीवनमें उतार लिया। जिनमें अनपढ़ किसान, जाट, गूजर, गरीब ब्राह्मण, फलतः आप अधिकांशतः गंगा-यमुनाके मध्य देशमें पैदल छोटे-छोटे व्यापारी वैश्य, दफ्तरोंके साधारण कर्मचारीगण अधिक हैं। आप प्राय: कहा करते थे कि 'यह वर्ग ही ही विचरण करते रहे। इन दिनों प्राय: आप गढ्मुक्तेश्वर एवं बागपत (मेरठ क्षेत्र)-में ही विचरते हुए साधनारत रहे। समाजकी रीढ़ है, यदि यह 'शिखा-सूत्र' को धारण इसी साधनाके मध्य आपने समस्त वेदान्त, धर्मशास्त्रों, किये रहे, सन्ध्या-वन्दनादि, नित्य-नैमित्तिक स्वकर्मोंमें रामायण, महाभारत एवं अठारहों पुराणोंका गम्भीर अध्ययन वर्णाश्रमानुसार लगा रहे तो फिर संसारमें कलियुग लाख किया तथा विशेष पारायण किये। आये, कुछ बिगड्नेवाला नहीं।' अत: आपका अधिक-कठिन-से-कठिनतर व्रतोंका अनुष्ठान करते हुए से-अधिक बल स्वधर्माचरणपर ही रहता था। धर्मोपदेश गंगा-यमुनाके तटपर पैदल विचरते अपने धर्माचरणसे अनेक व्यक्तियोंको स्वधर्मनिष्ठ बनाते हुए श्री १००८ महाराजश्री स्वयं भी धर्मकी साक्षात् मूर्ति थे। कठोर-स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजने इस भारतवर्षकी पावन से-कठोर व्रतोंका आचरण करते-करते आपने तरुणावस्थामें भूमिपर न जाने कितनी पैदल यात्राएँ की हैं। एक समय ही सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली। तम्बाकू पीनेवालेके यहाँ आप भिक्षा पानेका सदैव निषेध करते थे। अल्पाहार, त्रिकाल-स्नान, गंगाजल-पानपूर्वक आप जप-

\* वाणीका सदाचार \* अङ्क ] आप जीवनमें शौचाचारको प्रमुख स्थान देते थे। आपकी ही है, जिसका मूल है शुद्ध आहार-सात्त्विक भोजन,

स्मरण-शक्ति अद्वितीय थी, जिसे एक बार देख लिया तथा भक्ष्याभक्ष्य-विवेक।'

परिचय हो गया, वह व्यक्ति यदि बीस वर्ष बाद भी मिला उपर्युक्त विचारधाराको जीवनमें उतारनेकी प्रेरणा

तो प्रथम परिचयमें ही उसकी कुशल-क्षेम स्वयं ही न प्रदान करते हुए, आपने अहर्निश उत्तरी भारतकी अनेक

तीर्थयात्राएँ पैदल गाँव-गाँव, नगर-नगर घूम-घूमकर सम्पन्न पूछी तो बात ही क्या रही!

पाक-शुद्धि तथा आहार-शुद्धिको आप बहुत महत्त्व कीं। देशके एक छोरसे दुसरे छोरतक आपके त्याग,

देते थे। इनका कहना था कि 'जैसा खाओगे अन्न, वैसा तपस्या, विद्वत्ता, सिद्धि एवं सादगीका वर्णन फैलने लगा।

बनेगा मन'-अत: जो भी जहाँ भी मिल जाय; उसे जिस-सनातनधर्मके पुनःस्थापन एवं उसके प्रचार-प्रसारमें अनन्तश्री

तिस प्रकारसे खडे-खडे, उलटा-सीधा खानेकी आप तीव्र स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके साथ आपका प्रगाढ स्नेह,

सहयोग और सम्बन्ध था। उनके विशेष आग्रहपर ही भर्त्सना करते थे। आप कहते थे कि 'भक्ष्याभक्ष्य-विवेक'

की आज सर्वाधिक आवश्यकता है, अभक्ष्य-भक्षण सब इन्होंने ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रममें शंकराचार्य-पदको ग्रहण प्रकारकी बीमारियोंका मूल है, बाजारमें बने पदार्थींक किया। इस पदको स्वीकार करनेके पूर्व इन्होंने स्पष्टरूपसे

सेवनका आप निषेध करते थे। आपका कथन था कि तीन शर्तें रख दी थीं-'शुद्ध-सात्त्विक पदार्थ अपने घरमें ही चौका-आसन (१) खादीके मोटे वस्त्रोंको छोडकर कौशेय वस्त्र

लगाकर मौन होकर अतिथि, गौ, श्वान, कौवा, पिपीलिका धारण नहीं करूँगा, (२) मिट्टीका कमण्डलु जो सदा साथ

आदिका भाग निकालकर पंचमहायज्ञ एवं बलिवैश्वदेव रहता है, उसे नहीं छोड़ँगा तथा (३) सिंहासनपर बैठनेकी बाध्यता नहीं रहेगी और कभी भी किसी सामान्य आसनपर आदि करनेके उपरान्त ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेपर

ही मन शुद्ध बनेगा तथा शुद्ध विचार, शिव-संकल्प बैठ सकता हूँ।

मनुष्यके हृदयमें आयेंगे और तभी परोपकार, दया, इस प्रकार स्वामीजी महाराज त्याग और सरलताकी

अहिंसा, सत्य, अचौर्य आदि धर्मके लक्षणोंका पालन प्रतिमूर्ति थे। इनका जीवन सनातन जगत्के लिये अनुकरणीय करनेमें सक्षम हुआ जा सकेगा तथा सच्चरित्र बना जा तथा शिक्षाप्रद रहा है। ८१ वर्षकी अवस्थामें भाद्रशुक्ला

सकेगा और तभी प्रत्येक व्यक्ति एवं समस्त समाज सुखी त्रयोदशी, तदनुसार १० सितम्बर १९७३ ई० सायंकालकी रह सकेगा, अन्यथा घावको न धोकर, केवल पट्टीको प्रदोष-वेलामें आप इस पांचभौतिक शरीरको छोड़कर

धोने-जैसा आपका प्रयास होगा। सच्चा सुख सदाचरणमें ब्रह्मलीन हो गये।

### वाणीका सदाचार

नृशंसवादी हीनतः परमभ्याददीत। नारुंतुद: न उद्विजेत न तां वदेद् रुशतीं पापलोक्याम्॥ वदनान्निष्पतन्ति यैराहत: शोचित रात्र्यहानि। मर्मस् ये पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् 'दूसरोंके मर्मपर आघात न करे, क्रूरतापूर्ण बात न बोले तथा औरोंको नीचा न दिखाये। जिसके

कहनेसे दूसरोंको उद्वेग होता हो, ऐसी रुखाईसे भरी हुई बात पापियोंके लोकोंमें ले जानेवाली होती है; अत: वैसी बात कभी न बोले। जिन वचनरूपी बाणोंके मुँहसे निकलनेसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोकमें पड़ा रहता है और जो दूसरोंके मर्मस्थानोंपर घातक चोट करते हैं, ऐसे वचनबाण सद्-असद्-विवेकशील, विद्वान् पुरुष दूसरोंके प्रति कभी न छोड़े।' [महा० अनुशा० ४। ३१-३२]

विद्यार्थियोंकी आदर्श जीवनचर्या

# [ कुछ प्रेरक दृष्टान्त ]

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

### ( डॉ० श्रीविश्वामित्रजी )

विद्याएँ दो हैं, एक 'अपरा' विद्या अर्थात् संसारी किसी सहेलीकी शरारत नहीं, क्योंकि सभी सरोवरके

विद्या है और दूसरा 'परा' विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान

है। पहली व्यक्तिकी पेट-पूजाके लिये आवश्यक है और

दूसरी परमात्माकी पूजाके लिये अनिवार्य है। सफल

जीवनके लिये इन दोनों विद्याओंका समन्वय अपरिहार्य है।

प्रत्येक प्राणीकी जन्मसे मरणतक एक ही मौलिक

माँग है—हरेक सुख चाहता है। जीवका हर प्रयास इसीकी प्राप्तिके लिये है। यदि यह जान लिया जाय कि हमें कैसा

सुख चाहिये तो आगेकी यात्रा बहुत सहज हो जायगी। हम

चाहते हैं ऐसा सुख जो सबसे मिले, सब जगह मिले और हर समय मिले। ऐसा सुख जो सर्वत्र मिले, सर्वदेश,

सर्वकालमें मिले, प्रचुर मात्रामें मिले, बिना परिश्रम मिले तथा पराधीन न हो, ऐसे सुखको परम सुख कहा जाता है,

शाश्वत-सुख (eternal happiness) कहा जाता है। इसी सुखकी प्राप्ति है प्रत्येक प्राणीके जीवनका लक्ष्य। हम

पढ़ाई कर रहे हैं इसी सुखके लिये, कलको व्यापार या नौकरी करेंगे इसी सुखके लिये, विवाह होगा, सन्तान होगी, इसी सुखकी प्राप्तिके लिये इत्यादि। खोज इसी सुखकी

है, परंतु मिल तो यह नहीं रहा है। तो भूल कहाँ है? अनश्वर सुखकी जगह नश्वर क्यों मिल रहा है? आजके जो विद्यार्थी हैं, वे ही कलके देशके नागरिक एवं कर्णधार होंगे। उन्हें अपने जीवन-लक्ष्यकी प्राप्ति हो सके, इसके

लिये कतिपय दृष्टान्तों एवं महापुरुषोंके जीवनसे सम्बन्धित प्रेरक प्रसंगोंको प्रस्तुत किया जा रहा है। इनमें निहित

शिक्षाओंको अपनी जीवनचर्यामें उतारकर वे अपने जीवनके शाश्वत लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं।

[8] एक राजकन्या अपनी सिखयोंके साथ जल-क्रीड़ाके

लिये गयी है। सरोवरके किनारे राजकन्याने अपना अनमोल गलेका हार उतारकर रख दिया। सभी स्नानका सुख लेकर, जलसे बाहर निकल, अपने-अपने कपड़े

भीतर थीं। इधर-उधर खोजनेपर भी न मिला। महल पहुँचकर राजाको सूचना दी गयी, नगरमें घोषणा हुई, जो

ढूँढ़कर लौटायेगा, उसे एक लाख रुपये इनाम मिलेगा।

खोज शुरू, लेकिन सभी असफल। एक लकडहारा प्याससे व्याकुल हो पानी पीनेके लिये उसी सरोवरके किनारे गया। पानी पीते-पीते, उसे हार नीचे तलपर पड़ा

दिखायी दिया। उसकी प्रसन्तताकी सीमा न रही, डुबकी लगायी, हार पकड़नेकी कोशिश की, परंतु हाथमें हार नहीं,

कीचड़ आता है। बाहर निकला, जल निश्चल हुआ, पुनः हार दिखा, डुबकी लगायी, फिर हाथमें पंक। जाकर

राजाको सूचना दी। विशेषज्ञ बुलवाये गये, उनके भी सभी प्रयास विफल। सब चिकत एवं निराश। एक सन्तका आगमन हुआ, भीड़का कारण पूछा? समस्या सुनी—

कुशाग्र बुद्धि थे, अविलम्ब समझ गये—हार ऊपर पेड़पर लटक रहा था, जिसे पंछी उठाकर अपने घोंसलेमें ले गया था, उसीका प्रतिबिम्ब जलमें दिखायी दे रहा था। छायाको

तो बिम्ब हैं-परम सुख और पकड रहे हैं प्रतिबिम्बको, नश्वर-सुख को, तो हाथ कीचड़ ही आता है अर्थात् दु:ख या दु:खयुक्त सुख ही जीवनभर मिलता है। हमारी खोज

सदा स्मरणीय तथ्य याद रखे-प्रतिबिम्बसे वस्तु प्राप्त नहीं होती, अतः बिम्बको पकड़ो अर्थात् उसे पकड़ो,

कैसे ?

जहाँ सुख निवास करता है।

विषय-सुख या सांसारिक सुख उस परमानन्द

**ाजीवनचर्या**−

परमसुखकी परछाई है। अतएव संसारसे कभी सुख नहीं मिलेगा। शान्ति, सुख और आनन्दरूपी हीरोंका हार जिसे

लगता है, उस सुख-शान्ति-आनन्दका स्रोत है परमात्मा

कैसे पकड़ा जाय? अत: सबके हाथमें कीचड़। हम चाहते

ही त्रुटिपूर्ण है। उस सुखको पानेके लिये यात्रा शुरू करो।

हम संसारमें प्रतिबिम्बकी तरह पानेकी कोशिश कर रहे हैं और निराश होते हैं—कीचड़ अर्थात् दु:ख बार-बार हाथ

पहन रही हैं। राजकन्याका नौलखा हार नहीं मिल रहा।

\* विद्यार्थियोंकी आदर्श जीवनचर्या \* 343 अङ्क ] अब यात्रा शुरू करते हैं। अर्थात् बिम्ब। इसीकी प्राप्ति है प्रत्येकके जीवनका लक्ष्य। [3] आज स्कूल-कॉलेजोंमें जो विद्या दी जा रही है, वह हमें रोटी-रोजी (आजीविका) कमानेयोग्य बनाती है। अत: आचार्य विनोबा भावे एक आँखों-देखी घटना सुनाया करते, 'मैं रेल-यात्रा कर रहा था, डिब्बा खचाखच भरा यह विद्या बन्द नहीं करनी, पूरी तत्परतासे इसे पूरा करना है, पर साथ-ही-साथ परा-विद्याका मिश्रण भी हो, तभी था, एक स्टेशनसे एक वृद्ध भिखारी फटे-पुराने कपड़े, पिचका पेट, बिखरे बाल, धँसी हुई आँखें, लाचारीका जीवनमें पूर्णत्वकी प्राप्ति होगी। अन्यथा अधूरापन बना ढाँचा शरीर उसी डिब्बेमें प्रविष्ट हुआ। यात्री उतर-चढ़ रहेगा। रहे थे। गाडी चल पडी। सभी अपनी-अपनी सीटोंपर बैठ [३] गये। भिखारीने भजन गाना शुरू किया, आवाजमें अद्भुत एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक विदेशसे भारत पधारे। माधुर्य, जादू! सभी यात्री चुप, भजनानन्दमें डूब गये। वृद्ध उन्होंने किसी भारतीय सन्तसे भेंटकी हार्दिक इच्छा प्रकट भजन गाता इधर–उधर आ–जा रहा था। भजनका अर्थ की। दर्शनार्थ प्रबन्ध किया गया। वैज्ञानिक महोदयने सन्तसे था—'परमात्माकी कृपाके बिना कुछ नहीं होता, वह न दे पूछा—'आधुनिक विज्ञानके बारेमें आपकी क्या राय है?' तो कोई कुछ पा नहीं सकता। वह दाताशिरोमणि देता ही सन्तने कहा—'मेरी दृष्टिमें इसका कोई मूल्य नहीं।' देता है।' एक अमीर जमींदारने भिखारीसे पूछा—'दिनभर वैज्ञानिक चिकत एवं व्यथित, कहा—'जिस विज्ञानने भजन गाकर कितना कमा लेते हो?' उत्तर मिला—'दो-मनुष्यको इतनी सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं, उसे आप चार आने मिल जाते हैं। रामेच्छासे जो मिल रहा है, ठीक निरर्थक बता रहे हैं?' महात्माने कहा—'आपकी इस है, उसीमें ख़ुश हूँ।' 'यह लो एक रुपये कई दिन चलेगा, वर्णित उपलब्धिसे मैं सहमत हूँ, परंतु विज्ञानकी सबसे किंतु भजन नहीं, कोई फिल्मी गीत सुनाओ।' साधु नहीं बडी हार है कि वह मानवको मानवकी भाँति जीना न माना, मैं भजन ही गाता हूँ। 'अच्छा १०० रुपये ले लो, सिखा सका, परस्पर प्रेम करना, दूसरोंके काम आना, उन्हें शेष जीवन सुखसे निकलेगा, गाड़ीमें भजन गानेकी जरूरत सुख बाँटना न सिखा सका। मानवमें मानवता प्रकट नहीं पड़ेगी। अबतक क्या मिला भजन गा-गा कर? अब करनेकी योग्यता सांसारिक विद्याओं में नहीं है, यह महान् फिल्मी गीत गाया करो।' 'नहीं बाबूजी! क्षमा करें, कुछ कार्य परा-विद्या ही कर सकती है।' चूँकि हमें इन्सानकी रुपयोंके लिये मैं अपना लक्ष्य नहीं बदल सकता, सन्मार्गसे भाँति, एक नेक इन्सानकी भाँति रहकर जीवन-यापनकी भटक नहीं सकता। कुछ मिले न मिले, मैं भजन ही उत्कट इच्छा है, अतएव दोनों विद्याओंका समन्वय अति गाऊँगा।' आवश्यक है। प्राय: कहते सुना जाता है, 'अमुक व्यक्ति एक भिखारी अपनी गरीबी-भूख मिटानेके लिये, डॉक्टर तो बहुत अच्छा है, पर इन्सान किसी कामका नहीं, बदन ढकनेके लिये प्रभुके मार्गसे हटना नहीं चाहता। चरित्रहीन है, क्रोधी है, लोभी है।' गुणवान् बनना तथा कितने हैं ऐसे जिन्हें भौतिक सुख नहीं, अविनाशी सुख दुर्गुणहीन मनुष्य बनना परा-विद्या ही सिखाती है। मानवता चाहिये ? एक भिखारीने राम-पथ चुन रखा है, उसे इसीमें अनमोल है। सन्तोष है, इस मार्गपर उसे आनन्द मिलता है। वह भिखारी [8] नहीं सम्राट् है। विनोबाजी समझाते हैं-लक्ष्य तो है प्रभु-डॉक्टर सी०वी० रमण एक सुप्रसिद्ध भारतीय प्राप्ति, परंतु व्यक्ति सांसारिक सुखोंको ही लक्ष्य मान इसमें वैज्ञानिक हुए हैं। इन्हें अपने कार्यमें सहायताहेतु एक खोकर असली लक्ष्यको भूल जाता है, अत: भटकता रहता युवा वैज्ञानिककी आवश्यकता थी। अनेक अभ्यर्थी है, सदा दु:खी रहता है। बुद्धिमत्ता इसीमें, भलाई भी इसीमें साक्षात्कारके लिये पधारे, परंतु सभी अयोग्य घोषित कि हम लक्ष्यपर अडिग रहें। लक्ष्य निश्चित हो गया तो किये गये। कोई पसन्द नहीं आया। सभी लोग तो

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− चले गये, पर एक अभ्यर्थी रमणजीको उनके ऑफिसके आपकी भावनाओंको आहत किया है।' 'नहीं चित्रकार! बाहर चक्कर लगाता दिखा, पूछा—'जब तुम reject यह चित्र मेरे बच्चेका नहीं, मेरा है—अपने बचपन कर दिये गये हो, तो व्यर्थमें आगे-पीछे क्यों घूम रहे और वर्तमानको देख रोना निकल गया। कुसंस्कारों एवं हो?' युवकने कहा, 'सर! आप नाराज न हों। आने-कुसंगके कारण और सुसंस्कार न मिलनेके कारण जानेके लिये आपके ऑफिसकी ओरसे जो खर्चा दिया दुष्प्रवृत्तियोंसे प्रेरित होकर मैं एक क्रूर अपराधी बन जाता है, गलतीसे मुझे अधिक दिया गया है, उसे गया। काश! मुझे कोई सन्मार्ग दिखानेवाला मिल जाता, लौटानेके लिये क्लर्कको ढूँढ रहा हूँ।' रमणजीने तुरन्त जिसकी सत्संगतिसे मेरे सुसंस्कार उभर सकते, मैं भी कहा—'You are selected' वैज्ञानिक क्षेत्रकी कमी ईश्वरोन्मुख हो सकता तथा उन महानतमसे युक्त होकर तो मैं पढ़ाकर, सिखाकर पूरी कर दूँगा, परंतु गुणी, उनकी कृपाका, दया-करुणाका तथा उनके प्यारका चरित्रवान् बनना तो मैं नहीं सिखा सकता। सांसारिक पुण्य पात्र बन सकता, तो आज यह दुर्दशा न होती।' विद्या बेशक बहुत कुछ सिखा सकती है, पर इन्सान विद्यार्थियो! सत्संगतिका वरण करोगे तो कुसंगतिसे बचे बनना नहीं सिखा सकती। यह परा-विद्या ही सिखायेगी। रहोगे और जीवनमें दिव्यता आ जायगी। यही स्थान है अतएव सार्थक, सम्पूर्ण जीवनके लिये इन दोनों जहाँ परा-विद्या सिखायी जाती है। यह हमें झुकना विद्याओंका सम्मिश्रण हो। दोनोंमेंसे किसी एकका वरण सिखायेगी, विनम्र बनना, अपने अभिमानको मारना न व्यावहारिक ही लगता है और न ही सही। सिखायेगी, हमें मानव बनना सिखायेगी, पशुताको मारेगी [4] और मानवताको उभारेगी। सबसे प्रेम करना तथा अपने एक चित्रकार, चित्रकलामें अति कुशल, सजीव भीतरसे वैर-विरोध-घृणाका उन्मूलन करना सिखायेगी चित्र बनाता। एक बार उसने एक नन्हे बालकका चित्र यह विद्या। दुर्गुणों-दोषों, दुर्बलताओंको दूरकर हमें सद्गुणों बनाया। भोला-भाला मुख इतना आकर्षक कि लाखोंने जैसे—सद्भावना, सहनशीलता, क्षमा, संयम आदिसे सम्पन्न खरीदकर अपने घरोंमें लगाया। गृहोंकी शोभा बन गया करेगी यह विद्या। हमें यह नहीं सोचना कि अन्य न वह चित्र। चित्रकार अति प्रसन्न, सुविख्यात हो गया। तो करते हैं, न कर ही पाये हैं तो हम क्यों करें? नहीं, और सुधरें न सुधरें, हमें अपना सुधार करना है। जब वह वृद्ध हो गया तो सोचा, आज जीवनका अन्तिम चित्र किसी ऐसे दुष्ट, क्रूर, अपराधीका बनाऊँगा, तब परमात्मा हमारा उद्धार करेगा। उद्धार उन्हींका, जो जिसकी आकृतिसे उसकी क्रूरता इस प्रकार झलके चलने—आगे बढ़नेका अभ्यास जारी रखेंगे। कि उस रचनाको देख लोग कुकर्म-अपराध करना [६] एक बार एक राजाको गणित सीखनेकी इच्छा बन्द कर दें। ऐसे व्यक्तिकी खोजमें एक जेलमें गया। हुई। एक महान् गणितज्ञको आमन्त्रित किया गया। अनेक बन्दी, अपराधी देखे, एक पसन्द आ गया। उसके पास बैरकके बाहर बैठ उसका चित्र बनाना राजाने निवेदन किया—'पढ़ानेकी कृपा करें।' गणितज्ञने शुरू किया। अपराधीने पूछा—'मिस्टर! क्या कर रहे आग्रह स्वीकारकर शिक्षा प्रारम्भ की। काफी समय हो?' 'आपका चित्र बना रहा हूँ।' 'मुझमें ऐसा क्या बाद भी गणित राजाकी समझमें नहीं आया। जैसे है?' चित्रकारने मासूम बालकका चित्र दिखाते हुए शिष्योंकी प्राय: सोच होती है, वैसे ही सोचा-गुरु कहा—'बन्धु! अनेक वर्ष पहले मैंने इसे बनाया था। कच्चे हैं, अत: पूछा—'श्रीमन्! क्या गणित सीखनेका लोगोंको बेहद पसन्द आया था, आज आपका बनाना सरल और सुविधापूर्ण उपाय नहीं है?' गम्भीर स्वरमें शिक्षकने कहा—'महाराज! आप राजा हैं, आपके लिये चाहता हूँ।' चित्रको देखकर बन्दीकी आँखोंमें आँसू आ गये। चित्रकारने कहा—'लगता है चित्र देख आपको सुन्दर राजमार्गकी व्यवस्था है, आरामके लिये सुखद व्यवस्था है, परंतु विद्यार्थीके लिये विद्यार्जनका एक ही अपने पुत्रकी याद आ गयी। कृपया क्षमा करें, मैंने

\* विद्यार्थियोंकी आदर्श जीवनचर्या \* अङ्क ] मार्ग है-एकाग्रता और अभ्यास। इस मार्गपर ऐसे ही भोजन, नियमित दिनचर्या तथा ब्रह्मचर्यका पालन। मनको चलना पड़ेगा, हम दोनों मिलकर भी इसे आसान नहीं स्वस्थ रखनेके लिये रोज गीताजी या रामायणजीका बना सकते।' बात समझमें आ गयी। कालान्तरमें राजा पाठ। इससे इस सर्वशक्तिमयी सत्तासे जुडे रहेंगे। यही एकाग्र हो अभ्याससे एक श्रेष्ठ गणितज्ञ बने। सन्मार्गपर अविचल तथा सन्तुलित रखेगी। इस समय सारी ऊर्जा विद्या-उपार्जनके लिये तथा चरित्र-निर्माणके विद्यार्थियो! इस सर्वोत्तम उपलब्धिकी तैयारीमें लग जाओ। जीवनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थासे गुजर रहे लिये प्रयोग करें। हैं आप। यौवन आते तथा ढलते समय पता भी नहीं [6] लगेगा, तब प्रवेश होगा जीवनकी सर्वाधिक दर्दनाक स्वामी विवेकानन्द पगडी, धोती पहने शिकागोकी अवस्था—वृद्धावस्थाका। जीवनरूपी इमारतकी नींव, चट्टान-सड़कसे गुजर रहे थे। उनकी वेश-भूषा अमेरिकावासियोंके जैसी पक्की तथा मजबूत हो, इसके लिये भरसक प्रयत्न लिये हँसी-मजाकका विषय थी। पीछे चलती महिलाने तथा लगनकी जरूरत है। कैसे शुरू करें? विद्या-व्यंग्य किया, 'देखो! महाशयने कैसी अनोखी dress उपार्जनके लिये, स्वस्थ शरीर और मनके लिये, चरित्र-पहनी है।' स्वामीजी रुके, भद्र महिलासे बोले—'बहन! तुम्हारे देशमें कपड़े ही सज्जनताकी कसौटी हैं, पर जिस निर्माणके लिये, नैतिक जीवनके लिये अपनी समस्त ऊर्जाको लगा दो और परमेश्वरसे युक्त होकर, उनके देशसे मैं आया हूँ, वहाँ सज्जनताकी पहचान कपड़ोंसे नहीं, समर्पित होकर बल, उत्साह, धैर्य एवं सामर्थ्य प्राप्त करके व्यक्तिके चरित्रसे होती है।' जीवन-युद्धमें एक महान् योद्धाकी तरह लड़नेको तैयार हो जबतक पढ़ाई खत्म नहीं होती, राजनीतिसे दूर रहें। जाओ। फलतः शान्तिपूर्ण जीवन बीतेगा। अतः शरीर अध्यापकों, वृद्धों अर्थात् घर-बाहरके बड़ोंको पूरा सम्मान स्वस्थ रखें-यहींसे यात्राका शुभारम्भ हो। दें, चरण छूकर उनके आशीर्वाद जरूर लें। याद रखें— [6] स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालयकी विद्या केवल पेट-एक युवक स्वामी विवेकानन्दके पास आया, पूजाके लिये योग्य बनाती है, अत: आवश्यक है; पर बोला—'मैं आपसे गीता पढ़ना चाहता हूँ।' स्वामीजीने वास्तविक नहीं। क्यों? इससे सत्य नहीं जाना जा सकता युवकको देखकर कहा—'छ: माह रोज दो घण्टे फुटबाल अर्थात् मोक्ष, परम-सुख, परम-शान्ति प्रदान करनेमें यह खेलो, फिर आओ तब गीताजी पढ़ाऊँगा।' युवक असमर्थ है। परम-सुख, जो प्रत्येक मानवका लक्ष्य है, चिकत-भला, गीताजी और फुटबालका क्या सम्बन्ध? उसकी प्राप्तिकी तैयारी अभीसे, इसी आयुसे कर लेनी स्वामीजीने समझाया—'बेटा! भगवद्गीता वीरोंका शास्त्र चाहिये। सूर्य उदय होते ही यात्री घरसे निकलेगा तो अँधेरा है-एक सेनानीद्वारा एक महारथीको दिया दिव्य उपदेश होनेसे पूर्व गन्तव्यतक पहुँच जायगा, परंतु जो चलेगा ही सूर्यास्तके समय, वह कहाँ पहुँच पायेगा? जीवनका है। अत: पहले शरीरका बल बढ़ाओ। शरीर स्वस्थ होगा तो समझ भी परिष्कृत होगी-गीताजी-जैसा कठिन सबसे खराब समय है वृद्धावस्था, उसमें कुछ भी न हो विषय आसानीसे समझ सकोगे। जो शरीरको स्वस्थ सकेगा। अत: खोज अभीसे आरम्भ हो। नहीं रखता, सशक्त, सजग नहीं रख सकता अर्थात् जो प्रिय विद्यार्थियो! युवको एवं कलके गृहस्थो, इस शरीरको नहीं सम्भाल पाया, वह गीताजीके विचारोंको, परम-सुख, परमानन्द, अविनाशी सुखकी प्राप्तिके लिये अध्यात्मको कैसे सम्भाल सकेगा, जीवनमें कैसे उतार निम्न साधनोंपर विचार करें— सकेगा? उसे पचानेके लिये स्वस्थ शरीर और स्वस्थ १-शरीर स्वस्थ न हो—तिबयत ठीक न हो तो ही मन चाहिये।' विद्यार्थियो! स्वस्थ शरीरके लिये पढाईमें मन नहीं लगता। अस्वस्थ शरीर उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं कर सकता। अत: ऐसे नियमोंका पालन आवश्यक है—प्रात: जागना, हल्का व्यायाम, पौष्टिक

सुख-सुविधाओंके लिये उनका सदा स्मरण करते रहना। करें, उपाय करें, जिनसे शरीर स्वस्थ रहे। २-उपार्जित धन अपने लिये, अपनोंके लिये एवं कृतज्ञ बनना, कृतघ्न नहीं। उनका सतत स्मरण कृतज्ञता दूसरोंकी सेवाके लिये हो। धन ईमानदारी एवं मेहनतसे है और विस्मरण कृतघ्नता। स्मरण कराते रहनेका सुगमतम

ढंग है-भगवन्नाम-जप।

यात्रापर जाते हैं तो टिकट खरीदते हैं, तब निश्चिन्त

—इन शिक्षाओंको अपने जीवनमें उतारनेसे धीरे-

निर्भय तथा सुरक्षित बैठते हैं। टिकट न हो तो भयभीत

एवं अपमानित होना पड़ेगा। परमात्मासे जुड़ना भी

धीरे व्यक्ति ईश्वरके प्रति समर्पित हो जाता है और

परमेश्वर उसके जीवनका संचालक बन जाता है, तब

समूचे जीवनका दिव्यीकरण हो जाता है, सांसारिक एवं

आध्यात्मिक जीवन मिलकर एक हो जाते हैं और

लक्ष्य प्राप्तकर जन्म सार्थक तथा सफल हो जाता है।

टिकट लेकर यात्रा करनेके समान ही है।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

कमाया गया हो। धनकी पवित्रता अनिवार्य है, इससे मनकी पवित्रतापर प्रभाव पड़ता है।

३-बुद्धि विवेक-युक्त हो अर्थात् बोध हो कि पाप क्या है, पुण्य क्या है? क्या करना है, क्या नहीं

करना है? ४-सबसे प्रेम अर्थात् सबके प्रति सद्भावना हो

तथा सबकी सेवा संसारको सेवास्थली समझकर करें।

—इन सब बातोंका बोध एवं अनुपालन तब

सहज हो जाता है, जब व्यक्ति सत्संगके माध्यमसे परमात्मासे जुड़ जाय। जुड़नेका अर्थ है परमेश्वरद्वारा की गयी मेहरबानियोंके लिये, दी हुई वस्तुओं तथा

आदर्श राजनेताओंके पवित्र जीवनसे प्रेरणा लें

## ( श्रीशिवकुमारजी गोयल )

अन्धानुकरण शुरू हुआ है, तबसे नैतिक मूल्य घोर

भारत धर्म, संस्कृति तथा उच्च आदर्शींके कारण पूरे संसारमें जगद्गुरुके रूपमें सम्मान प्राप्त करता था।

इसीलिये महाराज मनुने उद्घोषणा की 'एतद्देशप्रसृतस्य

सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥' इस देशके अग्रजन्मा महापुरुषोंसे विश्वके

समस्त लोग नैतिकता एवं आचरणकी शिक्षा ग्रहण करें। भारतके ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों, पण्डितों-पुरोहितों

ही नहीं; राजाओं तथा राजनेताओंकी जीवनचर्या भी पूर्णरूपेण धर्मशास्त्रोंके अनुसार होती थी। नैतिक मूल्यों, सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, धर्म एवं राष्ट्रके प्रति अनन्य

निष्ठा, समाजके प्रति कर्तव्यभावना, माता-पिता तथा वृद्धजनोंके प्रति सेवाभावना-जैसे सद्गुणोंका प्रत्येक नागरिक पालन करता था।

अवहेलना करके पश्चिमी देशोंकी विकृतियोंका

अब जबसे धर्म एवं नैतिक मूल्योंकी अपेक्षा सांसारिक सुख-सुविधाओं, धन तथा सम्पत्तिको अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है, धर्मशास्त्रोंके आदेशकी संकटमें पड़ गये हैं। यही कारण है कि आज राजनीतिमें भ्रष्टाचार, अनाचार, अनैतिकता, स्वार्थका बोलबाला दिखायी देने लगा है। ईमानदारी, न्याय, निष्पक्षताका

व्यवहार करनेवाले एवं जनताका हितसाधन करनेवाले

ऐसी विषम स्थितिमें हम अपने देशकी पुरानी

**ाजीवनचर्या**−

पीढ़ीके राजनेताओंके उच्चादर्शोंसे निश्चय ही प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं—

राजनेता दुर्लभ होते जा रहे हैं।

(१) राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूकी आदर्श जीवनचर्या

डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी राष्ट्रपति बननेसे पूर्वतक कांग्रेसके नेता थे तथा वकालत करते थे। वे उन दिनों पटना उच्च न्यायालयमें वकालत करते

थे। एक दिन एक व्यक्ति उनके पास पहुँचा। वह बोला— वकील साहब! मेरी विधवा चाचीको कोई सन्तान नहीं है।

में विधवा चाचीका उत्तराधिकारी बनना चाहता हूँ। चाची

\* आदर्श राजनेताओं के पवित्र जीवनसे प्रेरणा लें \* अङ्क ] अपने भाई-भतीजोंको जायदाद न दे पाये; ऐसी कानूनी गोखलेजी अपना फटा कुरता स्वयं सूईसे ठीक कर रहे हैं। यह देखकर उसने कहा-आप-जैसा अग्रणी नेता व्यवस्था करा दें। राजेन्द्र बाबूने पूछा—चाचीकी क्या इच्छा है? फटे-पुराने कपडेको ठीक करनेमें समय क्यों नष्ट कर रहा उसने बताया-वह अपने गरीब भाईको जायदाद है, यह सोचकर मैं हतप्रभ हूँ! देना चाहती है, उसकी बेटियोंका विवाह करना चाहती है। गोखलेजीने विनम्रतासे उत्तर दिया—कर्मकी उच्चता राजेन्द्र बाबूने समझाते हुए कहा-तुम स्वयं धनाढ्य हो। तथा सादगीका जीवन ही हम भारतीयोंके बडप्पनकी तुम्हें भगवान्से, धर्मसे डरना चाहिये कि दूसरेकी सम्पत्ति कसौटी है, न कि अच्छे कपड़े या कीमती आभूषण धारण हड़पना चाहते हो। तुम विधवा चाचीकी सेवा करो। उसका करना। मैंने पैसा-पैसा बचाकर उसे भारतकी स्वाधीनताके आशीर्वाद लो, इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। कार्योंमें खर्च करनेका संकल्प लिया हुआ है। इससे मुझे गो-ब्राह्मणभक्ति—डॉ० राजेन्द्रप्रसादजीकी जीवनचर्या अनुठा सन्तोष मिलता है। परम सात्त्विक रही। राष्ट्रपति-जैसे सर्वोच्च पदपर मनोनीत धनिक व्यक्ति उनके शब्द सुनकर चरणोंमें झुक होनेके बाद भी वे सनातनधर्मकी परम्पराओंका पालन गया। करते थे। श्राद्धके दिनोंमें न दाढ़ी बनाते थे, न अन्य श्रीगोखलेजी-जैसे अग्रणी राजनेताके जीवनसे क्या वर्तमान समयमें तड़क-भड़कमें जीनेवाले राजनेता कुछ शास्त्रनिषिद्ध कर्म करते थे। काशी जाकर उन्होंने विद्वान् ब्राह्मणोंका विधिवत् चरण धोकर सम्मान किया था। तीर्थींमें सीख ले सकते हैं? (३) सेठ श्रीजमनालाल बजाजकी नैतिकता पहुँचकर मन्दिरोंके दर्शन करते थे-साधु-संतोंका सत्संग किया करते थे। समय-समयपर विद्वानोंको राष्ट्रपतिभवनमें सेठ श्रीजमनालाल बजाज परम धार्मिक तथा ईश्वरभक्त आमन्त्रितकर उनके प्रवचनोंका आयोजन करते थे। सुविख्यात थे। गीता तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके प्रति उनकी अनन्य वेदमूर्ति पं॰ मोतीलाल शास्त्रीको जयपुरसे दिल्ली आमन्त्रितकर श्रद्धाभावना थी। सन्त-महात्माओंका सत्संग करके उन्हें उन्होंने वेदोंके महत्त्वपर उनका प्रवचन कराया था। अपार शान्ति मिलती थी। एक बार एक परम विरक्त संतने गांधीजीकी प्रेरणापर बजाज परिवारने वर्धामें गोसेवा उन्हें संकल्प कराया कि वे जीवनभर सत्य एवं ईमानदारीका सम्मेलनका आयोजन किया। गांधीजीने डॉ॰ राजेन्द्रप्रसादजीसे पालन करेंगे। जमनालालजीने इस संकल्पका हमेशा पालन किया। बड़े उद्योगपित होनेके बावजूद उन्होंने अत्यन्त सम्मेलनकी अध्यक्षता करनेको कहा। उन्होंने आदेश स्वीकार कर लिया। सादगी और सात्त्विकताका जीवन व्यतीत किया। राजेन्द्र बाबू अपने निवासस्थानपर पहुँचे। उन्होंने जमनालालजीको समाजसेवी श्रीकृष्णदास जाजूने अपने चमड़ेके जूते बाहर फेंक दिये। संकल्प लिया-प्रेरणा देते हुए कहा था—देशसेवा और समाजसेवा आजसे हत्या किये गये पशुके चमड़ेका जूता नहीं पहनेंगे। भगवान्की साक्षात् पूजा है। इस कार्यके लिये जीवन गायका दूध तथा गायका घी ही सेवन करेंगे। अर्पित कर दो। सन् १९०६ ई०में जाजूजी उन्हें अपने साथ गांधीजीको जब राजेन्द्र बाबूके इस संकल्पका पता कलकत्तामें आयोजित कांग्रेसके अधिवेशनमें ले गये। वहाँ चला तो वे बोले—वास्तवमें आज राजेन्द्र बाबू सच्चे गोभक्त गांधीजी, लोकमान्यतिलक तथा पं० मदनमोहन मालवीयजीके कहलानेके अधिकारी हुए हैं। राजेन्द्र बाबू आजीवन समक्ष जमनालालजीने स्वदेशीकी शपथ ली। एक बार वे गोवंशके रक्षण-संवर्धनपर बल देते रहे। सत्याग्रह करके जेल गये। जेलसे वापस लौटे तो उन्हें पता (२) गोखलेजीकी सादगी चला कि उनके कपडा-रूई कारखानेके प्रबन्धकोंने आय श्रीगोपालकृष्ण गोखलेकी जीवनचर्या अत्यन्त सादगीपूर्ण कम दिखाकर टैक्सका ७५ हजार रुपया बचा लिया है। थी। वे पूर्णसंयिमत जीवन बिताते थे। वे रातभर सो नहीं सके। सवेरे वर्धा पहुँचकर गांधीजीसे पूछा कि इस अधर्मकार्यका प्रायश्चित कैसे किया जाय? एक दिन एक सम्पन्न व्यक्ति गोखलेजीके दर्शनोंके लिये उनके निवासस्थानपर पहुँचा। उसने देखा कि गांधीजीने कहा-इसमें तुम्हारी सहमति तो थी नहीं, अत:

प्रायश्चित्तकी क्या आवश्यकता है। ७५ हजार रुपये जा रहे हैं ? आचार्य नरेन्द्रदेवजीने उत्तर दिया—भैया! कार परमार्थमें लगा दो। उन्होंने गरीबोंके कल्याणकार्यपर वह मुझे विश्वविद्यालयके कार्यसे आने-जानेके लिये मिली है। रकम खर्च कर दी, तब जाकर मनको शान्ति मिली। इस मैं अपने किसी बीमार सम्बन्धीको देखने जा रहा हूँ। अपने प्रकार अन्तिम श्वासतक वे सत्य और ईमानदारीके निजी काममें उस कारका उपयोग कैसे कर सकता था? आचार्य नरेन्द्रदेवजीकी जीवनचर्या अत्यन्त सादगीपूर्ण संकल्पका अक्षरशः पालन करते रहे। (४) श्रीतिलकजीकी अनुठी निःस्पृहता थी। वे हर क्षण नैतिक मुल्योंका पालन करनेके लिये तत्पर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक परम धार्मिक, रहते थे। आजके राजनेता क्या उनसे प्रेरणा ले सकते हैं? श्रीकृष्णभक्त, तेजस्वी राजनेता तथा पत्रकार थे। वे प्रतिदिन (६) श्रीटण्डनजीकी आदर्श जीवनचर्या स्नानके बाद माथेपर तिलक लगाकर श्रीकृष्ण एवं राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन सात्त्विकता, सरलता और नैतिकताकी प्रतिमूर्ति थे। उनकी जीवनचर्या पूर्णरूपेण गणेशजीकी पूजा-अर्चना विधि-विधानसे किया करते थे। पुणेमें केसरीके कार्यालय जाते समय रास्तेमें गणेशजीके भारतीयताके अनुरूप थी। उन दिनों वे उत्तर प्रदेश दर्शन अवश्य करते थे। उन्हें राजद्रोहके आरोपमें सजा विधानसभाके अध्यक्ष थे। गेहूँ, चावलका अभाव चल रहा सुनाकर मांडलेकी जेल भेजा गया। जेलमें उन्होंने था। ये दोनों वस्तुएँ राशनकी दुकानसे नियमानुसार मिलती थीं। टण्डनजीके यहाँ अतिथियोंका आगमन लगा रहता श्रीमद्भगवद्गीताका गहन अध्ययनकर पुस्तकें लिखीं। मांडले जेलसे मुक्त होनेके बाद तिलकजी पुणे लौटे था। राशनमें मिला गेहूँ, चावल जल्दी ही समाप्त हो जाता तो उनका भव्य अभिनन्दन किया गया। एक कांग्रेसी नेताने तो वे जौके आटेसे बनी रोटियाँ खाते-खिलाते थे। मुसकुराते हुए तिलकजीसे पूछा-यदि भारत स्वाधीन हो एक दिन बिहारके कुछ कांग्रेसी नेता टण्डनजीसे गया तो आप प्रधानमन्त्री या गृहमन्त्रीमेंसे किस पदको मिलने आये। उन्हें इसका पहले ही पता लग गया था। नये रसोइयेने कहा—मैं आटा, चावल दुकानसे ब्लैकमें ले स्वीकार करना पसन्द करेंगे? तिलकजीने उत्तर दिया-मैंने अपने धर्मशास्त्रों एवं गीतासे प्रेरित होकर मातृभूमिको आता हूँ। टण्डनजीने उत्तर दिया—मैं ब्लैकसे कभी कोई विदेशी अंग्रेजोंसे स्वाधीन करानेके उद्देश्यसे स्वाधीनता वस्तु नहीं मँगवाता। उन्होंने बगीचेसे आलू मँगवाये, आन्दोलनमें भाग लिया है। जेलमें जब मैंने गीता, पुराणों रसोइयेसे कहकर उन्हें उबलवाया; अतिथियोंसे कहा— तथा उपनिषदोंका अध्ययन किया तो मैं इस परिणामपर राशनका गेहूँ, चावल समयसे पूर्व समाप्त हो गया है। आज पहुँचा कि जीवनका अन्तिम लक्ष्य प्रभुभक्ति एवं जनसेवा आपका आलुभोजसे स्वागत करना पड़ रहा है। कांग्रेसी ही है। राजनीतिके पचड़ेमें पड़कर न भक्ति हो सकती है, नेता टण्डनजीकी सिद्धान्त-निष्ठाके आगे नतमस्तक हो न नि:स्वार्थसेवा। इसलिये मैं स्वराज्य मिलते ही अपना उठे। तमाम समय भगवान्की भक्ति एवं सत्साहित्य और श्रीटण्डनजी उन दिनों संसद-सदस्य थे। वे लाला शास्त्रोंके अध्ययनमें लगाकर अपना जीवन सार्थक बनाऊँगा। अचिन्तराम एवं हरिहरनाथ शास्त्रीके साथ नयी दिल्लीमें श्रीतिलकजीका सन् १९२० ई० में ही निधन हो २, टेलीग्राफ लेनकी कोठीमें रहते थे। तीनोंका भोजन एक साथ बनता था। मकानका किराया तथा बिल वे बराबर-

बराबर बाँटकर अदा करते थे। तीनों राजनेताओंने अलग-

अलग सरकारी आवास न लेकर एक साथ रहनेका निर्णय

इसलिये किया था, जिससे सरकारी खर्चमें बचत हो। वे

कहा करते थे कि जनप्रतिनिधियोंको जनताकी खून-

पसीनेकी कमाईको अनापशनाप खर्च करनेका अधिकार

नहीं है। टण्डनजीकी जीवनचर्या अत्यन्त सादगीपूर्ण एवं

भारतीयताके अनुरूप थी। वे हिन्दी तथा गोमाताके प्रति

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \*

**ाजीवनचर्या**−

न निःस्वायसवा । इसालयं मं स्वराज्य निमलतं हा अपना तमाम समय भगवान्की भक्ति एवं सत्साहित्य और शास्त्रोंके अध्ययनमें लगाकर अपना जीवन सार्थक बनाऊँगा। श्रीतिलकजीका सन् १९२० ई० में ही निधन हो गया। क्या वर्तमान राजनीतिज्ञ उनकी भावनाका अनुसरण कर रहे हैं? (५) आचार्य नरेन्द्रदेवकी नैतिकता सुविख्यात समाजवादी चिन्तक एवं हिन्दू विश्वविद्यालयके उपकुलपित आचार्य नरेन्द्रदेवजी काशीमें रिक्शेमें बैठे कहीं जा रहे थे। उनके परिचित एक सज्जनने

यह देखा तो पृछ बैठे—आचार्यजी! आप इतने बडे नेता

एवं शिक्षाविद् होकर पासमें कार होते हुए भी रिक्शेमें क्यों

\* आदर्श राजनेताओंके पवित्र जीवनसे प्रेरणा लें \* अङ्क ] अनन्य श्रद्धाभावना रखते थे। गोवंशकी हत्याको घोर जाजुजी इस पदके सर्वथा योग्य हैं। जाजुजी बीचमें विनम्रतासे बोले—महात्माजी! मैं इस पदके सर्वथा पापमय अमानवीय कृत्य मानते थे। समय-समयपर उन्होंने स्वाधीन भारतमें गोवंशकी हत्या अविलम्ब बन्द किये अयोग्य हुँ। जानेकी माँगकर गोभक्तिका परिचय दिया था। श्रीऋषभदास राँकाने एकान्तमें जाजूजीसे पूछा— महामना पं० मदनमोहनमालवीयजी महाराजने हिन्दीके गांधीजीने स्वयं आपसे इस पदको ग्रहण करनेका अनुरोध किया है। आपने फिर भी स्वीकार क्यों नहीं किया? प्रचारके उद्देश्यसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापना की जाजूजीने सहज भावसे उत्तर दिया—मुख्यमन्त्री-जैसे पदपर थी। मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके कार्यमें बने रहनेके लिये मन्त्रिमण्डलके सदस्यों तथा विधायकोंको व्यस्त हो गये तो उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी खुश रखनेके लिये सिद्धान्तोंको ताकपर रखना पड़ता है। बागडोर टण्डनजीको सौंप दी। में पदसे ज्यादा सिद्धान्तोंको महत्त्व देता हूँ। इसलिये मैंने एक बार टण्डनजीने हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। स्थायी समितिकी बैठक आयोजित की। पण्डित श्रीनारायण वर्तमान राजनीतिज्ञ छोटे-से-छोटा पद पानेके लिये चतुर्वेदीसे उन्होंने बैठकमें भाग लेने आनेवालोंके लिये तमाम सिद्धान्तोंको ताकपर रखकर धनबल, बाहबल तथा जलपानकी व्यवस्था करनेको कहा। बैठक शुरू होनेसे पूर्व अन्य गलत साधन उपयोगमें लानेमें नहीं हिचिकचाते। क्या सभीको जलपान कराया गया। बैठकमें टण्डनजीने हिन्दीके वर्तमान राजनेता जाजूजीकी सिद्धान्तनिष्ठासे सबक ले प्रचार-प्रसारके उपाय सुझाये। उन्होंने कहा—हिन्दीका सकेंगे ? (८) भाई परमानन्दजीका त्याग प्रचार करनेका संकल्प लेनेवाले आप तमाम सदस्योंको आने-जानेका मार्गव्यय स्वयं खर्च करना चाहिये। त्यागके इतिहासकार तथा आर्यसमाजी विद्वान् भाई परमानन्दजीको बलपर ही हिन्दीकी सेवा की जा सकती है। ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध षड्यन्त्र रचनेका आरोप लगाकर बैठकके बाद टण्डनजीने श्रीनारायण चतुर्वेदीसे फाँसीकी सजा सुनायी गयी। बादमें फाँसीकी सजाको आजीवन कारावासमें बदलकर उन्हें कालापानी (अण्डमान) पूछा—जलपानपर हुए व्ययकी राशिका प्रबन्ध कैसे करोगे ? कुछ क्षण रुककर बोले-सम्मेलनके कोषसे एक भेजा गया। अण्डमानकी जेलमें वीर सावरकर एवं अन्य पैसा भी इसपर खर्च नहीं होना चाहिये। उन्होंने जेबमेंसे देशरत्नोंके साथ उन्होंने अमानवीय यातनाएँ सहन कीं। रुपये निकाले तथा देते हुए बोले-जलपानका भुगतान इन अण्डमानसे मुक्तिके बाद भाईजी लाहौर लौटे। रुपयोंसे कर देना। हजारों विशिष्ट जनोंने उनका हार्दिक स्वागत किया। हिन्दीके लिये संग्रहीत धनका, पैसे-पैसेका हिसाब लाहौरके प्रतिष्ठित लोगोंको पता था कि भाईजीके जेलमें रहनेके दौरान भाईजीकी धर्मपत्नी भाग्यसुधिदेवीने आर्थिक रखा जाना चाहिये। पण्डित श्रीनारायणजी टण्डनजीद्वारा दी गयी नैतिकताकी संकटोंसे गुजरते हुए अपने पुत्र तथा पुत्रीका लालन-पालन किया। उनके श्रद्धालुजनोंने स्वागतके बाद एक थैलीमें सीखसे हतप्रभ रह गये। (७) श्रीकृष्णदासजाजूने मुख्यमन्त्री रुपये रखकर उन्हें भेंट किये। भाईजीने पूछा—इस थैलीमें पद ठुकराया क्या है ? उन्हें बताया गया कि इसमें कुछ हजार रुपये हैं, एक प्रदेशके मुख्यमन्त्रीपदपर मनोनयनको लेकर श्रद्धानिधिके रूपमें भेंट किये जा रहे हैं। विवाद पैदा हो गया। पं० रविशंकर शुक्ल डॉ० नारायण भाईजीने विनम्रतापूर्वक राशि लेनेसे इनकार करते भास्कर खरेकी जगह किसी दूसरे व्यक्तिको मुख्यमन्त्री हुए कहा—मातृभूमिकी स्वाधीनताके संघर्षमें योगदानकर बनाना चाहते थे। कांग्रेस कार्यकारिणीकी वर्धामें हुई मैंने कोई नया अनुठा कार्य नहीं किया है। मेरे वंशके भाई बैठकमें स्वाधीनतासेनानी तथा समाजसेवी श्रीकृष्णदास मतिदासने गुरु तेगबहादुरजी महाराजके साथ हिन्दूधर्मकी जाजुके नामपर सहमति व्यक्त की गयी। गांधीजीने कहा— रक्षाके लिये शरीरको आरेसे चिरवाकर बलिदान दिया था।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− मेरा त्याग तो उसके सामने कुछ भी नहीं है। मन्त्रियोंकी बैठकमें कहा-ब्रिटिश सरकारकी नीतिका स्वाधीनता सेनानीके नामपर सुख-सुविधाएँ बटोरने-पालन करते हुए भारत छोड़ो आन्दोलनका खुलकर विरोध वाले राजनीतिज्ञोंको भाईजीके जीवनसे प्रेरणा लेनी चाहिये। किया जाना चाहिये। जो मन्त्री विरोध करनेको तैयार न हो (९) पंतजीकी अनुठी सेवाभावना उसे मन्त्रिमण्डलसे त्यागपत्र दे देना चाहिये। सुविख्यात कांग्रेसी नेता तथा केन्द्रीय गृहमन्त्री रहे डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जीने निर्भीकतासे कहा-भले श्रीगोविन्दवल्लभ पंत उन दिनों काशीपुर (नैनीताल)-में ही हमारे कांग्रेससे मतभेद हैं, किंतु भारतकी स्वाधीनताके वकालत करते थे। एक दिन सबेरे एक वृद्धा उनके लिये कांग्रेसद्वारा जारी आन्दोलन न्यायोचित है, हम इसका निवासस्थानपर पहुँची। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—वकील विरोध कदापि नहीं करेंगे। यह कहकर डॉ० मुखर्जीने साहब! मैं मोची-परिवारकी विधवा महिला हूँ। मेरे कोई मन्त्रीपदसे त्यागपत्र दे दिया। बेटा नहीं है, केवल एक बेटी है, जो अपनी ससुरालमें है। पद तथा सत्तामें रहनेके लिये पग-पगपर सिद्धान्तोंका मेरे पतिके चाचाने हमारी तमाम जायदाद हड़प ली है तथा हनन करनेवाले वर्तमान राजनेता क्या डॉ॰ मुखर्जीकी मुझे मारपीटकर घरसे निकाल दिया है। सिद्धान्तप्रियतासे कुछ शिक्षा ले पायेंगे! पंतजीने वृद्ध महिलाकी दर्दनाक बात सुनी तो उनकी (११) लालबहादुर शास्त्रीजीकी अनूठी नैतिकता आँखें नम हो उठीं। उन्होंने कहा—माताजी! चिन्ता न करो। में तुम्हारी तमाम जायदाद वापस दिलाकर ही चैन लूँगा। श्रीलालबहादुरजी शास्त्री उन दिनों प्रधानमन्त्री थे। एक दिन उनके पुत्र सुनील सरकारी कार कहीं ले गये। उन्होंने वृद्धाकी तरफसे मुकदमा दायर कराया। अदालती वे देर रात लौटे तो शास्त्रीजी कागजात देखनेमें व्यस्त थे। शुल्क भी अपनी जेबसे जमा कराया। पंतजीके प्रयाससे अदालतने वृद्धाकी सम्पत्ति वापस दिलानेका आदेश दिया। शास्त्रीजीने कारकी आवाज सुनी तो पास आये, सुनीलसे वृद्धा जब मुकदमा जीतनेके बाद उन्हें धन्यवाद देने आयी पूछा—कार लेकर कहाँ गये थे? जवाब मिला—दोस्तोंके तो पंतजीने कहा-माताजी! मुझे धन्यवाद न देकर साथ घूमने निकल गया था। उन्होंने कहा कि यदि कहीं आशीर्वाद दो कि मैं जीवनभर गरीबोंकी सहायता करता जाना हुआ करे तो सरकारी कार न ले जाकर अपने साधनसे जाया करो। सरकारी कारका व्यक्तिगत काममें रहूँ। आज न पंतजी-जैसे राजनेता हैं न वकील, जो गरीबों उपयोग गलत है। सवेरे शास्त्रीजीने ड्राइवरसे पूछा-रात कार कितने एवं असहायोंकी सहायताको अपना कर्तव्य मानकर आदर्श उपस्थित करते हों। किलोमीटर चली। ड्राइवरने मीटर देखनेके बाद बताया ३४ (१०) डॉ० मुखर्जीने मन्त्रीपदसे कि॰मी॰ चली। उन्होंने जेबसे रुपये निकाले तथा बोले— त्यागपत्र दे दिया ३४ कि॰मी॰ चलनेमें जो पेट्रोल खर्च हुआ हो, उसे डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी एक अग्रणी शिक्षाविद्के परिवहनविभागमें जमा करा देना। साथ-साथ एक कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। सन् १९४० ई०में शास्त्रीजीकी जीवनचर्या अत्यन्त सादगीपूर्ण थी। उन्हें बंगालके मन्त्रिमण्डलमें शामिल किया गया। सरकारमें उन्होंने कभी भी सरकारी पैसेका अपनी व्यक्तिगत मन्त्री होते हुए भी वे समय-समयपर मुस्लिमलीगद्वारा सुविधाके लिये उपयोग नहीं होने दिया। हिन्दुओंके उत्पीडनकी घटनाओंका खुलकर निर्भीकताके अनूठी गुरुभक्ति-श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय रेलमन्त्री थे। काशीमें उन्हें संस्कृतके महान् विद्वान् पण्डित साथ विरोध करनेको तत्पर रहते थे। निष्कामेश्वरमिश्रके श्रीचरणोंमें बैठकर अध्ययन करनेका ९ अगस्त १९४२ ई०को मुम्बईमें जैसे ही कांग्रेस

सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

सन् १९५३ ई० की बात है। पण्डित निष्कामेश्वरजी

किसी कार्यसे दिल्ली आये हुए थे। शास्त्रीजीने उन्हें

कार्यकारिणीने भारत छोड़ो आन्दोलनका प्रस्ताव पारित किया कि कांग्रेसके नेताओंको गिरफ्तार कर लिया गया।

बंगालके गवर्नर सर जॉन हार्वर्डने बंगाल सरकारके

\* आदर्श राजनेताओंके पवित्र जीवनसे प्रेरणा लें \* अङ्क ] आवासपर आमन्त्रितकर उनके चरण पखारकर अभिनन्दन हाथ डाला तथा बोले—खुले पैसे नहीं हैं। लोहियाजी कोई पुस्तक पढ़नेमें लगे रहे। इसी बीच अवस्थीजी डिब्बेसे किया। सभी परिवारीजनोंको बताया कि ये मेरे गुरुदेव हैं। पण्डितजी काम निपटानेके बाद दिल्लीसे रेलद्वारा उतरे तथा प्लेटफार्मपर पान बेचनेवालेसे दो पान खरीदे काशी लौट रहे थे। अचानक रेलके गजरौला (मुरादाबाद) और डिब्बेमें लौट आये। उन्होंने जैसे ही पान लोहियाजीको स्टेशनपर पहुँचते ही हृदयगित रुक जानेसे उनका निधन थमाया कि उन्होंने कहा-तुम्हारी जेबमें तो खुले पैसे नहीं हो गया। उनके साथ यात्रा कर रहे शास्त्रीजीके अनन्य मित्र थे, फिर पान कैसे ले आये? तथा गांधीवादी नेता अलगूराय शास्त्रीने गजरौला रेलवेस्टेशनसे अवस्थीजीने सहज भावसे बताया—मैंने थैलीमेंसे फोनकर शास्त्रीजीको इस दु:खद घटनाकी सूचना दी। अठन्नी निकाली थी, उससे पान ले आया। यह सुनते ही शास्त्रीजी अपने तमाम कार्यक्रम स्थगितकर कारसे गजरौला लोहियाजीका चेहरा क्रोधमें तमतमा उठा। वे बोले-गरीब पहुँचे। जूते प्लेटफार्मपर उतारकर उस स्थानपर पहुँच गये, श्रमिकों तथा कार्यकर्ताओंने एक-एक पैसा, एक-एक जहाँ गुरुदेवका शव रखा हुआ था। शवको अपने साथ रुपया इकट्ठाकर दलके कामके लिये थैली दी। इसका रेलसे लेकर काशी गये। ससम्मान उनकी अन्त्येष्टि उपयोग हम अपने लिये कैसे कर सकते हैं? कराकर ही वापस लौटे। लोहियाजीने अपनी बण्डीकी जेबमें हाथ डाला। शास्त्रीजीकी इस अनुठी गुरुभक्तिको देखकर सभी उसमेंसे रुपया निकाला तथा थैलीमें डाल दिया, तब पान मुँहमें रखा। चिकत थे। शास्त्रीजी अपनी माताजीकी घण्टों-घण्टों सेवा किया लोहियाजी प्राय: भाषणमें कहा करते थे कि जिस करते थे। वे रातके समय उनके बिस्तरमें बैठकर चरण देशकी अधिकांश आबादी भूखे पेट सोती है, उस देशके दबाया करते थे। एक बार पत्नी ललिता शास्त्रीको सासकी राजनेताओंको जनताके धनसे विलासी जीवन जीनेका कोई सेवा करते देखकर वे हँसकर बोले—तुम गंगास्नान तथा अधिकार नहीं है। वे राष्ट्रपतिसे लेकर मन्त्रियों, सांसदों अन्य धर्मकार्योंमें मेरे साथ पुण्य बटोरती हो। मेरी तथा विधायकोंकी फिजूलखर्चीपर नियन्त्रण लगाने तथा माताजीकी सेवा करके मेरे पुण्योंका भी बँटवारा करती हो। उन्हें आम आदमीकी तरह रहनेको कहा करते थे। आज (१२) राममनोहर लोहियाजीका प्रसंग अपनेको लोहियावादी तथा समाजवादी बतानेवाले राजनीतिक डॉ॰ राममनोहर लोहिया अग्रणी स्वाधीनता सेनानी नेता क्या इस आदर्शको अपने सम्मुख रखेंगे? (१३) पं० दीनदयाल उपाध्यायका नियम-तथा समाजवादी चिन्तक थे। उनकी जीवनचर्या सादगीपूर्ण थी। वे अत्यन्त सादगी एवं सरलताका जीवन जीते थे। पालन जनसंघके वरिष्ठ नेता तथा चिन्तक पं० दीनदयालजी अपनी सुख-सुविधाके लिये उन्होंने कभी भी जनताका पैसा उपयोगमें नहीं लिया। उपाध्यायका जीवन आदर्श एवं सात्त्विक जीवन था। सन् १९५८ ई० की बात है। लोहियाजी कानपुरमें जनसंघके राष्ट्रीय अध्यक्ष बननेके बाद भी वे अपने कपडे श्रमिकोंकी रैलीको सम्बोधित करने आये थे। श्रमिकोंने अपने हाथोंसे धोते थे। उनकी जीवनचर्या भारतीयतासे लोहियाजीको समाजवादी पार्टीके लिये धनकी थैली भेंट ओत-प्रोत थी। की। श्रमिकोंसे पैसा-पैसा इकट्ठा करके पाँच हजार रुपये एक बार वे रेलमें साथियोंके साथ जा रहे थे। वे उन्हें भेंट किये गये थे। समाचार सुननेके लिये ट्रांजिस्टर साथ रखते थे। उन्होंने कानपुरके समाजवादी पार्टीके सांसद जगदीश अवस्थी ट्रांजिस्टर थैलेसे निकाला तथा उसे चालू करते-करते रुक गये। साथके स्वयंसेवकने कारण पूछा तो बोले-इसका लोहियाके साथ रेलमें कानपुरसे अन्यत्र जानेके लिये खाना हुए। बीचमें किसी स्टेशनपर गाड़ी रुकी। लोहियाजी लाइसेन्स शुल्क कलतकका था। शुल्क जमा करानेके बाद बोले—अवस्थी! मेरा गला खराब है, एक पिपरिमण्टयुक्त इसका उपयोग किया जाना उचित होगा। बडा पान खरीद लाओ। अवस्थीने उन्हींके सामने जेबमें प्रशंसा-पत्र जलवा दिये—पण्डित दीनदयाल

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− ३६२ उपाध्यायने अपना समस्त जीवन राष्ट्र और समाजकी महत्त्वपूर्ण प्रमाणपत्र हैं। इनसे आगे चलकर अपने सेवाके लिये समर्पित किया हुआ था। अच्छीसे अच्छी असाधारण व्यक्तित्व तथा गुणोंको साक्ष्यके रूपमें प्रस्तुत उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। चाहते तो ऊँचे-से-ऊँचा सरकारी किया जा सकता है। पद पा सकते थे। किसी विश्वविद्यालयमें प्रवक्ता बन पण्डित दीनदयालजीने कहा-अरे भाई! जब मैंने सकते थे, किंतु उन्होंने अविवाहित रहकर राष्ट्रकार्य अपना पुरा जीवन भारतमाताके चरणोंमें अर्पित कर दिया है तो इन प्रमाणपत्रोंसे क्या लाभ उठा सकता हूँ? करनेका संकल्प लिया। एक बार वे लखीमपुरस्थित संघकार्यालयमें रुके हुए वसन्तरावजीने दु:खी मनसे वे सब प्रशंसा-पत्र जला डाले। थे। अपने सहयोगी वसन्तराव वैद्यके समक्ष उन्होंने अपने पण्डितजी प्राय: कहा करते थे-उपाधियाँ अहंकार पैदा करानेवाली व्याधियाँ ही सिद्ध होती हैं। राष्ट्र तथा बक्सेसे केवल एक कागज निकाला और उसे जैकेटकी जेबमें रख लिया। शेष कागजोंको देते हुए बोले— समाजका काम करनेवालोंको अहंकारसे दूर रहना चाहिये। वसन्तराव! इन तमाम कागजोंको जला डालो। वर्तमान समयमें राजनेता सत्ता, पद तथा मान-सम्मान वसन्तरावने उन कागजोंपर दृष्टि दौड़ायी तो देखा प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहकी तिकड्में करनेमें नहीं कि उनमें विद्यालय और महाविद्यालयीय कालमें हिचिकिचाते। क्या वे इन राजनेताओंके त्याग-तपस्यामय पण्डितजीद्वारा प्राप्त किये गये अनेक प्रशंसापत्र, प्रमाणपत्र जीवन, उनकी नैतिकता, ईमानदारीके प्रसंगोंसे प्रेरणा लेकर तथा संस्थाओंद्वारा प्रदान किये गये अभिनन्दनपत्र थे। अपनी क्षुद्र प्रवृत्तिको त्यागकर आदर्श उपस्थित करनेका

साहस दिखायेंगे?

बिरला ही मिलेगा।

# कुछ न्यायाधीशोंके अनूठे अनुकरणीय प्रसंग

### ( श्रीनरेन्द्रजी गोयल )

# रिश्वत ठुकराई

उन्होंने धीरेसे कहा-पण्डितजी! इन कागजोंमें अनेक

अम्बालाल सीकरलाल देसाई गुजरातमें न्यायाधीश

थे। वे परम ईश्वरभक्त तथा धर्मपरायण थे। न्यायालयमें

जानेसे पूर्व विधिवत् अपने इष्टदेवकी पूजा-अर्चना किया

करते थे। इष्टदेवकी मूर्तिके समक्ष खड़े होकर, हाथ जोड़कर प्रार्थना किया करते थे कि न्यायालयमें किसी

भी मुकदमेमें मुझसे किसीके साथ अन्याय न होने पाये। एक बार उनकी अदालतमें दो धनाढ्योंके बीच

विवादका मुकदमा दर्ज हुआ। करोड़ोंकी सम्पत्तिका विवाद था। एक दिन उनमेंसे एक व्यक्ति उनके घर

पहुँचा। उसने जज साहबके पेशकारसे कहा—'मुझे जज

साहबसे मिलना है।' जज साहबको बताया गया तो वे अपने कमरेसे बैठकमें आये। उस व्यक्तिने नोटोंकी गड़ी

मेजपर रखते हुए कहा—'साहब, ये दो लाख रुपयेकी तुच्छ भेंट लाया हूँ। अमुक मामलेमें निर्णय मेरे पक्षमें

करनेकी कृपा करें। इतनी रकम देनेवाला दूसरा नहीं

मिलेगा।'

इसी प्रकार अपने कर्तव्य-पालनमें दृढ़ रहूँ-यह कृपा बनाये रखना। आश्तोष मुखर्जीकी अनुठी मातृभक्ति

श्रीआशुतोष मुखर्जी बंगालके अग्रणी न्यायाधीश थे। वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके कुलपति भी रहे थे।

उनकी जीवनचर्या धर्मशास्त्रानुसार सात्त्विकतापूर्ण थी। प्रत्येक दिन भगवान्की पूजा-अर्चना करनेके बाद ही वे

न्यायाधीश श्रीदेसाईने जवाब दिया—'अच्छाई इसीमें

जज साहब अपने पूजाके कमरेमें गये और अपने

है कि इन्हें आप वापस ले जाइये। मैं रिश्वतके इस

अपवित्र धनको छूना भी पाप मानता हूँ और यह याद

रखना कि इतनी बड़ी रकम वापस करनेवाला भी कोई

इष्टदेव भगवान् श्रीद्वारकाधीशके समक्ष हाथ जोडकर

बोले—भगवन्! आपने आज मेरी अच्छी परीक्षा ली। मैं

जल-अन्न ग्रहण करते थे। वे अपनी माँके प्रतिदिन चरण दबाते थे।

अङ्क ] * कुछ न्यायाधीशोंके अनूठे अनुकरणीय प्रसंग * ३६३		
<u> </u>	<u> </u>	
वायसराय लार्ड कर्जनने इंग्लैण्डमें आयोजित एक	कर दें। यह रकम परिवारको नहीं मिलनी चाहिये,	
सम्मेलनमें श्रीमुखर्जीको भेजनेका निर्णय लिया। मुखर्जीकी	किसी धर्म-कार्यमें लगायी जानी चाहिये।'	
माँ उन दिनों अस्वस्थ चल रही थीं। विदेश भेजे	बीमा रद्द होनेकी सूचना मिलते ही न्यायाधीश	
जानेका पता चला तो माँने कहा—'बेटा, मैं तो तेरी	श्रीबनर्जीके मुखपर शान्ति तथा सन्तोषकी छवि दिखायी	
गोदमें सिर रखकर अन्तिम साँस लेनेकी इच्छा रखती	दी तथा उन्होंने तुलसी-गंगाजलका पान किया और	
हूँ। तू विदेश चला जायगा तो यह कैसे होगा?'	भगवान्का स्मरण करते हुए प्राण त्याग दिये।	
श्रीआशुतोष मुखर्जीने गवर्नरको पत्र लिखा—'मेरी	गुरुदास बनर्जीने धायको सम्मान दिया	
माँकी आज्ञा नहीं है। मैं इंग्लैण्ड नहीं जा पाऊँगा।' पत्र	, श्रीगुरुदास बनर्जी कलकत्ता उच्च न्यायालयके	
पढ़ते ही लार्ड कर्जनने मुखर्जीको फोनकर कहा—'आप	न्यायाधीश थे। वे अत्यन्त धर्मपरायण तथा न्यायप्रिय थे।	
अपनी माँसे कह दें कि भारतका वायसराय उन्हें इंग्लैण्ड	अपनी आयमेंसे काफी रुपये धर्म तथा सेवा-कार्योंपर	
जानेका आदेश दे रहा है।'	खर्च करते थे।	
श्रीमुखर्जीने विनम्रतासे उत्तर दिया—'सर, एक	एक दिन श्रीबनर्जी न्यायालयमें बैठे किसी मुकदमेमें	
भारतीयके लिये माँका आदेश सर्वोपरि होता है। माँकी	वकीलोंकी दलील सुन रहे थे। अचानक उन्होंने शोर	
इच्छाके विपरीत मैं कोई पग नहीं उठा सकता।'	सुना। सामने निगाह उठाकर देखा कि एक द्वारपाल	
वायसराय श्रीमुखर्जीकी अनूठी मातृभक्तिकी भावना	किसी वृद्धाको अन्दर आनेसे रोक रहा है तथा वृद्धा	
जानकर हतप्रभ रह गये।	चिल्ला रही है, 'मैं अपने बेटेसे मिलने आयी हूँ। मुझे	
जज नीलमाधव बनर्जीकी अनूठी नैतिकता	क्यों रोका जा रहा है?' न्यायाधीशने कार्यवाही बीचमें	
बंगालके न्यायाधीश श्रीनीलमाधव बनर्जी अपनी	ही रोक दी तथा तेजीसे दरवाजेके पास पहुँचे। उन्होंने	
धर्मपरायणता तथा न्यायप्रियताके लिये दूर-दूरतक विख्यात	गंगास्नानके दौरान गीली हुई धोती पहने वृद्धाको देखते	
थे। वे किसी भी मुकदमेका निर्णय पूरी सत्यताका पता	ही उसके चरण स्पर्श किये। उसे अपने पास आदरसे	
लगानेके बाद ही देते थे।	कुर्सीपर बिठाया। वे पहचान गये थे कि इस धायने	
सेवानिवृत्त होनेके बाद भी वे गरीबोंको नि:शुल्क	बचपनमें उन्हें पाला-पोसा था।	
न्याय दिलानेके कार्यमें लगे रहे। उनकी जीवनचर्या	वृद्धाने उन्हें बताया कि वह अपने पासके गाँवसे	
सदाचारपूर्ण थी।	गंगास्नान करने यहाँ आयी थी और उसे पता चला कि	
वृद्धावस्थामें वे किसी घातक बीमारीसे ग्रस्त हो	गुरुदास यहाँ बैठकर लोगोंको सजा सुनाता है, इसलिये	
गये। उन्हें असहनीय पीड़ा होती तो वे भगवान्से प्रार्थना	मैं तुझे देखने यहाँतक आ पहुँची।	
करते—'प्रभो! मुझे रोगग्रस्त शरीरसे मुक्ति दो।' उन्हें	न्यायाधीशकी इस अनूठी मातृभक्तिको देखकर	
शैय्यापर पड़े-पड़े कष्ट झेलते हुए महीनों बीत गये।	पास खड़े अंग्रेज जज हतप्रभ रह गये। श्रीवनर्जी वृद्धाको	
एक दिन उन्हें पुरानी कोई बात याद आयी।	कारमें बिठाकर अपनी कोठीमें ले गये। अपनी पत्नीसे	
उन्होंने अचानक अपने परिवारके बीमा अधिकारीको	बोले—'यह मेरी माँ है, जिसने बचपनमें मुझे दूध	
बुलवाया। वे उससे बोले—'मैं स्वयं इस शारीरिक	पिलाया था।' पत्नीने वृद्धाके पैर छुये।	
कष्टका कारण हूँ। मैंने जब युवावस्थामें बीमा करवाया	परिवारके सभी सदस्योंने वृद्धाको पूर्ण आदर दिया।	
था—डाइबिटीज (मधुमेह)-की बीमारीसे ग्रस्त था, किंतु	बहुत-से उपहार देकर कारसे उन्हें गाँव भिजवाया।	
बीमा करवानेके लिये बीमारीको छिपाया था। न्यायाधीशके	ब्रिटिश जजकी अनूठी न्यायप्रियता	
रूपमें हमेशा सत्यका आचरण किया, किंतु उससे पहले	उन दिनों चतुर्थ हेनरी ब्रिटेनके राजा थे। उनके	
किये गये असत्य व्यवहारके पापका फल मुझे आज	राज्यके एण्डरसन नामक न्यायाधीश निष्पक्षताके लिये	
इस कष्टके रूपमें भोगना पड़ रहा है, मेरे बीमेको रद	विख्यात थे। वह प्रतिदिन भगवान्से प्रार्थना करते कि	

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− ३६४ किया और कहा—'आज मैं व्यक्तिगत कर्तव्यपालन न्यायके आसनपर बैठनेके बाद उनसे कोई अन्याय न करनेकी वजहसे न्यायालय ठीक समय नहीं पहुँच पाया। हो। प्रार्थनाके बाद ही वे न्यायालय जाते। एक बार राजाके युवा पुत्रके मुँहलगे कर्मचारीने किसी आप सबको मेरे विलम्बसे आनेके कारण कष्ट तथा असुविधा हुई है। मैं न केवल इसके लिये क्षमा माँगता गरीबका उत्पीड़न कर दिया। गरीबने न्यायालयमें गुहार हूँ, अपितु अपनेपर पचास डालर जुर्माना ठोकता हूँ।' लगायी। न्यायाधीशने राजकुमारकी सिफारिश न मानकर कर्मचारीको सजा सुना दी। जब राजकुमारको पता लगा न्यायाधीशके सहायकने जब कहा—'जज साहब तो वह क्रोधमें भरकर न्यायालय जा पहुँचा। न्यायाधीशने एक घायलको अस्पताल पहुँचानेके कारण देरीसे आ पाये हैं तो उन्होंने कहा-इस बातकी अदालतमें चर्चा कहा—'राजकुमार! मैं न्यायके आसनपर बैठकर अन्याय कदापि नहीं कर सकता। राजा होनेके नाते इसकी सजा करनेकी जरूरत नहीं है। मैंने अपने मानव-धर्म (कर्तव्य)-अब आपके पिता ही माफ कर सकते हैं।' राजकुमारने का पालनमात्र किया है। सभी ऐसी अनूठी कर्तव्यपालनकी आपेसे बाहर होकर न्यायाधीशके प्रति अपशब्दका प्रयोग भावनाको देखकर हतप्रभ रह गये। कर दिया। न्यायाधीशने कहा—'राजकुमार, आपने अदालतका जजने अपनेको सजा सुनायी अपमान किया है। मैं आपको कारावासका दण्ड देता हूँ।' अमेरिकाके क्लोनर राज्यके जज श्री पी०डब्ल्यू० स्मिथ सम्राट् हेनरीतक यह बात पहुँची। रानीके द्वारा कोई गलत कार्य न होने पाये इसका विशेष ध्यान रखते बेटेके पक्षमें अनुरोध करनेपर राजाने उन्हें समझाया, थे। वे कहा करते थे कि सच्चा न्यायाधीश वही है, जो 'कानून सबके लिये बराबर होना चाहिये। राजकुमारने स्वयं कानूनका पूरी तरह पालन करनेको तत्पर रहता है।

### न्यायाधीशपर गर्व करता हूँ।' अमेरिकी जजकी करुणा-भावना

अदालतपर दबाव डालकर तथा न्यायाधीशको धमकाकर

जेल जानेका काम किया है। मैं ऐसे निर्भीक, निष्पक्ष

अमेरिकाके न्यायाधीश राल्फ कोहिन परम धार्मिक तथा कर्तव्यपरायण थे। वे प्रतिदिन न्यायालय जानेसे पूर्व प्रार्थना करते थे कि किसी भी मुकदमेमें मेरी कलमसे

न्यायकी अवहेलनाका आदेश न लिखा जाय। मैं अपने कर्तव्यका पूरी तरह पालन करता रहूँ। वे अपने मित्रोंसे कहा करते थे कि मैं न्यायको साक्षात् परमात्मा तथा

न्यायालयको चर्च मानता हूँ। एक दिन न्यायालयमें विशेष सुनवाई करनी थी। वे

घरसे न्यायालयकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें किसीकी कारकी चपेटमें आये एक व्यक्तिको उन्होंने घायल अवस्थामें छटपटाते देखा, तुरन्त उन्होंने कार रोकी और उसे उसमें लिटाया तथा

अस्पतालमें दाखिल करा दिया। न्यायालयके कमरेमें पहुँचे तो देखा कि कमरा खचाखच भरा हुआ है, दोनों पक्षोंके

सलाम किया। खड़े होकर उपस्थित जनोंको सम्बोधित

वकील कुर्सियोंपर बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

न्यायाधीश राल्फ कोहिनने नियमानुसार कुर्सीको

तरह अपने लिये १५ दिन कैदकी सजा सुना दी। वे जेल जानेके लिये तैयार हो गये। मुख्य

न्यायाधीशको इस अनूठे निर्णयका पता लगा तो वे

एक दिन जज कारसे कहीं जा रहे थे। अचानक

श्रीस्मिथ पूरे दिन युवकके घायल होनेसे चिन्तित

जल्दबाजीमें सडक पार करता युवक उनकी कारके

सामने आ गया तथा घायल हो गया। उसे पुलिसने

रहे। रातभर सो नहीं पाये, उन्हें लगा कि वे कारको

नियन्त्रित नहीं कर पाये, अतः वे भी दोषी हैं। दूसरे

दिन अदालत पहुँचते ही उन्होंने अपने विरुद्ध मुकदमा दर्ज कराया। जज साहबने पिछले सप्ताह ही एक

दुर्घटनाके आरोपी युवकको पन्द्रह दिनकी कैद अथवा

१५ डालर जुर्मानेकी सजा सुनायी थी। उन्होंने उसीकी

अस्पतालमें दाखिल करा दिया।

तुरन्त न्यायालय पहुँचे। उन्होंने इस अनूठे निर्णयके लिये जज स्मिथको पीठ थपथपायी तथा कैदको जगह पन्द्रह

डालर जुर्मानेके रूपमें अपने पाससे जमा कर दिये। अमेरिकी राष्ट्रपतिको जब इसका पता चला तो उन्होंने भी इस अनुठे न्यायप्रिय जजको सन्देश भेजकर

मुक्तकण्ठसे उनकी सराहना की।

भीख, भिक्षा और दान (प्रो० श्रीइन्द्रवदन बी० रावल) भीख, भिक्षा और दान-ये तीनों एक ही परिवारके भिखमंगोंको कोसना मत। वे भीख नहीं माँगते, घर-हैं। तीनोंमें देने और लेनेकी प्रक्रिया समान है। तीनों घर जाकर लोगोंको बोध देते हैं कि पूर्वजन्ममें दान न धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक महत्त्व रखते हैं। इनमें करनेसे हमें इस जन्ममें भिक्षुक बनना पड़ा है। हम-जैसी देनेवाला पुण्य एवं प्रसन्नता प्राप्त करता है तो लेनेवाला दशासे बचना हो तो यहींपर कुछ दीजिये, दीजिये।

अात्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

घर आये भूखोंको खाली हाथ लौटानेवाला घर 'घर'

आवश्यकताकी पूर्तिके कारण प्रसन्न होता है। यहाँ देनेवालेको दाता या दानी कहते हैं, जबकि लेने या माँगनेवाले जो स्वीकर्ता हैं, उनकी पहचान भिन्न-भिन्न नामोंसे होती है।

भीख माँगनेवाला भिखारी, भिखमंगा या भिक्षुक कहलाता है। वह निर्धन है, जीविकाका साधन जुटानेमें प्राय: असमर्थ। ज्यादातर भिखमंगे भूख मिटानेके लिये

भीख माँगते दीखते हैं। उनके प्रति दयासे प्रेरित लोग अन्न देते हैं—'अन्नदानं महादानम्।' महाभारतकी कथा सुनहरा नेवलामें अन्नदानका भव्य महिमागान है। कड़ी भूखके बावजूद अतिथिको अन्न देकर स्वयं भूखों रहनेवाले दानी ब्राह्मणके आँगनकी धूलिसे नेवलेका आधा शरीर स्वर्णमय

हो गया, मगर शेष शरीर युधिष्ठिरकी यज्ञधूलिसे भी स्वर्णमय नहीं हो पाया। कबीर कहते हैं - कर साहिबकी बन्दगी और भूखे

को दो अन्त। कुछ लोग तो भूखेको अन्त देना ही साहिबकी बन्दगी समझते हैं और मन्दिर आदि बनवानेके बजाय अन्नक्षेत्र खोलते-चलाते हैं। भारतके सिवा किसी

अन्य देशमें इतने अन्नक्षेत्र नहीं हैं। कहीं-कहीं तो आज ऐसे अन्नक्षेत्र चलते हैं; जो विकलांग, अशक्त, अनजानोंको उनकी जगह जाकर भोजन देते हैं। भारतीय संस्कृतिकी यह महती विशेषता है।

किसीने भिक्षुकोंकी युक्तिपूर्ण वकालत की है-

बोधयन्ति न याचन्ते भिक्षासारा गृहे गृहे।

दीयतां दीयतां किञ्चिददातुः फलमीदृशम्॥

हिन्दीके प्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' बडी रकमका पुरस्कार लिये ताँगेमें घर जा रहे थे। तभी पीछेसे 'बेटा! कुछ दे दें' की पुकार करनेवाली भिखारिनको पूरी पुरस्कारराशि दे बैठे थे। आखिर निराला जो थे।

नहीं है—'न तद् ओक: अस्ति' (ऋग्वेद)। ऐसे मनुष्य— भूखेको अतिथि मानकर अन्न देना मनुष्ययज्ञ है—पंच

महायज्ञोंमेंसे एक। अतः यह गृहस्थका कर्तव्य भी है, उसकी शोभा भी है। सुभाषितकारने बड़ी गम्भीर बात कही है-अतिथिर्यस्य भग्नाशः गृहात् प्रतिनिवर्तते।

स तस्य पुण्यमादाय पापमादाय गच्छति॥ घरसे निराश लौटनेवाला अतिथि उस घरका पुण्य ले जाता है और अपना पाप वहाँ छोड़ जाता है। सामाजिक दृष्टिसे भीख माँगना तुच्छ तथा स्वमानघाती है। कवि रहीम याचक एवं दाता दोनोंके लिये कहते हैं— रहिमन वे नर मर चुके जो किहं माँगन जाहिं। उन ते

पहले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं॥ अगर मॉॅंगना ही पड़े तो खूब देनेवाले, पर अधमजनकी अपेक्षा गुणीजनसे माँगना बेहतर है, चाहे वह न भी दे। मेघदूतमें कालिदासने 'याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा' कहकर इसी भावको उजागर किया है। इस सन्दर्भमें चातक एक आदर्श उदाहरण है। उसकी प्रशस्तिमें

कवि कहता है—

एक एव खगमणिश्चिरं जीवत् चातकः। पिपासया वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम्॥ चातक प्याससे मर जाय मगर पुरन्दर-इन्द्रके सिवा

किसी औरसे मॉॅंगना उसे मंजूर नहीं। भीखका अति सुलभ होना माँगनेवालेमें निरुद्यम और आलस्य पैदा करता है और कई अनिष्टोंको जन्म देता है।

**Г जीवनचर्या**−

यही कारण है कि विश्वमें कई सरकारोंने भीख माँगना प्रतिबन्धित किया है। भिक्षा—भिक्षाको परम्परा बहुत पुरानी है। एक

\* भीख, भिक्षा और दान \* अङ्क ] आश्चर्य है कि ऋग्वेदके १०वें मण्डलमें ११७वें सुक्तके प्रशस्ति मुग्धकारी विस्मय ही है। **केवलाघो भवति** केवलादी (बिना बाँटे, अकेले खा लेनेवाला मनुष्य पापी ऋषि भिक्षु आंगिरस हैं और सूक्तका एक नाम भिक्षुसूक्त है) सुक्तकी इस कहावतरूप पंक्तिको मनुस्मृति तथा गीताने भी है। 'अघं स केवलं भुङ्के यः पचत्यात्मकारणात्' कहकर भिक्षा माँगनेवाले प्राय: ब्रह्मचारी, संन्यासी, भिक्षु, प्रतिध्वनित किया है। दान दैवी सम्पत्तिका अंश है, जिसे जोगी आदि होते हैं। भीखमें क्षुद्रता है, भिक्षामें आदरभाव। प्राचीन भारतमें तपोवन या गुरुकुलकी तेजस्वी संस्कृति गीता मोक्षप्राप्तिका साधन कहती है। गीतामें दानका पनपी थी। उसके मूलमें गुरु-शिष्यकी परम्परा थी। गुणत्रय-आधारित विभाजन दानके विषयमें मनोवैज्ञानिकताको विद्यादान करनेवाले गुरु गृहस्थ भी होते थे, नहीं भी होते प्रकट करता है-थे। शिष्य-ब्रह्मचारी\* गृहस्थोंके घरसे भिक्षा माँगता था और दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। गृहस्थ भिक्षान्न देकर अपनेको धन्य समझता था। संन्यासी, देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ भिक्षु या जोगी भी भिक्षान्नभोजी थे। वे धर्मप्रचारार्थ घूमते (१७।२०) रहते थे। भगवान् बुद्धने भिक्षुसंघ रचा था और 'चरथ दान देना कर्तव्य है, ऐसा समझकर जो दान योग्य भिक्खवें ' चरथ-' घूमते रहो' का उपदेश दिया था। स्थान तथा योग्य समयपर सुपात्रको दिया जाय और जो उपकारके बदलेमें न हो, वह दान सात्त्विक या श्रेष्ठ दान उसके फलस्वरूप कई देश आज भी बौद्धधर्मावलम्बी हैं। राजमहलके द्वारपर खडे बुद्धको भिक्षा दे रहे है। यशोधरा-राहुलका चित्र तथा राजसंन्यासी भर्तृहरिकी 'भिक्षा यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः। दे दे मैया पिंगला जोगी खडा है द्वार 'की ध्वनि मनको दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥ पवित्रतासे भर देती है। आदि शंकराचार्यने वादजयी पं० (१७।२१) मण्डनिमश्रको शास्त्रार्थके लिये राजी करनेके हेत् उनसे परंतु जो दान किसीके उपकारका बदला चुकानेके वादिभक्षाके नामसे भिक्षा माँगी थी। शंकराचार्य ब्रह्मचारीसे रूपमें हो या कुछ लाभकी कामनासे हो तथा मनकी सीधे ही संन्यासी बने थे। वे मृत्युपर्यन्त भिक्षाजीवी रहे। प्रसन्नताके बजाय विषादपूर्वक दिया जाता हो, वह दान सनातनधर्मकी विजयपताका फहराते हुए वे देशके कोने-राजस है। कोनेमें घूमे। उस दौरान उनको भिक्षा देनेवाली आबालवृद्ध अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते। नारीमें माता अन्नपूर्णाके विराट् स्वरूपके दर्शन हुए। उन्होंने असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ कृतज्ञभावसे गाया—भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी (१७।२२) मातान्नपूर्णेश्वरी। उनके सुरमें जनगणका सुर मिले तो जो दान बिना सत्कार किये, तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य नारीके साथ अविनय (दुर्व्यवहार)-की कोई समस्या नहीं स्थान तथा समयमें, वह भी कुपात्रको दिया जाय, वह रह सकती। तामस दान कहलाता है। दान—भीख या भिक्षाके रूपमें भी दान ही किया तैत्तिरीय उपनिषद् कहती है-श्रद्धया देयम्। जाता है। दानकी महिमा अपार है। अत: सब धर्मोंमें श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। दानका उपदेश है। **धर्मो धारयते प्रजाः**—धर्मका काम अर्थात् दान श्रद्धापूर्वक, वैभवके अनुसार, विनयपूर्वक, शास्त्रोंकी आज्ञाका डर रखते हुए, देश-काल-पात्रकी परख प्रजाका धारण-पोषण करना है, जिसमें दानका बड़ा योगदान है। ऊपरके सन्दर्भवाला ऋग्वेदका सूक्त दानस्तुतिका करके देना चाहिये। उत्तम उदाहरण है। दानकी इतनी वैविध्यपूर्ण एवं काव्यात्मक उपर्युक्त वचनोंको मिलाकर देखें तो उत्तम योग्यताके \* वेदमें विद्यार्थीके लिये शिष्य शब्द नहीं, ब्रह्मचारी शब्द है और उपनिषद्में अन्तेवासी। देखिये—अथर्ववेदका ब्रह्मचर्यसूक्त एवं तैत्तिरीय उपनिषद्।

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* बिना उत्तम दाता बनना या उत्तम दान कर पाना टेढ़ी खीर होता है। वह वरदान साबित होता है यदि नारीके साथ है। दाता, देय वस्तु एवं स्वीकर्ताको लेकर कुछ उदाहरण छेड़खानी, बलात्कार, दहेजमृत्यु जैसे अपराध न हों। याद करें; जो स्मरणीय, स्पृहणीय एवं प्रेरक हैं। कुछ महिला संगठन कहते हैं, क्या कन्या कोई चीज है, जिसका दान किया जा सके। कन्यादान शब्दप्रयोग 'मुझे केवल एक सौ नचिकेता दे दो, मनुष्यजातिका भविष्य बदल दूँगा'—स्वामी विवेकानन्दको नारीका अपमान है। यूँ आकृष्ट करनेवाले नचिकेता कठोपनिषद्के उपहार दानप्रक्रियामें देय या दीयमान वस्तुका महत्त्व भी हैं। गोदानप्रेमी पिता वाजश्रवाके आसक्तियुक्त गोदानकी कम नहीं है। शंकराचार्यने 'योऽर्थशृचिः स शृचिः' कहा आलोचना करनेवाला नचिकेता अपनी ज्ञानिपपासा तथा है। अर्थोपार्जनमें शुचिता मनुष्यकी सच्ची शुचिता है। तत्परताके बलपर यमदेवताको प्रसन्न कर देता है। यम धार्मिक समारम्भ, समाजसेवा आदिके नामपर प्रयुक्त हो उन्हें वरदानके रूपमें मृत्युका रहस्य तथा वैश्वानरविद्या रहा धन काला है या सफेद, नैतिक रीतिसे अर्जित किया या ब्रह्मविद्याका ज्ञान देते हैं। गया है या अनैतिक रीतिसे—इसकी परवाह प्राय: कम रघुवंशमें वर्णित रघु-कौत्स-प्रसंग दानभावनाकी दृष्टिसे होती है; क्योंकि धन रामबाण-सा है। आज हालात इतने अद्भृत है। राजा रघु यज्ञमें सर्वस्व दान करके अकिंचन गिरे हुए हैं कि धनसे सब कुछ खरीदा जा सकता है। काले हो गये थे तो भी उनकी दाननिष्ठाके प्रतापसे, गुरुदक्षिणार्थ धनके दानसे भी नाम कमानेका मोह मनुष्यको नहीं ब्रह्मचारी कौत्सपर स्वर्णमुद्राओंकी वर्षा हुई, मगर आचार्य छोडता। ज्यादातर दान कीर्तिदान होते हैं। इस बदलती वरतन्तुके इस सुयोग्य शिष्यने आवश्यकतासे अधिक एक दुनियामें नामकी क्या गति? भी मुद्राको छुआतक नहीं। कहाँ आजका धनलोलुप कुछ लोग गुप्तदान करते हैं। बाइबिल कहती परिग्रहप्रेमी जनमानस और कहाँ दाता-स्वीकर्ताका वह है—दायाँ हाथ दान करे, बायें हाथको पता नहीं लगना चाहिये। मगर इसमें भी लोग काले धनके दानसे पुण्य आदर्श। दानवीरके रूपमें कर्णका सानी नहीं। 'देवायत्तं कमानेका मिथ्या सन्तोष लेते हैं। अतीव उपकारक कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्' की वीरघोषणा करनेवाला साध्यके लिये भी अशुद्ध साधनका गांधीजीने हर हालमें कर्ण जन्मजात कवचकुण्डलके कारण अजेय था। सूर्योपस्थानके विरोध किया है। समय मुँहमाँगा दान देनेकी उसकी प्रतिज्ञा। उसकी आडमें संन्यासी बने भर्तृहरिको किसीने गाली प्रदान की। इन्द्रने छद्मवेषी ब्राह्मण बनकर कवचकुण्डल माँग लिये। भर्तृहरिने मार्मिक उत्तर दिया—ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो महाभारतयुद्धमें अर्जुनको जितानेकी इस कुटिल चालको भवन्तः । वयमपि तदभावात् गालिदानेऽसमर्थाः ॥ आपके ताड़नेपर भी कर्णने प्राणपणसे अपनी प्रतिज्ञा निभायी। वह पास गालियोंका खजाना है, दीजिये। हमारे पास तो एक सूर्यपुत्र यदि शकुनि या दुर्योधनके समान कूटनीतिज्ञ होता भी नहीं, फिर क्या गाली देंगे। तो… तो वह कर्ण ही न होता। दानकी एक अजीब दास्तान कवि माघकी है। जितने 'ऐसी सुन्दर स्त्री मेरी माँ होती तो मैं कितना सुन्दर बड़े कवि, उतने ही बड़े दानी। एक दिन राजसभामें प्राप्त होता।' युद्धमें जीती गयी सुन्दरीके प्रति उच्चारित ये पारितोषिककी पूरी राशि रास्तेमें ही याचकोंमें बाँट दी। आदरभरे शब्द छत्रपति शिवाजीके हैं, जो शासकके खाली हाथ पहुँचे तो घरके द्वारपर भी याचक! बड़ी चारित्र्यका आदर्श प्रस्तुत करता है। याद रहे, गुरु उलझन, बड़ा धर्मसंकट। सोचने लगे—धन है नहीं, रामदासको अपना राज्य दान कर देनेपर शिवाजी स्वामी दानके बिना चैन नहीं, दानार्थ किसीसे माँगना क्षुद्रता है, खुदकुशी कर लूँ—मगर वह तो पाप है! तो ऐ मेरे प्राण! रामदासकी धरोहर समझकर ही राज्यका शासन सँभालते थे। फिर दु:शासन कैसे हो सके? इस विवशतामें आप स्वयं मुझे छोड़ चलिये। हृदयको एक दान कन्यादान है, जो बड़ी धूम-धामसे छुनेवाला श्लोक है-

\* जीवनचर्या, प्रकृति और पर्यावरण \* अङ्क ] भुदानके साथ-साथ सम्पत्तिदान यज्ञ भी चला, जिसके अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा त्यागान्न सङ्कुचित दुर्लिलतं मनो मे। जरिये भूमि जोतनेके साधन आदि भी जुटवाये गये— याच्जा च लाघवकरी स्ववधे च पापं दानं भोगो नाशः तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।

प्राणाः स्वयं वजत किं प्रविलम्बितेन॥

शंकराचार्यने 'दानं संविभागः' कहा है। सम्पत्तिका

सम्यक् विभाजन ही दान है। विनोबाजीने भूदान आन्दोलनद्वारा

इस आर्थिक-सामाजिक और मनोवैज्ञानिक (Eco-Socio Philosophical) उक्तिको चरितार्थ कर दिखाया है।

जरूरतसे काफी ज्यादा भूमि रखनेवालोंसे अतिरिक्त भूमि दानमें माँगकर गरीब अकिंचनोंमें बाँटी गयी। लाखों एकड

भूमिका ऐसा आदान-प्रदान विश्वभरमें अनुठा है। इससे

एक समाजवादी क्रान्ति हो गयी। रशियन क्रान्तिमें कई धनी जमींदारोंकी हत्याएँ हुई थीं। यहाँ ऐसा नहीं हुआ;

क्योंकि विनोबाने भूदानको यज्ञका गौरव दिया। दानका यज्ञसे आत्मीय सम्बन्ध है। यज्ञ शब्द यज् धातुसे बना है, जिसमें देवपूजन, संगतीकरण, दान—तीनों अर्थ समन्वित

क्या फायदा ऐसे धनसे? नीतिशतककी इस चेतावनीका सर्वाधिक उच्चारण विनोबाने दानकी अपीलके दौरान किया

है। समाजमें फैली घोर विषमताको कम करनेका धर्मपूत

यो न ददाति न भुङ्के तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

धनका नाश होता है, वह डेड मनी बनकर पडा रहता है,

अर्थात् धनका उपभोग या दान, कुछ नहीं करनेसे

808

उपाय दान है—यह बात प्रयोगसिद्ध बनी। दानके हिमालयका एवरेस्ट आत्मबलिदान है। ऋषि दधीचि, गृधराज जटायु तथा इस युगके भगतसिंह आदि स्वातन्त्र्य वीरों एवं अब्दुल हमीद-जैसे हमारे फौजी

जवानोंने देशके लिये अपना जीवन और प्राण दान कर दिया। समाजको इनसे प्रेरणा लेकर भारतमाता और उसके

इन वीरसपूतोंका ऋण अदा करना है। हैं। इसीलिये तो श्रुतिने 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' कहा है। चलें, इस दानरूप हिमालयकी पवित्र यात्रा शुरू करें।

\* जन्मदिन कब और कैसे मनायें ?\* जन्मदिन कब और कैसे मनायें ? ( आचार्य पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, धर्मशास्त्राचार्य, एम०ए० ( संस्कृत, हिन्दी ), एम०कॉम०, एम०एड०, ज्योतिर्भूषण, कर्मकाण्डकोविद) आजकल जन्मदिन मनानेका प्रचलन सर्वत्र दिखायी चन्द्रमा निषिद्ध है। हस्त, मूल, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, दे रहा है। भारतीय धर्मशास्त्रमें प्राचीनकालसे ही इसका उत्तरात्रय, धनिष्ठा, रेवती, पुनर्वसु एवं पुष्य नक्षत्र श्रेष्ठ हैं।

विस्तृत उल्लेख है। धर्मशास्त्रमें इसे वर्धापनसंस्कार, शकुनि, विष्टि करण त्याज्य हैं। शुभानां वारवर्गाश्च राशयश्च धनुर्विना।

बाँधें।

अब्दपूर्तिकृत्य, वर्षवृद्धिकर्म, आयुष्यवृद्धिकर्म कहा गया है। आजकल इसे वर्षगाँठ, सालगिरह, जन्मदिवस, बर्थ-डेके नामसे मनाया जाता है।

कब मनायें — आजकल तो प्राय: अंग्रेजी दिनांकसे जन्मदिन मनाया जा रहा है। धर्मशास्त्रमें कहा गया है कि

सौर वर्षके अन्तमें जब जन्मनक्षत्र हो तो उस दिन मनाये।

अर्थात् जैसे किसीका सूर्य जन्मसमयमें मकरराशिका हो तो चालू वर्षमें जब सूर्यके मकरराशिमें रहते जन्मनक्षत्र आये

तब जन्मदिन मनाये। कदाचित् यदि सूर्यके मकरराशिमें रहते दो बार जन्मनक्षत्र आये तो पहलेमें मनाये। यदि प्रथम

जन्मनक्षत्र खण्डित हो, अशुद्ध समय हो तो दूसरे

जन्मनक्षत्रको ग्रहण करे। यदि जन्मनक्षत्र दो दिन लगातार हो तो सूर्योदय एवं प्रात:कालव्यापी जन्मनक्षत्र अधिक श्रेष्ठ है।

यस्मिन् दिने सवितरि तन्नक्षत्रदिनं भवेत्। प्रत्यब्दान्ते च नक्षत्रे विधिं वक्ष्ये नृणां परम्॥

येनायुर्वर्द्धते नित्यं बलं तेजः सुखं सदा। (वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाशमें गर्गका वचन)

एकमासे द्विजन्मर्क्षे प्रथमे जन्म चाचरेत्। तस्मिनक्षत्रखण्डे त् अन्त्यखण्डे समाचरेत्॥

उदयव्यापिजन्मर्क्षे तस्माद् ग्राह्यं तु जन्मनः।

सङ्गावव्यापिखण्डक्षे तत्र जन्म वरं शुभम्॥

(वृद्धगार्ग्य) यदि किसीको जन्मदिन याद न हो या अतिक्रमण हो जाय तो शुभ तिथि, वार, नक्षत्र देखकर, धनुराशिके

प्रचलन चन्द्रमासानुसार है। जन्मोत्सवमें रिक्ता तिथि, पर्व,

अष्टमी, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अमावास्या तथा धनुराशिका

चन्द्रका त्यागकर जन्मदिवस मना सकते हैं। इसके अलावा जन्मतिथि (भारतीय मासोंके अनुसार)-को भी मनानेका श्रेष्ठा नेष्टास्तथा शेषा मकरो मध्यमो भवेत्॥

(संस्कारप्रकाश)

ज्योतिषमें जन्मकालीन सूर्यराशि अंशोंके आधारपर गत वर्षोंको जोडते हुए वर्षफल निकालकर वर्षभरका

फलित भी बताया जाता है। अत: ज्योतिषशास्त्रीय गणनानुसार शोधित दिवस भी जन्मदिवस मनानेहेतु उचित है। जन्मदिवस कैसे मनायें? — जन्मदिवसकी पूर्व रात्रिमें पत्तोंकी बन्दनवार बाँधकर शान्तिमन्त्रसिक्त जलसे अभिषेक

करें, शुद्ध खाद्य-पेय पदार्थका प्राशन करायें। प्रात:काल मंगलस्नानकर या समीपस्थ नदी-तीर्थादिके जलसे स्नानकर नूतन वस्त्र धारण करें। सुवर्णसूत्र भी गृहव्यवस्थानुसार

स्वयं वर्धापन, अब्दपूर्ति-संस्कारका संकल्प करें-ॐ मम कुमारस्य दीर्घायुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विध-पुरुषार्थिसिद्धिद्वारा श्रीमार्कण्डेयदेवतामृत्युञ्जयदेवताप्रीत्यर्थं

धारण करें। रक्षोघ्नसूक्तसे अभिमन्त्रित करके कटिसूत्र

यदि बालक हो तो माता-पिता एवं युवा, प्रौढ़ हो तो

वर्धापनसंस्कारमें गणपति, गौरी, ग्रहशान्तिके साथ

पितृपूजन, मार्कण्डेयपूजन, चिरंजीवीपूजन, महामृत्युंजयपूजन

तथा हवन, महाषष्ठीदेवीपूजन, नक्षत्र तथा नक्षत्रेशपूजन, अनिष्ट ग्रहजन्यशान्ति, संवत्सर, मास, पक्ष, तिथि, राशि आदिका पूजन, कुलदेवता, क्षेत्रपाल आदिका पूजन मुख्य है।

ग्रहशान्तिरक्षाविधानपूर्वकवर्धापनाख्यं कर्म करिष्ये।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषण:। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयं तथाष्टमम्। वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥ जीवेद्

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− प्रह्लादजीसहित इनका स्मरण करें। मध्याहनमें मधु, स्वाहा, मृत्युर्नश्यतु आयुर्वर्धतां भूभुवः स्वः स्वाहा। घी, दही मिलाकर दूर्वासे एक हजार बार या अट्टाईस बार (वीरमित्रोदय) मृत्युंजय मन्त्रसे हवनकर आयुष्यहोम करके श्रोत्रिय विप्रको ब्राह्मणोंसे यथासम्भव वेदोक्त पुण्याहवाचन करवायें, भोजन करवाना चाहिये। इसका विशिष्ट फल है। फिर मार्कण्डेयजीको निवेदित मार्कण्डेयस्तृति—मार्कण्डेयजीको श्वेत तिलमिश्रित तिलगुड़मिश्रित दूध पाँच बार निम्न मन्त्रसे पीयें। गुड़-दूध अर्पित करें तथा निम्न स्तुति करें— मन्त्र— द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धं चिरजीविनम्। गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः। सतिलं मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत् प्रयतः सदा॥ मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायु:प्रवृद्धये॥ जन्मदिवसको क्षौरकर्म, स्त्रीसंग, नखच्छेदन, हिंसा, आयुष्प्रद महाभाग सोमवंशसमुद्भव। महातपो मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते॥ कलह, यात्रा, मांसाहार, गर्मजलसे स्नान निषेध है-खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च। मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन। आयुरारोग्यसिध्यर्थमस्माकं वरदो आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत्॥ वर्षवृद्धि-संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चारों चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने। रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा॥ वर्णोंके लिये प्रशस्त है। छोटे बालकोंके कटिसूत्र, स्वर्णकरधनी या कमरमें नया धागा बाँधना चाहिये। पुरुषोंको भी मार्कण्डेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पान्तजीवन। आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने॥ कटिसूत्र बदलना चाहिये। चिरजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवरद्विज। सर्वेश्च जन्मदिवसे स्नाने मङ्गलपाणिभिः। कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम्॥ गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ षष्ठीदेवी-पूजनमन्त्र—षष्ठीदेवीको दही, भात अर्पित सायंकाल छायापात्र दान करें एवं बड़ों, बुजुर्गीं, करें तथा निम्न प्रार्थना करें-गुरु, माता-पिता, वृद्धजनों, विप्रोंका आशीर्वाद लेकर देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि। देवदर्शन करें। प्रसीद मम कल्याणि महाषष्ठि नमोऽस्तु ते॥ अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:। रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे॥ यदि हो सके तो जन्मदिवसपर वर्षानुसार दीपक प्रज्वलित करें। ६०वें जन्मदिनपर षष्ठीपूर्ति, ७०वें जन्मदिनपर रक्षामन्त्र— त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। सहस्रचन्द्रदर्शन आदि विशेष संस्कार करें। भारतीय संस्कृतिके ब्रह्मविष्णुशिवै: सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥ अनुसार ही जन्मदिवस मनायें एवं जन्मनक्षत्रको महत्त्व दें, भूलकर भी मोमबत्ती न बुझायें। यदि कदाचित् न कि जन्मतारीखको। दीप बुझायें नहीं, अपितु दीप जन्मदिवसके समय बालक, युवक या प्रौढ व्यक्ति रुग्ण जलाकर अपने जीवनको प्रकाशित करें। हो तो अपमृत्युनाशहेतु मृत्युंजयमन्त्रसे हवनमें अग्रलिखित भारतीय संस्कृतिमें दीपज्योतिकी पूजाका महत्त्व है, विशेष आहुति देनी चाहिये-यह दीपकरूपी मोमबत्ती बुझाकर अखाद्य पदार्थींसे बना मृत्युर्नश्यत् आयुर्वर्धतां भूः स्वाहा, मृत्युर्नश्यत् केक काटना शास्त्रसम्मत नहीं है। दीपनिर्वापण तथा आयुर्वर्धतां भुवः स्वाहा, मृत्युर्नश्यतु आयुर्वर्धतां स्वः उसकी गन्ध ग्रहण करना आयुष्यनाशक माना गया है।

### नित्य स्नान—शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दृष्टिमें

( पं० श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए० )

सृष्टिका निर्माण स्वयं सर्वशक्तिमान् नारायणने मायाके उत्तमं तु नदीस्नानं तडागं मध्यमं तथा। द्वारा किया है; अत: मायामय जगत्की नश्वर एवं अपवित्र कनिष्ठं कृपस्नानं भाण्डस्नानं वृथा वृथा॥ वस्तुका संसर्ग शरीर अथवा शरीरके किसी तत्त्वसे हो जाय स्नानसे पूर्व संकल्प तथा किसी नदी आदिपर तो उसे अपवित्र माना जाता है, जिसकी शुद्धिहेतु सामान्य स्नानके समय स्नानांग-तर्पण करनेका भी विधान है-विधान स्नान ही है। स्नानसे मात्र शुद्धि ही नहीं, अपितु 'स्नानाङ्गतर्पणं विद्वान् कदाचिन्नैव हापयेत्।' जल सृष्टिका प्रथम तत्त्व है और जलमें सभी रूप, तेज, शौर्य आदिकी भी वृद्धि होती है-देवताओंका भी निवास है—'अपां मध्ये स्थिता देवा गुणा दश स्नानकृतो हि पुंसो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्। आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशं च तपश्च मेधा॥ सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्' तथापि स्नानसे पूर्व जलमें जलाधिपति (विश्वा० स्मृ० १।८६) वरुण, गंगा-यमुना आदि नदियोंका आवाहन कर लेना उपर्युक्त श्लोकसे स्पष्ट है कि स्नान हमारे लिये न चाहिये। गंगाजीके नन्दिनी-निलनी आदि नामोंका \* स्मरणकर केवल आध्यात्मिकताकी दृष्टिसे ही आवश्यक है, अपितु स्नान करनेपर उस जलमें स्वयं गंगाजीका ही वास होता यह शरीरकी बहुत बड़ी आवश्यकता भी है। नवजात बालक है, ऐसा स्वयं भगवती गंगाजीका कथन है-हो अथवा वृद्ध व्यक्ति बिना स्नानके रोगोंका संक्रमण ही द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये॥ बढ़ेगा। अत: स्नान हमारी शारीरिक एवं आध्यात्मिक दोनों स्नानोद्यतः पठेज्ञात् तत्र तत्र वसाम्यहम्। ही आवश्यकता है; जिसे लगभग सभी व्यक्ति करते भी हैं, स्नान ताजे जलसे ही करे, गरम जलसे नहीं। यदि किंतु इसके बारेमें कुछ शास्त्रीय नियम भी हैं, जिन्हें अधिकांश गरम जलसे स्नानकी आदत हो तो भी श्राद्धके दिन. अपने व्यक्ति (बिना जानकारीके कारण) उपेक्षित कर देते हैं; अत: जन्म-दिन, संक्रान्ति, ग्रहण आदि पर्वीं, किसी अपवित्रसे

शरीरको शुद्ध करना है, अतः स्नान भी शुद्ध जल एवं शुद्ध पात्रमें रखे जलसे ही करना चाहिये। '**शुद्धोदकेन स्नात्वा** 

स्नान करनेमें सर्वप्रथम ध्यान देनेकी बात है कि स्नानसे

पात्रमें रखे जलसे ही करना चाहिये। 'शुद्धोदकेन स्नात्वा नित्यकर्म समारभेत्' आदि शास्त्रीय वाक्य स्पष्ट ही हैं।

गंगादि पुण्यतोया नदियोंमें स्नान करना उत्तम माना गया है,

स्नानके कुछ नियमोंको यहाँ रेखांकित किया जाता है-

स्पर्श होनेपर तथा मृतकके सम्बन्धमें किया जानेवाला स्नान

गरम जलसे न करे। चिकित्सा विज्ञान भी गरम जलसे

स्नानको त्वचा एवं रक्तके लिये उचित नहीं मानता। तेल-

मालिश स्नानसे पूर्व ही करनी चाहिये; स्नानोपरान्त नहीं।

इसके पश्चात् कटि (कमर) धोना चाहिये। यहाँ यह ध्यान

स्नान करनेसे पूर्व हाथ-पैर-मुँह धोना चाहिये तथा

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* नहीं? कहींसे सूखा न रह जाय, तत्पश्चात् सिरको नहीं, अपितु इस कार्यको अपवित्रतादायक माना गया है। गीलाकर स्नान करे—'आदौ पादौ कटिं तथा'। हाँ! इस वस्त्रको पुन: जलसे धोकर शरीर पोंछ सकते हैं। बिना वस्त्रके (निर्वस्त्र-अवस्थामें) स्नान न करे। तीर्थ-स्नानके बारेमें विशेष—किसी भी (गंगा-

स्नान करते समय पालथी लगाकर बैठे या खडे होकर स्नान करे, प्रौष्ठपाद (पाँव मोड़कर उकड़) बैठकर

832

नहीं— स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनं।

प्रौढ़पादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥ स्नान घबडाहट या जल्दबाजीमें नहीं करना चाहिये।

भोजनके बाद और रुग्णावस्था तथा अधिक रातमें स्नान नहीं करना चाहिये— 'न स्नानमाचरेत् भुक्तवा नातुरो न महानिशि।'

यह बात आयुर्वेद एवं वर्तमान चिकित्सासे भी सम्मत है।

स्नानके पश्चात् शरीरको तुरंत नहीं पोंछना चाहिये,

एवं धुले हुए वस्त्रका ही प्रयोग करें।

कुछ क्षण रुककर पोंछे; क्योंकि इस समय शरीर (एवं बालों)-से गिरा हुआ जल अतृप्त आत्माओंको तृप्ति

देनेवाला होता है।

स्नानोपरान्त शरीरको पोंछने एवं पहननेके लिये शुद्ध

शरीरपर जो वस्त्र पहना हुआ है, उसीको निचोड़कर

फिर उसीसे शरीरको पोंछनेका शास्त्रोंमें पूर्णत: निषेध ही

एक बार घरमें स्नान करना ज्यादा उचित है; क्योंकि पहला

स्नान नित्यका स्नान तथा दूसरा स्नान ही तीर्थ-स्नान होगा।

अपमान होता है।

ग्रहण आदिको छोड़कर किसी भी नदी आदिके सुनसान

घाटपर अथवा मध्य रात्रिमें स्नान न करे—'न नक्तं

स्नायात्'। तीर्थ-स्नानके पश्चात् शरीरको पोंछना नहीं चाहिये, अपितु वैसे ही सूखने देना चाहिये। पुन:-स्नान-क्षौर (हजामत बनवानेपर), मालिश,

विषय-भोग आदि क्रियाओंके पश्चात्, दु:स्वप्न अथवा

यमुना आदि नदी हो अथवा कुण्ड-सरोवर-आदि

जलाशय) तीर्थपर स्नान अथवा दूसरी कोई भी क्रिया तीर्थकी भावनासे ही करे। अपने मनोरंजन, खेलकृद

या पर्यटनकी भावनासे नहीं। वैसे जल-क्रीडा आदि

घरपर भी नहीं करनी चाहिये। इससे जल-देवताका

किसी तीर्थ, देवनदी आदिपर स्नान करनेसे पूर्व भी

भयंकर संकट-निवृत्तिके पश्चात् एवं अस्पृश्य (रजस्वला-

कृता आदि)-से स्पर्शके पश्चात् स्नान किये हुए व्यक्तिको भी स्नान करना चाहिये। पुत्र-जन्मोत्सव आदि कई

**ाजीवनचर्या**−

अवसरोंपर सचैल (वस्त्र-सहित)-स्नानकी विधि है।

# चरित्र-शिक्षाकी दिशा

बाल्यकाल चरित्र-शिक्षाका समुपयुक्त समय है। बालकका चरित्र-निर्माण बाल्यावस्थासे ही प्रारम्भ हो जाता

है। चरित्रकी नींव माता-पिताकी संस्कृति होती है और उसकी भित्ति-सामग्री सामाजिक परिवेश होता है। माता-

पिताकी संस्कृति जैसी होती है, बालकका चरित्र भी वैसा ही बनता जाता है। दयाशील, सहृदय, सौहार्द-सम्पन्न व्यक्तिका बालक संकोची, विनयी एवं सुशील बनता है, पर क्रूर-कुटिल एवं कठोर-हृदयकी सन्तान दु:शील, निर्दयी

और निर्मोही निकलती है। अत: यह स्पष्टत: कहा जा सकता है कि यदि आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान सुसन्तान बने; सदय, सहृदय और सुसंस्कृत हो तो आप भी वैसे अवदात, अनवद्य गुणोंका आत्मावधान कीजिये। संतानोत्पत्ति

सोद्देश्य होनी चाहिये। हमें भावना करनी चाहिये कि हमारी सन्तान देश-धर्मकी सेवामें तन, मन लगानेवाली और प्रभुभक्त हो। तभी हम चरित्रशील पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्नकर अपना तथा देशका कल्याण और विश्वका मंगल कर सकते हैं। चारित्र्यसे युक्त राम-जैसे पुत्र उत्पन्न करनेवाले देशमें 'रावण' उत्पन्न न हो, इसके लिये उक्त दिशाका पथिक

बनना चाहिये। पर प्रश्न यह होता है कि क्या हम इस दिशामें बढ़ रहे हैं?

### वैदिक वाङ्मयमें समाज, राष्ट्र एवं विश्वके प्रति नागरिकोंके कर्तव्य

( आचार्य डॉ० श्रीपवनकमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी० )

सर्वशक्तिमान् भगवान्ने ब्रह्माजीद्वारा बनाये गये [सृष्टिके] नागरिकोंके कर्तव्य ठीक उसी प्रकार सुनिश्चित किये गये

श्वाससे नि:सृत श्रुतियोंमें<sup>३</sup> निजी जीवनके नियमन एवं स्थान प्रदान किया है तथा नागरिकोंको उसका पुत्र बतलाया उत्कर्षके अतिरिक्त पारिवारिक सौमनस्यता, सामाजिक सद्भाव तथा राष्ट्रोन्नतिसे सम्बन्धित भी अनेक व्यवस्थाएँ दी माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। गयी थीं। विशेषत: इनमें राष्ट्रकी सर्वांगीण अभ्यन्नतिहेत (अथर्व० १२।१।१२)

१. श्रीमद्भागवत और वायुपुराणके साक्ष्यपर भारतको आदिराष्ट्र कहा गया है तथा इसका प्राचीन नाम अजनाभवर्ष कहा है। इसकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि ब्रह्माने भगवानुके नाभिकमलपर विराजमान होकर जिस प्रथम लोकका निर्माण किया, वही अजनाभवर्ष

४. भारतीय संविधानके भाग ४ क अनुच्छेद ५१ (क) के अनुसार मुलकर्तव्य—भारतके प्रत्येक नागरिकका यह कर्तव्य होगा कि वह—

(ङ) भारतके सभी लोगोंमें समरसता और समान भ्रातृत्वकी भावनाका निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्गपर आधारित सभी

(छ) प्राकृतिक पर्यावरणकी; जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्रके प्रति

(ञ) व्यक्तिगत और सामृहिक गतिविधियोंके सभी क्षेत्रोंमें उत्कर्षकी ओर बढ़नेका सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए

(ट) जो माता-पिता या संरक्षक हैं या जैसी भी स्थिति हो, छ: और चौदह वर्षकी आयुके बीचका प्रतिपाल्य है, शिक्षाके लिये व्यवस्था

(ख) स्वतन्त्रताके लिये हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनको प्रेरित करनेवाले उच्चादर्शोंको हृदयमें सँजोये रखे और उनका पालन करे।

कहलाया। इसीलिये मनुने इसे ब्रह्मावर्त कहना संगत समझा-

दयाभाव रखे।

करनेका अवसर दिलायें।

२. चातर्वर्ण्यं मया सष्टं गणकर्मविभागशः। (गीता ४। १३) ३. जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। (रा०च०मा० १।२०४।५)

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ (मनुस्मृति २।१७)

(ग) भारतकी सम्प्रभृता, एकता और अखण्डताकी रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

(घ) देशकी रक्षा करे और आह्वान किये जानेपर राष्ट्रकी सेवा करे।

भेदभावसे परे हो. ऐसी प्रथाओंका त्याग करे जो स्त्रियोंके सम्मानके विरुद्ध हों।

(झ) सार्वजनिक सम्पत्तिको सुरक्षित रखे और हिंसासे दूर रहे।

प्रयत्न और उपलब्धिकी नयी ऊँचाइयोंको छू सके।

(क) संविधानका पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्रगानका आदर करे।

(च) हमारी सामाजिक संस्कृतिकी गौरवशाली परम्पराका महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

(संविधान ४२वाँ संशोधन १९७६ तथा ८६वाँ संशोधन १९९२ द्वारा अन्त: स्थापित) [भारतका संविधान]

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधारकी भावनाका विकास करे।

आदिराष्ट्र<sup>१</sup> भारतवर्षमें गुणकर्मका विभाग करते हुए थे, जिस प्रकार आधुनिक कालमें भारतीय संविधानमें चातुर्वर्ण्यात्मक भारतीय समाजकी सृष्टि की<sup>२</sup> तथा उसकी नागरिकोंके मूल कर्तव्य<sup>४</sup> निर्धारित किये गये हैं। सुव्यवस्थाहेत् श्रुतियोंको प्रतिष्ठापित किया। भगवानुके श्रुतियोंने राष्ट्रकी भूसम्पदाको माताका गौरवपूर्ण

४३६	ने परेषां न समाचरेत्*	[ जीवनचर्या-		
*************************	************************	<u> </u>		
श्रुतियोंका अभिप्राय है कि राष्ट्रके नागरिक देशकी	अंग होते हैं। उत्तम चरित्रवाले सदाचारी	एवं उत्साहसम्पन्न		
भौतिक सम्पदा—वनोपवन, पर्वतादि पर्यावरणका मातृवत्	नागरिकोंसे ही राष्ट्रका अभ्युदय सम्भव	है। अतः श्रुतियोंमें		
पालन, संवर्धन तथा संरक्षण करें। अथर्ववेदके पृथ्वीसूक्तमें	नागरिकोंके वैयक्तिक (चारित्रिक) उत्कर्ष	एवं उत्साहवर्धनहेतु		
मातृभूमि (पृथ्वी)-के आधिभौतिक एवं आधिदैविक दोनों	भी अनेक मन्त्रवाक्य दिये गये हैं। यथा—	हम कल्याणमार्गके		
रूपोंका स्तवन करते हुए नागरिकोंमें भूमाताके प्रति	पथिक हों, हमारी कामनाएँ सच्ची हों तथ	ा हमारा मन उत्तम		
आदरके भाव जाग्रत् करनेवाले अनेक मन्त्र दिये गये हैं।	संकल्पोंवाला हो। हम कर्म करते हुए	तथा दीनतारहित		
इन मन्त्रोंमें कामना की गयी है कि जिस मातृभूमिके अंकमें	होकर सौ वर्षोंतक जीयें। हम कानोंसे			
समुद्र लहराता है, सरिताएँ कलगान करती हैं, खेती होती	वचन सुनें तथा हमारा मन पराये धन	ापर न ललचाये।		
है, भरपूर अन्न उपजता है तथा जिसपर जड़-जंगम सम्पूर्ण	पुण्यकी कमाई हमारे घरकी शोभा बढ़ा			
्र विश्व बसता है, वह भूमि हमें मधुर पेय पान कराये। जिसे	नष्ट हो जाय, हमारे दाहिने हाथमें कर्म			
हमारे पूर्वजोंने अपने पुरुषार्थसे सँवारा था, वह गाँवों, अश्वों	हाथमें सफलता रखी हुई है। हम बुढ़ा			
तथा पक्षियोंको आश्रय देनेवाली भूमाता हमें ऐश्वर्य-तेज	मृत्यु हमसे दूर हो तथा अमृतपद हमें			
प्रदान करे। हे मातृभूमे! तेरे हिमालयादि पर्वत और गहन	कौटुम्बिक सौमनस्यता तथा प्रेम			
जंगल हमारे लिये मोद (प्रसन्नता)-के निकेतन बनें। हे	लिये अथर्ववेदकी पैप्पलाद शाखाके	<del>-</del> - ·		
माते! हम जो तुम्हारे कन्द-मूलादि फल खा रहे हैं, वे	ही मनोहर और प्रभावशाली निर्देश वि	=,		
तुममें शीघ्र ही पुन: उग आयें और हम कदापि तथा	कहता है कि जिस प्रकार गौ अ	• (		
कथमपि तुम्हारे मर्मपर आघात न करें <sup>१</sup> —	करती है, उसी प्रकार सब एक-दृ	·		
श्रुतियाँ हमें आदेश देती हैं कि हम अपनी मातृभूमिकी	लोगोंके मनसे विद्वेष हट जाय और	- `		
निरन्तर सेवा करें और स्वराज्यके लिये सर्वदा यत्न करें।	स्थापित हो। पुत्र माता-पिताका आज्ञाक			
हम अपने देशमें सावधान होकर पुरोहित (अगुआ या	मृदुभाषिणी हो। भाई-भाई आपसमें			
नेता) बनें—	बहनें आपसमें ईर्घ्या न करें। सभी			
उप सर्प मातरं भूमिम्। (ऋक्० १०।१८।१०)	मत और समान व्रतवाले बनकर म			
यतेमहि स्वराज्ये। (ऋक्०५।६६।६)	करें। श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सभी			
वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता:।(यजु०९।२३)	साथ मिलकर रहें। एक-दूसरेको प्रस			
किसी भी राष्ट्रके नागरिक उस राष्ट्रके महत्त्वपूर्ण	-,			
विस्ता मा राष्ट्रक नागारक उस राष्ट्रक महत्त्वपूर्ण	साय मिलकर मारा बाझका खाच ल	चल <sup>·</sup> — 		
१. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः। यस्य				
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्। गवाम	श्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्च: पृथिवी नो दधार्	[ II		
गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु। यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि म	ा ते इटयमर्पिपम्॥ (पथ्वीसक्तः अथर्व० १२।१।	13 6 22 36)		
२. स्वस्ति पन्थामनुचरेम। (ऋक्० ५। ५१। १५), अस्माकं सन्त	,,			
३४।१), कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।(यजु० ४०।२),		••		
दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहित:।(अथर्व० ७।५०।८), मा पुरा ज	ारसो मृथा:।(अथर्व०५।३०।१७), परैतु मृत्युर	मृतं न ऐतु। (अथर्व०		
१८।३।६२)।				
३. सहृदयं सांमनस्यमिवद्वेषं कृणोमि व:। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातिमवाघ्न्या॥				
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥				
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्च: सव्रता भूत्व ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्त: सधुराश्चरन्त:। अन		manibu u		
ञ्चायस्यन्तारयातमा मा ।य याष्ट सराययन्तः संयुरारयरन्तः। अन	या जन्यस्म वर्ला वदन्त एत सम्राचानान् व: समन्	।सस्कृणाम् ॥		

(संज्ञानसूक्त ३।३०।१-२, ३-५)

\* वैदिक वाङ्मयमें समाज, राष्ट्र एवं विश्वके प्रति नागरिकोंके कर्तव्य \* अङ्क ] \* देशवासियोंमें परस्पर सौहार्द हो, एतदर्थ श्रुतियाँ गुम्फित किया गया है<sup>१</sup>— कहती हैं कि हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखें। हम भारतवर्ष हमारा प्यारा, अखिल विश्वसे न्यारा, सब शरीरसे नीरोग हों और उत्तम वीर बनें। हममें सब साधनसे रहे समुन्तत, भगवन्! देश हमारा। कोई भी द्वेष करनेवाला न हो। अन्नादि हमारे लिये हों ब्राह्मण विद्वान् राष्ट्रमें ब्रह्मतेज-व्रत-धारी, कल्याणकारी और स्वादिष्ट हों। हमारे लिये सब कुछ महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्य-प्रहारी। कल्याणकारी हो-गौएँ भी अति मधुर दुग्धकी रहें बहाती धारा। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे (यजु॰ ३६।१८), अरिष्टाः सब साधनसे रहे..... स्याम तन्वा सुवीराः (अथर्व० ५।३।५), मा नो द्विक्षत भारतमें बलवान वृषभ हों, बोझ उठायें भारी, कश्चन (अथर्व० १२।१।२४), शिवं महां मधुमदस्त्वन्नम् अश्व आशुगामी हों दुर्गम पथमें विचरणकारी। (अथर्व॰ ६।७१।३), **सर्वमेव शमस्तु नः** (अथर्व॰ जिनकी गति अवलोक लजाकर हो समीर भी हारा। १९।९।१४)। सब साधनसे रहे...... ऋग्वेदमें राष्ट्रीय एकता और अखण्डताकी दृष्टिसे महिलाएँ हों सती सुन्दरी सद्गुणवती सयानी, नागरिकोंको निर्देश दिये गये हैं कि वे सभी मिलकर चलें रथारूढ भारत-वीरोंकी करें विजय-अगवानी। तथा मिलकर बोलें। वे शुद्ध और पवित्र चित्तवाले बनें। जिनकी गुण-गाथासे गुंजित दिग्-दिगन्त हो सारा। वे परोपकारमय जीवन जीयें। सौ हाथोंसे इकट्ठा करें तो सब साधनसे रहे..... हजार हाथोंसे बाँटें। वह मित्र ही क्या, जो अपने मित्रको यज्ञ-निरत भारतके सुत हों, शूर सुकृत-अवतारी, युवक यहाँके सभ्य सुशिक्षित सौम्य सरल सुविचारी। सहायता नहीं देता— संगच्छध्वं संवदध्वम् (ऋक्० १०।१९१।२), शुद्धाः जो होंगे इस धन्य राष्ट्रका भावी सुदृढ़ सहारा। पूता भवत यज्ञियासः (ऋक्० ५।५१।१), शतहस्त समाहर सब साधनसे रहे..... सहस्रहस्त सं किर (अथर्व० ३।२४।५), न स सखा यो न समय-समयपर आवश्यकतावश रस घन बरसाये, ददाति सख्ये (ऋक्० १०।११७।४)। अन्नौषधमें लगें प्रचुर फल और स्वयं पक जायें। यजुर्वेद (२२।२२)-में सर्वशक्तिमान् ईश्वरसे कामना योग हमारा, क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा। की गयी है कि वे हमारे प्रिय भारतवर्षको सभी संसाधनोंसे सब साधनसे रहे..... भारतीय संस्कृतिमें सम्पूर्ण वसुधाको कुटुम्बवत् परिपूर्ण और समुन्तत बनायें-माना गया है।<sup>२</sup> हमारा यह भाव रहता है कि सभी आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभीका कल्याण हो, किसीको इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। भी कभी दु:ख न हो।<sup>३</sup> अपनी इन्हीं उदात्त भावनाओंके धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो बलपर भारतको विश्वगुरुका गौरव प्राप्त था और भारतवर्षके सदाचार समस्त विश्वके लिये आचरणीय वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ (अनुकरणीय) कहे जाते थे।<sup>४</sup> इस मन्त्रके भावोंको एक गीतके रूपमें इस प्रकार

१. यह पद्यानुवाद आजसे लगभग ६-७ दशकपूर्व स्व० पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' द्वारा किया गया था।

२. वसुधैव कुटुम्बकम्। ३. सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु:खभाग्भवेत्॥ ४. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:। स्वं स्वं चिरत्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:॥

\* श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित जीवनचर्या \* अङ्क ] श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित जीवनचर्या (१) कामनाका त्याग करें—(१) किसी भी दूसरोंके हितमें लगा हुआ है। (५) अपने कर्तव्यका पालन प्रकारकी सांसारिक इच्छा नहीं रखना। (२) संयोगजन्य करना तथा दूसरेके अधिकारोंकी रक्षा करना कल्याणकारी सुखकी आशा नहीं रखना। (३) किसी भी वस्तु, व्यक्तिसे आचरण है। सुख नहीं लेना। (४) 'ऐसा होना चाहिये' और 'ऐसा नहीं (५) भगवान्से अपनापन रखें—(१) एक भगवान् ही मेरे अपने हैं। दूसरा कोई मेरा अपना नहीं है। होना चाहिये'-इसीमें सब दु:ख भरे हुए हैं। (५) मुझे कुछ नहीं चाहिये, ऐसा भाव रखना। (६) अनन्त 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।' यह 'दूसरो न ब्रह्माण्डोंमें तिल जितनी वस्तु भी हमारी और हमारे लिये कोई' विशेष बात है। (२) भगवान्से अपनापन सबसे नहीं है। (७) मनमें किसी वस्तुकी चाहना रखना ही सुगम और श्रेष्ठ साधन है। (३) परमात्माके आश्रयसे दरिद्रता है। (८) धैर्यपूर्वक इन्द्रियोंका संयम करें। (९) बढ़कर दूसरा कोई आश्रय नहीं है। (४) यदि कोई अपने आपसे अपने आपमें सन्तुष्ट रहें। अतिशय दुराचारी भी एक निश्चय कर ले कि 'मुझे तो परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है।' तो वह शीघ्र ही धर्मात्मा (२) भगवानुको याद करें—(१) भगवन्नामका जप करें, कीर्तन करें। (२) सत्-शास्त्रों—श्रीमद्भगवद्गीता, हो जाता है तथा परमात्म-प्राप्तिरूपी शान्तिको प्राप्त हो श्रीरामचरितमानस आदि का स्वाध्याय करें। (३) थोड़ी-जाता है। (५) भगवान्के शरण होना अर्थात् शरणागति थोड़ी देरमें कहते रहें—'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको सभी साधनोंका सार है। (६) भगवान्की कृपासे व्यक्ति भूलूँ नहीं।'(४) शुद्ध-अशुद्ध प्रत्येक अवस्थामें भगवान्को सम्पूर्ण विघ्नोंसे तर जाता है, अतः भगवान्का आश्रय याद करना। (५) भगवानुके गुण, प्रभाव एवं लीला-(सहारा) सभी साधनोंका सार है। रहस्योंको भक्तोंसे कहना-सुनना। (६) परिवर्तनशील स्थितियोंमें समबुद्धि रखें— (३) अपने कर्तव्यको कुशलतापूर्वक करें— (१) सुख-दु:ख, लाभ-हानि, मान-अपमान, शत्रु-मित्र, (१) अपने-अपने कर्ममें लगा हुआ साधक परमसिद्धि अनुकूलता-प्रतिकूलता, सफलता-असफलता (सिद्धि-अर्थात् परमात्माको प्राप्त होता है। (२) कर्मके द्वारा असिद्धि), निन्दा-स्तुति, शीत-उष्ण—सभी स्थितियाँ परमात्माकी पूजा होती है। (३) कर्म न करनेकी अपेक्षा परिवर्तनशील हैं अर्थात् आने-जानेवाली और अनित्य हैं। कर्म करना श्रेष्ठ है। यदि कर्तव्य-कर्मको कुशलतापूर्वक इनसे विचलित न होवे, इन्हें सहन करे। (२) स्त्री, नहीं करेंगे तो शरीरका निर्वाह भी ठीक नहीं होगा। (४) पुत्र, मकान आदि क्षणभंगुर तथा परिवर्तनशील हैं, अतः अपने स्वभावको शुद्ध बनानेके समान कोई उन्नित नहीं इनमें एकात्म बुद्धि (घनिष्ठता) नहीं रखना। (३) मिट्टीके है। (५) कर्तव्य-कर्म करनेमें सावधानी रखनी चाहिये ढेले, पत्थर तथा स्वर्णमें समबुद्धिवाला रहे। (४) कृटकी तथा फलकी प्राप्ति जो भी हो, उसमें प्रसन्न रहना चाहिये। तरह निर्विकारयुक्त रहें। (५) अन्त:करण ज्ञान-विज्ञानसे (६) साधक सम्पूर्ण कर्मोंको करता हुआ भी भगवान्की तृप्त हो। कुपासे शाश्वत अविनाशी पदको प्राप्त हो जाता है, अत: (७) सबमें भगवान्के दर्शन करें—(वास्देव: सर्वम्) (१) सब कुछ परमात्मा ही है। 'धैर्ययुक्त बुद्धिके भगवानुका आश्रय लेकर कर्म करें। द्वारा (संसारसे) धीरे-धीरे उपराम हो जाय और मन (४) दूसरोंकी भलाई करें—(१) अपनी जीवन-शैली इस प्रकारकी हो, जिसमें दूसरोंका भला हो, (बुद्धि)-को परमात्म स्वरूपमें सम्यक् प्रकारसे स्थापन किसीको कष्ट न हो। (२) दूसरोंको सुख कैसे मिले? करके फिर कुछ भी चिन्तन न करे।' यह भाव महान् है। (३) वस्तुका सबसे बढ़िया उपयोग (२) बाहर-भीतरसे चुप। जहाँ आप हैं, वहाँ पूरे-है—दूसरोंके हितमें लगाना। (४) श्रेष्ठ पुरुष वही है, जो के-पूरे हैं। कुछ भी इच्छा मत करो। बाहर-भीतर चुप हो

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− जाओ! चुप हो जाओ! चुप होनेपर आपकी स्थिति स्वत: एकान्तमें रहनेका स्वभाव, जन-समुदायमें प्रीतिका न होना, परमात्मामें होगी। इन्द्रियोंका विषयोंसे वैराग्य होना, मनका वशमें होना, (८) भक्तियोगीके लक्षण अपनायें—(१) सब आसक्तिरहित होना, अध्यात्म-ज्ञानमें नित्य-निरन्तर रहना, गुरुकी सेवा, परमात्मामें अनन्ययोगके द्वारा अव्यभिचारिणी प्राणियोंमें द्वेषभावरहित, मित्रभाववाला, दयालु, ममतारहित, अहंकाररहित, सुख-दु:खकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील (२) भक्तिका होना आदि लक्षण अपनायें। निरन्तर सन्तुष्ट योगी, शरीरको वशमें किये हुए, दृढ़ (१०) भगवान्को पुरुषोत्तम एवं सबका मूल निश्चयवाला, मुझमें अर्पित मन-बुद्धिवाला, (३) जिससे कारण समझें—(१) भगवान् ही संसारमात्रके प्रभव कोई प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता, जो स्वयं किसी (मूल कारण) हैं और भगवान्से ही सारा संसार प्रवृत्त हो प्राणीसे उद्विग्न नहीं होता, जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय रहा है अर्थात् चेष्टा कर रहा है। (२) भगवान्की और क्रोध (हलचल)-से रहित है। (४) जो अपेक्षा अध्यक्षतामें प्रकृति सम्पूर्ण जगत्की रचना करती है, इसी हेतुसे जगत्का (विविध प्रकारसे) परिवर्तन होता है। (३) (आवश्यकता)-से रहित है। बाहर-भीतरसे पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथासे रहित, सभी आरम्भों अर्थात् नये-नये भगवान् अपने किसी एक अंशसे इस सम्पूर्ण जगत्को कर्मों के आरम्भका सर्वथा त्यागी (५) जो न कभी हर्षित व्याप्त करके स्थित हैं अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्ड भगवान्के होता है, जो न द्वेष करता है, जो न कामना करता है। किसी एक अंशमें है। (४) भगवान्की कृपासे व्यक्ति जो शुभ-अशुभ कर्मोंसे ऊँचा उठा हुआ (रागद्वेषसे रहित) सम्पूर्ण विघ्नोंसे तर जाता है। है। (६) जो शत्रु-मित्रके पक्षमें सम है। शीत-उष्ण (११) दैवी सम्पत्ति अपनायें—(१) मेरे ही दृढ़ (शरीरकी अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दु:ख (मन-भरोसे अभय रहना। (२) अन्तः करणमें मेरेको प्राप्त बुद्धिकी अनुकूलता-प्रतिकूलता)-में सम, आसक्तिरहित करनेका एक दृढ़ निश्चय। (३) मुझे तत्त्वसे जाननेके है। (७) जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील, लिये हरेक परिस्थितिमें सम रहना। (४) सात्त्विक दान जिस किसी प्रकारसे भी (शरीरका निर्वाह होने, न होनेमें) देना। (५) इन्द्रियोंको वशमें रखना। (६) अपने कर्तव्यका सन्तुष्ट, रहनेके स्थान तथा शरीरमें ममता, आसक्तिसे रहित पालन करना। (७) शास्त्रोंके सिद्धान्तोंको जीवनमें उतारना। (८) कर्तव्य-पालनके लिये कष्ट सहन करना। (९) तथा स्थिरबुद्धिवाला है। उक्त ३३ लक्षण भक्तियोगीके हैं, इन लक्षणोंके पालनका प्रयास करनेवाला भक्त भगवान्को शरीर, मन तथा वाणीकी सरलता। (१०) तन-मन और अत्यन्त प्रिय है। वाणीसे किसी भी प्राणीको कभी किंचिन्मात्र भी कष्ट न (९) शरीर तथा आत्माको अलग-अलग समझें— पहुँचाना। (११) जैसा देखा, सुना और समझा वैसा-का-(१) शरीर नाशवान् तथा परिवर्तनशील है जबिक आत्मा वैसा प्रिय शब्दोंमें कह देना। (१२) मेरा स्वरूप समझकर अजर, अमर तथा अविनाशी है। शरीरके नाश होनेपर भी किसीपर भी क्रोध न करना। (१३) संसारकी कामनाका आत्माका नाश नहीं होता है। शरीरके नाशको लेकर शोक त्याग। (१४) अन्त:करणमें रागद्वेषजनित हलचलका न न करें। (२) नाशवान् शरीरसे संसारकी सेवा करनी है होना। (१५) चुगली न करना। (१६) प्राणियोंपर दया तथा अविनाशी आत्माका परमात्मासे अपनापन करना है, करना। (१७) सांसारिक विषयोंमें न ललचाना। (१८) जो स्वत: सिद्ध है। नष्ट होते हुए शरीरोंमें अविनाशी अन्त:करणकी कोमलता। (१९) अकर्तव्य करनेमें लज्जा। समरूप परमात्माको देखना है। (३) सब संसार नाशकी (२०) चपलताका अभाव (उतावलापन न होना)। (२१) तरफ जा रहा है। परिवर्तन ही परिवर्तन हो रहा है। विचार शरीर और वाणीमें तेज (प्रभाव) होना। (२२) अपनेमें करें - क्या ये दिन सदा ऐसे ही रहेंगे? नहीं रहेंगे। केवल दण्ड देनेकी सामर्थ्य होनेपर भी अपराधीके अपराधको

क्षमा करना। (२३) हरेक परिस्थितिमें धैर्य रखना। (२४)

एक परमात्मा ही अपने हैं, शेष सभी नाशवान हैं। (४)

अङ्क ] * श्रीमद्भगवद्गीतामें प्र	ङ्क $]$ $*$ श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित जीवनचर्या $*$ ४५५	
<u> </u>	<u>*************************************</u>	
शरीरकी शुद्धि। (२५) बदला लेनेकी भावना न होना तथा	जो कुछ दान दें, जो कुछ तप करें—सब कुछ प्रभुको	
(२६) अपनेमें श्रेष्ठताका भाव न होना—ये २६ लक्षण	अर्पण करें।	
दैवी सम्पत्तिके हैं। इसके विपरीत दम्भ, अविवेक आदि	(१०) ज्यादा नींद नहीं लें तथा आवश्यकतासे कम	
आसुरी सम्पत्तिके लक्षण हैं। आसुरी सम्पत्ति बाँधनेवाली	नींद भी न लें। आवश्यकतासे अधिक भोजन न करें तथा	
है और दैवी सम्पत्ति मुक्त करनेवाली है। अतः हमें अपनी	जानकर भूखे न रहें। पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रत	
चर्यामें दैवी सम्पत्तिका आश्रयण ग्रहण करना चाहिये।	शास्त्रोक्त होनेसे करने चाहिये।	
गीताजीका माहात्म्य—श्रीमद्भगवद्गीताको पढ़ने,	(११) स्मृति, ज्ञान तथा संशयोंका नाश परमात्मा	
सुनने तथा सुनानेसे भगवत्कृपा बरसती है तथा जो	करते हैं।	
भगवान्के भक्तोंमें प्रचार करता है, वह भगवान्का	(१२) मन और बुद्धिको परमात्मामें तदाकार रखें।	
अतिशय प्रिय होता है। गीताजीका स्वाध्याय करना ज्ञानयज्ञ	(१३) विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें, चाण्डालमें	
है।'गीता सुगीता'—गीताजीका भलीप्रकार गान (स्वाध्याय)	तथा गाय, हाथी एवं कुत्तेमें भी समरूप परमात्माको	
करना चाहिये।	देखनेवाले ज्ञानी महापुरुष हैं।	
गीताजीके विविध पालनीय बिन्दु—	(१४) अन्त:करण समतामें स्थित होना चाहिये।	
(१) जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियोंमें दु:खरूप	(१५) इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे पैदा होनेवाले	
दोषोंका बार-बार देखना।	जो भोग (सुख) हैं, वे आदि-अन्तवाले और दु:खके ही	
(२) प्रकृतिके गुणोंद्वारा विचलित नहीं होना; क्योंकि	कारण हैं। अत: विवेकशील मनुष्य उनमें रमण नहीं	
गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं।	करता। (५।२२)	
् (३) ब्रह्मचर्यका पालन करना।	(१६) इस मनुष्य-शरीरमें जो कोई मनुष्य-शरीर	
(४) देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषोंका	छूटनेसे पहले ही काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले वेगको	
यथायोग्य पूजन करना, पूज्य भाव रखना। जीवन्मुक्त	सहन करनेमें समर्थ होता है, वह नर योगी है और वही	
महापुरुषोंसे सुनकर उपासना करना।	सुखी है। (५।२३)	
(५) मनको सदा प्रसन्न रखना। अनुकूलतामें सम	(१७) जो मनुष्य केवल परमात्मामें सुखवाला और	
रहना तथा व्यथित न होना। कोई भी परिस्थिति आये, ऐसा	केवल परमात्मामें ज्ञानवाला है, वह ब्रह्ममें अपनी स्थितिका	
समझें कि आने-जानेवाली और अनित्य है, इसलिए सहन	अनुभव करनेवाला (ब्रह्मरूप बना हुआ) सांख्ययोगी	
करें तथा इस मन्त्रका जप करें। 'आगमापायिनोऽनित्याः।'	निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त होता है।	
(६) यथायोग्य नियत तिथि, वार आदि को अन्य	(१८) परमात्मा सबके सुहृद् (अकारण हित करने–	
देवताओंका निष्कामभावपूर्वक पूजन-अर्चन करना।	वाले) हैं, ऐसा जानकर शान्तिका अनुभव करना।	
(७) सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं।	(१९) भगवान्के परायण होकर साधन करें। मैं	
अहंकारसे मोहित अन्त:करणवाला 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान	भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं। मेरा दूसरा कोई आश्रय नहीं	
लेता है। अतः किसी भी कार्यमें अपनेको कारण नहीं	है। संसारके सभी आश्रय जलमें मगरमच्छके आश्रयके	
मानें, केवल निमित्तमात्र मानें।	समान हैं, अत: परमात्मारूपी परम आश्रयका ग्रहण करना	
(८) शास्त्रविधिके अनुसार चलें। कल्याणकारी	चाहिये।	
शास्त्रोंको आदर्श मानें।	(२०) सभी मनुष्य सब प्रकारसे भगवान्के ही	
(९) सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान्को अर्पण करनी	मार्गका अनुसरण करते हैं, अतः भगवान्द्वारा बताये गये	
चाहिये। जो कुछ करें, जो कुछ खायें, जो कुछ हवन करें,	`	

४५६ ;	<ul> <li>आत्मनः प्रतिकूलाि</li> </ul>	ने परेषां न समाचरेत्*	[ जीवनचर्या-
<u> </u>	*******	*********************	<u> </u>
(२१) ममता और अहंकारका	त्याग करें।	कहते हैं कि—	
(२२) अच्छी तरह आचरणमें	लाये हुए दूसरेके	१. तू मेरा भक्त हो जा।	
धर्मसे गुणोंकी कमीवाला अपना धर्म श्रे	ष्ठ है। अपने धर्ममें	२. मुझमें मनवाला हो जा।	
तो मरना भी कल्याणकारक है और	दूसरेका धर्म भय	३. मेरा पूजन करनेवाला हो जा	1
देनेवाला है।		४. मुझे नमस्कार कर।	
(२३) अपने द्वारा अपना उद्धार	करें, अपना पतन	५. अपने आपको (मेरे साथ) ल	गाकर मेरा परायण
न करें; क्योंकि व्यक्ति स्वयं अपना मि	त्र है और स्वयं ही	हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।	
अपना शत्रु है।		(२६) सच्ची और पक्की बात—	यदि आपको दु:ख,
(२४) अनन्य भक्तिके लिये साधव	कको क्या करना है ?	अशान्ति, आफत चाहिये तो शरीर-संस	गरसे सम्बन्ध जोड़
१. सब कर्मोंको मेरे लिये व	<sub>करना।</sub> २. मेरे ही	लो, उनको अपना मान लो और य	पदि सुख, शान्ति,
परायण होना। ३. मेरे ही प्रेमी-भक्त	होना। ४. सर्वथा	आनन्द, मस्ती चाहिये तो परमात्मासे	सम्बन्ध जोड़ लो,
आसक्तिरहित होना। ५. प्राणिमात्रवे	न साथ वैरभावसे	उनको अपना मान लो। चुनाव आपवे	ह हाथमें है।
रहित होना।		[ ब्रह्मलीन स्वामी श्रीरामसुखदासजीके प्र	प्रवचनोंके आधार पर ]
(२५) भगवान् अपने भजनकी	विधि बताते हुए	[ प्रेष	क — श्रीधनसिंहराव ]
	<b>─</b>	<b>&gt;</b>	

### विदेशोंमें बसे भारतीयोंकी जीवनचर्या

( श्रीलल्लनप्रसादजी 'व्यास')

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीमें विश्वमें एक अद्भुत

थे और इन भोले-भाले भारतीयोंके साथ पशुवत व्यवहार घटनाक्रम घटित हुआ, जो मानव इतिहासमें स्वर्ण-अक्षरोंमें

करते थे। गाली-गलौज तो आम बात थी। कभी-कभी

ट्रिनिडाड, सुरीनाम, गयाना आदि देशोंमें पहुँचे इन लाखों

संस्कृति और धर्मसे जुडी रही। वे सुर्योदयके समय उठते,

इनपर कोडोंकी मार भी कर देते थे।

काम करना पडता था, वे प्राय: निर्दयी और अन्यायी होते

ऐसी यातना और अन्यायके दौरमें भी मॉरिशस, फिजी,

प्रवासी भारतीयोंका जीवन और जीवनचर्याकी डोर भारतीय

नहाते और शिवलिंगनुमा किसी पत्थरमें शंकरभगवानकी

काम करते। फिर अपनी टीनकी बनी झोपडियोंमें लौटकर

भावना करके उसपर जल चढ़ाते, हनुमान-चालीसाका पाठ करते, श्रीरामचरितमानसके कुछ दोहे-चौपाई दोहराते और फिर दिनभर चिलचिलाती धूप या बरसातमें पशुओंकी तरह

गये। जहाजोंके भारतभूमि छोडते ही उनके स्वर्णिम सपने नारकीय जीवनमें बदल जाते थे और महीनोंकी उबाऊ और अस्वस्थकारी समुद्र-यात्राके बाद तो उनको नरक साफ-

हनुमान-चालीसाके रूपमें श्रीराम और श्रीहनुमानुजी बन

साफ दिखायी पडने लगता था। नरक इसलिये नहीं कि

ये द्वीप कोई भयानक थे, बल्कि इसलिये कि गन्नेके खेतोंमें

मालिकोंके जिन दलालों या कर्मचारियोंके अधीन उन्हें

### बाहर सुदुर अनजान द्वीपोंमें ले जाये गये तब उनके जीवन और जीवनचर्याके आधार प्राय: श्रीरामचरितमानस और

### अंकित करनेयोग्य है। वह यह है कि जब भारतके निर्धन नर-नारी रोजी-रोटीकी तलाशमें जहाजोंमें भरकर भारतसे

\* आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् \* **ाजीवनचर्या**− स्नान-भोजनके बाद अपने साथी-समूहोंमें बैठकर ढोलक, बौद्ध भिक्षु एक हाथमें भिक्षापात्र और दूसरेमें कमलका फूल लिये गलियों-सड़कोंपर घरोंके आगे घूमते दिखायी पड़ते हैं झाँझ, मंजीरा बजाते हुए श्रीरामचरितमानस और हनुमान-चालीसाका सस्वर सामूहिक पाठ करते और दिनभरकी और गृहस्थ स्त्रियाँ उन्हें बुलाकर भोजन सामग्री, पेय पदार्थ थकान, बेबसी और बेइज्जतीको भूला देते। आदि देनेके लिये तत्पर रहती हैं। उन भिक्षुओंके आनेसे पूर्व लगभग एक-डेढ़ शताब्दीमें ही मानस और चालीसाका ही जागकर वे स्त्रियाँ भोजन बनाती हैं। सामान्य रूपसे कोई ऐसा आध्यात्मिक चमत्कार हुआ कि कुली-मजदूर बनकर भिक्षु आवाज नहीं लगाता और कई एक साथ किसीके घरके इन देशोंमें जानेवाले बेबस भारतीय वहाँके प्रधानमन्त्री, गवर्नर बाहर भिक्षाके लिये नहीं पहुँचते। इसके बाद वे अपने मठोंमें जनरल, राष्ट्रपति, प्रधान न्यायाधीश आदि बनकर भाग्य जाकर भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा उन मठोंमें आनेवाले छात्रों विधाता बन गये। ऐसा इन सभी पाँचों देशोंमें किसी-न-किसी और जिज्ञासुओंको धार्मिक शिक्षा भी प्रदान करते हैं। ये बौद्ध समय सम्भव हुआ और आज भी वह महत्त्व किन्हीं देशोंमें भिक्षु सूर्यास्तके बाद भोजन नहीं करते। पेय पदार्थ अवश्य शेष है। जमैका, दक्षिण अफ्रीका, मलाया, श्रीलंका (पहले ले सकते हैं। इसी प्रकार इंडोनेशियाके हिन्दूबहुल सुन्दर द्वीप सीलोन) आदिमें भारतीयोंकी मिलती-जुलती कहानी है। बालीमें हिन्दू परम्पराओंसे प्रभावित जीवनचर्या देखनेको फिर बीसवीं शताब्दीमें तो रोजगार और व्यापारके सिलसिलेमें मिलती है। लाखों बल्कि करोडों भारतीय विश्वके सभी महाद्वीपोंमें फैल भारतसे बाहर भारतीय संस्कृतिकी कुछ श्रेष्ठ परम्पराओंके गये, जिन्होंने किसी-न-किसी रूपमें भारतीय संस्कृति और दर्शन अभी भी होते हैं, जो उनकी जीवनचर्याके अंग बन गये उससे जुड़ी जीवनचर्यासे जुड़ाव बनाये रखा। हैं। इसके विपरीत विदेशी शिक्षा और विदेशी संस्कृतिसे बीसवीं शताब्दीमें विज्ञान और तकनीकीका प्रभाव प्रभावित भारतके लोग परम्परागत श्रेष्ठ जीवनचर्यासे दूर होते और प्रसार बढ़नेके साथ भारतीयोंमें भी कहीं-कहीं दिखायी पड़ रहे हैं। हाँ, कहीं-कहीं यह भी देखनेमें आता मानव-मूल्योंका क्षरण होने लगा तो कुछ आध्यात्मिक है कि ऐसे लोगोंमें भी कुछ सन्तोंकी कृपा और सत्संगके विभृतियोंद्वारा विश्वभरमें श्रीकृष्णभक्ति-भावनाका जो व्यापक प्रभावसे पुन: उनकी आस्था वापस आयी है। दक्षिण भारतके प्रचार हुआ, उसने भारतीयोंसे अधिक करोड़ों गैर भारतीयों प्रदेशोंके नगरों और ग्रामोंमें अपेक्षाकृत अपनी सांस्कृतिक यानी विदेशियोंकी जीवनचर्याको बदलकर प्रभुभक्ति और परम्पराओंसे अधिक लगाव दिखायी पड़ता है। वहाँके कामकाजी प्रभु-समर्पणसे जोड दिया। उनके साथ ही रामायण और तथा अन्य लोग भी सुबह जल्दी उठकर स्नान करते, पूजन श्रीमद्भागवतके बड़े-बड़े प्रवचन आयोजित होने लगे, करते और मस्तकपर भस्म लगाते दिखायी पड़ते हैं। जिन्होंने भारतवंशी विदेशियोंकी जीवनचर्याको बदलकर देश-विदेशमें प्राय: यह देखा गया है कि जिन लोगोंमें अपने धर्म, संस्कृति और परम्पराओंको पालन करनेकी भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओंसे जोडा। विदेशोंमें अनेक मन्दिर हैं, जहाँ प्रात:से सायंकालतक दृढ़ता और निष्ठा है तथा उनसे प्रभावित जीवनचर्याके प्रति पूजन, भजन, आरती, प्रसादवितरण आदि होता रहता है भावात्मक लगाव है, वे जीवनमें अपेक्षाकृत अधिक सफल और उसके साथ नृत्य-कीर्तन भी। इसके अलावा अनेक और सुखी हैं तथा उनमें शान्ति और सन्तोष भी है। श्रद्धा, देशोंमें स्थापित गुरुद्वारोंमें रोजाना श्रीगुरुग्रन्थसाहिबका पाठ, भक्ति, आस्था और निष्ठा होनेपर उचित और अपेक्षित भजन-कीर्तन, लंगर आदि चलते रहते हैं। जीवनचर्या स्वत: बन जाती है। पाश्चात्य सभ्यता और अब चर्चा उन लोगोंकी है, जो भारतीय या भारतवंशी शिक्षाके कुप्रभावरूपी आँधी-तूफान और भौतिकवादकी न होते हुए भी अपने-अपने देशोंमें भारतीय संस्कृति और अन्धी दौडके वर्तमान दौरमें हमें अपनी संस्कृति और उसकी परम्पराओंसे प्रभावित जीवनचर्याका पालन करते हैं। संस्कारोंकी जड़ोंसे और अधिक मजबूतीसे जुड़े रहनेकी इनमें पड़ोसी देश थाईलैण्ड, बरमा, कम्बोडिया, लाओस आवश्यकता है। आदि हैं, जहाँ बौद्धधर्मका पालन होता है। इन देशोंमें इसके लिये आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृतिपर सूर्योदयसे पूर्व (उषाकाल) हजारोंकी संख्यामें पीतवस्त्रधारी आधारित जीवनचर्याका पालन करें।

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR/-03/2008

# सफल जीवन

वही जीता है। यश तथा कीर्तिसे रहित व्यक्ति जीवित रहता हुआ भी मृतकके समान है। बुद्धिमान्को उचित है कि दूसरेके उपकारके लिये धन और जीवनतकको अर्पण कर दे; क्योंकि इन दोनोंका नाश तो निश्चय ही है, इसलिये सत्कार्यमें इनका त्याग करना अच्छा है। जीवनका एक क्षण भी कोटि स्वर्णमुद्रा देनेपर नहीं मिल सकता, वह यदि वृथा नष्ट हो जाय तो इससे अधिक हानि क्या होगी? शरीर और गुण इन दोनोंमें बहुत अन्तर है, क्योंकि शरीर तो थोड़े ही दिनोंतक रहता है और गुण प्रलयकालतक बने रहते हैं। जिसके गुण और धर्म जीवित हैं, वह वास्तवमें जी रहा है, गुण और धर्मरहित व्यक्तिका जीवन निरर्थक है। वास्तवमें उसीका जन्म लेना सफल है, जिसके उत्पन्न होनेसे वंश उन्नतिको प्राप्त होता है, इस परिवर्तनशील संसारमें कौन नहीं मृत्युको प्राप्त हुआ है और कौन उत्पन्न नहीं होता! जो मनुष्य दु:खित प्राणियोंके दु:खका उद्धार करता है, वही इस लोकमें पुण्यात्मा है, उसको नारायणके अंशसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये। जिसका चित्त इस अपार चिदानन्दिसन्धु परब्रह्ममें लीन हो गया, उससे उसका कुल पवित्र हो गया, माता कृतार्थ हो गयी और पृथ्वी पुण्यवती हो गयी। जिसने परब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिये सारा जगत् नन्दनवन है, सब वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, सब जल गंगाजल हैं, उसकी सारी क्रियाएँ पवित्र हैं, उसकी वाणी चाहे प्राकृत हो या संस्कृत—वह वेदका सार है, उसके

यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रा मित्राणि बान्धवाः। सफलं जीवितं तस्य नात्मार्थे को हि जीवित।। वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती। लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्।।

लिये सारी पृथ्वी काशी है और उसकी सभी चेष्टाएँ परमात्ममयी हैं।

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७

शरीरस्य

स जीवित यशो यस्य कीर्तिर्यस्य स जीवित। अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः॥

पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/08

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्। सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सित॥

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः। स चेन्निरर्थकं नीतः का नु हानिस्ततोऽधिका॥

गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः॥ स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य च जीवति । गुणधर्मविहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम् ॥

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्। परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥ दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्ता हि यो नरः। स एव सुकृती लोके ज्ञेयो नारायणांशजः॥

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन । अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेत: ।। सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः।

वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि॥

जिसके धर्माचरणसे पुत्र, मित्र और बन्ध्-बान्धव जीवित रहते हैं, उसीका जीवन सफल है; अपने लिये कौन नहीं जीता है! जिसकी वाणी रसमय (मधुर) है, पत्नी पुत्रवती तथा पतिव्रता है और लक्ष्मी (सम्पदा) दानवती है, उसीका जीवन सफल है। जिसका यश है, वही जीता है और जिसकी कीर्ति है,